राष्ट्र सेविका
संगठन विशेषांक

आदौ संघटयेद् राष्ट्रं
ततः कांक्षेत् समुन्नतिम्
संघशक्तिविना राष्ट्रं
कुतो वा कुत उन्नतिम् ।

कल्याणमस्तु सर्वेषां।
मातृभूमिनिवासिनाम् ।
प्रगतिः सर्वशास्त्रेषु
सामंजस्यं तथा महत् ।।

भजे भारतं चारुशोभाभिरामम् ।
शुभं शाश्वतं भारती-भव्य-धाम।।
पदं पैतृकं मातृपीठं ललामम् ।।
सदा संदधेऽहं मुदा पुण्यनाम ।।

सौख्यदं समृद्धिदं भवतु सर्वजीवनम् ।
मनोविनोदल्हादकं स्वास्थ्यदं च भूतिदम् ।।
चिरायुषी वयस्यता, मिथः प्रीति चारुता ।
प्रार्थ्यते च हे प्रभो! सकल देशवासिनाम् ।।

यावत्प्रोन्नतसानुभिर्हिमगिरिः रक्षत्ययं मेदिनीम् ।
यावत् शंकरशेखराद्वहति वै गंगाप्रवाहो भुवि ।।
यावच्चन्द्रदिवाकरौ गगनतो यातौ न चाधस्थलम् ।
हिन्दू नामियमायभूरिति भवेत् तावन्मतीनिश्चयः ।।

एकात्मता मंत्र

यं वैदिकाः मन्त्रदृशः पुराणा
इन्द्रं यमं मातरिश्वानमाहुः ।
वेदान्तिनो निर्वचनीयमेकम् ।
यं ब्रह्मशब्देन विनिर्दिशन्ति।
शैवाः यमीशं शिव इत्यवोचन्
यं वैष्णवाः विष्णुरिति स्तुवन्ति।
बुद्धस्तथार्हन्निति बौद्धजैनाः
'सत् श्री अकालेति च सिक्ख सन्तः ।
शास्तेति केचित् कतिचित् कुमारः
स्वामीति मातेति पितेति भक्त्या।
यं प्रार्थयन्ते जगदीशितारम्
स एक एवः प्रभुरद्वितीयः ।।

सौ. वसुधा रवी

।।ॐ।।

राष्ट्र सेविका

संगठन विशेषांक

आदौ संघटयेद् राष्ट्रं
ततः कांक्षेत् समुन्नतिम्
संघशक्तिविना राष्ट्रं
कुतो वा कुत उन्नतिम् ।।

'संघे शक्ति कलौयुगे' ऐसा कहा जाता है,
राष्ट्र सेविका समिति हिंदु महिलाओं का राष्ट्रव्यापी संगठन है।
संगठन के मंत्र और तंत्र से
ओतप्रोत यह अंक केवल व्यक्तिगत उपयोग के लिये...

▸▸ तृतीय संस्करण

▸▸ प्रकाशिका
शैला भागवत
सेविका प्रकाशन
देवी अहल्या मंदिर, धंतोली, नागपूर - 440 012
☎ 2542097

▸▸ प्रकाशन तिथि
वैशाख कृष्ण 13, 5105 (मुक्ताबाई समाधिदिन)

▸▸ मुद्रक
एम्. प्रिन्टस्., 190, धंतोली, नागपूर - 440 012
☎ 2526182

▸▸ सहयोग राशि
रु. 50/-

आमुख

प्रिय भगिनी,

संगठन विशेषांक का तृतीय संस्करण आपको समर्पित करते हुए मन में संतोष है। समिति संबंधी विविध बिंदुओं को स्पर्श करने का प्रयास इस अंक में किया गया है।

समिति यह एक संगठन है। प्रत्येक संगठन के कुछ मंत्र और तंत्र होते है। उसके मार्गदर्शक तत्त्व इस संस्करण में संकलित किये है।

माँ की पावन पूजा में (समिति प्रार्थना का विस्तृत अर्थ), भगवद्ध्वज, भारतीय संस्कृति के प्रतिक ऐसी छोटी पुस्तिकायें स्वतंत्र रूप से उपलब्ध है।

गीत और बौधपटों का भी समावेश अंक में है। समिति शिक्षा-वर्गों के समय अंक अतीव उपयुक्त रहेगा।

अंक निर्दोष ही इस दृष्टि से संपादक मंडल प्रयासरत रहा है। फिर भी कुछ त्रुटियां रही ही होंगी उनके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं।

समिति कार्य के लिये हम अधिक से अधिक समय दें यह हमारा कर्तव्य है। कार्य की लगन ही हमारा उत्साह बढ़ाती है, नयी प्रेरणा जगाती है। नयी उमंग, ठोस विश्वास के साथ हम अग्रसर होवें 'सेविका' हमारे साथ है...

शुभकामनाओं के साथ..

- संपादिका

-: अनुक्रमणिका :-

राष्ट्र सेविका समिति - संक्षेप में परिचय	1
राष्ट्र सेविका समिति की प्रार्थना तथा हिन्दी में सरल अनुवाद	2
प्रातः स्मरणम्	3
राष्ट्र सेविका समिति	4
समिति कार्य - विश्व में	16
समिति का उद्देश्य - स्वसंरक्षणक्षम	20
समिति का ध्येय - संगठन	23
वं. मौसीजी	26
वं. ताई आपटे	31
वं. उषाताई चाटी	35
समिति की प्रार्थना	38
भगवा लहर-लहर हिन्दु प्राण	43
हिन्दुत्व	48
एकचालिकानुवर्तित्व	53
स्त्री-राष्ट्र की आधार शक्ति	54
कर्तृत्व के स्फुल्लिंग	57
देवी अष्टभुजा	59
कार्यपद्धति	64
अपने उत्सव	68
मातृत्व का आदर्श - जिजामाता	75
देवी अहल्याबाई होलकर - कर्तृत्व का महामेरु	80
नेतृत्व की तेजस्वी ज्योति - रानी लक्ष्मीबाई	84
भारतीय संस्कृति के प्रतीक	89
समर्पित कार्यकर्ता - कार्य का आधार	94
दैनंदिन शाखा	98
बल-साधना का महत्व	99
गायत्री मंत्र	102
स्वदेशी	105
वन्देमातरम्	107

राष्ट्र सेविका समिति
संक्षेप में परिचय

स्थापना - १९३६ विजयादशमी,
स्थान - वर्धा
संस्थापिका - आद्य प्रमुख संचालिका - वंदनीया स्वर्गीय श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर (मौसीजी)

उद्दिष्ट

महिलाओं को आत्मसुरक्षाक्षम बनाना, उनका मानसिक बल, शारीरिक दृढ़ता, बौद्धिक पात्रता आदि विकसित कर के उन्हें स्वराष्ट्र, स्वधर्म और स्वसंस्कृति की सुरक्षा के लिए प्रवृत्त करना, महिलाओं के पारिवारिक तथा राष्ट्रीय उत्तरदायित्व के बारे में उन्हें सावधान करना।

समिति का ध्येय

हिन्दु महिलाओं का संगठन करना।

तत्त्वत्रयी

1) हिन्दुत्व यही राष्ट्रीयत्व है, 2) भगवाध्वज हमारा राष्ट्रध्वज है, 3) एकचालिकानुवर्तित्व।
सूत्र - स्त्री राष्ट्र की आधारशिला है।

आदर्श महिलाएं

1) राष्ट्रमाता जीजाबाई (मातृत्व के लिए)
पुण्यतिथि-जेष्ठ कृष्ण नवमी,
2) देवी अहल्याबाई होळकर (कर्तृत्व के लिए)
पुण्यतिथि-श्रावण कृष्ण चतुर्दशी
3) स्वातंत्र्यलक्ष्मी रानी लक्ष्मीबाई (नेतृत्व के लिए)
(पुण्यतिथि - ज्येष्ठ शुक्ल 7)

हर एक प्रांत के अनुसार अन्य-अन्य श्रेष्ठ महिलाओं के आदर्श सेविकाओं के सामने रखे जाएंगे। उनकी तिथियां मनाई जाऐंगी।

कार्यक्रम

1) दैनंदिन तथा साप्ताहिक शाखाएं लगाना। वहां पर सेविकाओं को शारीरिक शिक्षा, बौद्धिक विकास, मनोबल, बढ़ाने के लिए अन्य अन्य उपक्रम शुरू करना।
2) प्रतिवर्ष भारतीय तथा विभाग बैठकें आयोजित करना जिले की और प्रांतवार बैठकें लेना।
3) सैर और शिविरों का आयोजन-शिशु, बालिका, युवती और गृहिणी सेविकाओं के लिए।
4) अखिल भारतीय स्तर पर त्रैवार्षिक सम्मेलन लेना।
5) उद्योग मंदिर, बालमंदिर, संस्कार वर्ग, भजन-कीर्तनादि के वर्ग, वसतीगृह, गृहिणी विद्यालय आदि उपक्रमों द्वारा अधिकतम समाजसम्पर्क प्रस्थापित करना।

राष्ट्रीय उत्सव

1) वर्ष प्रतिपदा (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा)
2) गुरु पौर्णिमा (आषाढ़ पौर्णिमा)
3) रक्षाबंधन (श्रावण पौर्णिमा)
4) विजयादशमी (अश्विन शुक्ल दशमी)
5) मकर संक्रमण (14 जनवरी)

अन्य उत्सव

राष्ट्रपुरुष श्रीराम और श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव मनाना, जिसमें अधिकाधिक जनता सम्मिलित हो सके। शारदोत्सव या दुर्गा का उत्सव या स्थानीय लोकपर्व मनाना।

पुण्यस्मरण

वं. मौसीजी जन्मदिन, आषाढ़ शुक्ल 10, शके 1827
5 जुलाई 1905

संकल्प दिन

वं. मौसीजी स्मृति दिन कार्तिक वद्य 12, शके 1924
27 नोव्हेंबर 1978,

संपर्क दिन

वं. ताईजी का स्मृति दिन - माघ कृ.12, शके 1916
9 मार्च 1994

सेवादिन

ॐ

राष्ट्र सेविका समिति की प्रार्थना

नमामो वयं मातृभूः पुण्यभूस्त्वाम्
त्वया वर्धिताः संस्कृतास्त्वत्सुताः
अये वत्सले मङ्गले हिन्दुभूमे
स्वयं जीवितान्यर्पयामस्त्वयि ।।1।।

नमो विश्वशक्त्यै नमस्ते नमस्ते
त्वया निर्मितं हिंदुराष्ट्रं महत्
प्रसादात्तवैवात्र सज्जाः समेत्य
समालंबितुं दिव्यमार्गं वयम् ।।2।।

समुन्नामितं येन राष्ट्रं न एतत्
पुरो यस्य नम्रं समग्रं जगत्
तदादर्शयुक्तं पवित्रं सतीत्वम्
प्रियाभ्यः सुताभ्यः प्रयच्छाम्ब ते ।।3।।

समुत्पादयास्मासु शक्तिं सुदिव्याम्
दुराचार-दुर्वृत्ति-विध्वंसिनीम्
पिता-पुत्र-भ्रातृंश्च भर्तारमेवम्
सुमार्गं प्रति प्रेरयन्तीमिह ।।4।।

सुशीलाः सुधीराः समर्थाः समेताः
स्वधर्मे स्वमार्गे परं श्रद्धया
वयं भावि-तेजस्वि-राष्ट्रस्य धन्याः
जनन्यो भवेमेति देह्याशिषम् ।।5।।

भारत माता की जय।।

प्रार्थना का हिन्दी में सरल अनुवाद

1) हे मातृभूमे, हे पुण्यभूमे, ये तरी कन्याएं- जिनका संवर्धन और संस्करण तूने किया है - वे तुझे वंदन करती है, हे वत्सले, मंगले, हिन्दुभूमे तेरे लिए हम स्वयं अपना जीवन समर्पण कर रही है।

2) हे विश्वशक्ति, तुझे नमस्कार! इस महान् हिन्दु राष्ट्र का निर्माण तूने किया है। यह तेरी ही कृपा है कि हम इस दिव्य मार्ग का अवलंबन करने के लिए सुसज्जित होकर संगठित हुई है।

3) जिस सतीत्व ने इस राष्ट्र को श्रेष्ठ बनाया है जिसके सामने समग्र विश्व नम्र होता है, उस आदर्श, पवित्र सतीत्व को हे अम्बे अपनी प्रिय कन्याओं को प्रदान करो।

4) दुराचार और दुर्वृत्तिओं का विध्वंस करनेवाली दिव्य शक्ति हमें प्रदान करे, तथा पिता, पुत्र, बंधु और पति इन सबको सुमार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाली दिव्य-शक्ति हमें प्रदान-करो।

5) हम सुशील, सुधीर, समर्थ और संगठित बने, स्वधर्म और स्वमार्ग पर अत्याधिक श्रद्धा करें। हम भावी तेजस्वी राष्ट्र की कृतार्थ जननी बन सकें, यह आशीष दो।

प्रातः स्मरणम्

ॐ नमो वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ।।1।।
करोग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले तु गोविन्दः प्रभाते करदर्शनम् ।।2।।
समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।3।।
अहल्या द्रौपदी सीता, तारा मन्दोदरी तथा।
पञ्चकं ना स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ।।4।।
अदितिर्विदुला काली विनता च उमा सती।
शर्मिष्ठा दमयन्तीच सावित्री चाञ्जनी तथा।।5।।
मैत्रेयी विश्पला गार्गी शची वधिमती तथा।
गौमती संघमित्रा सा सुमित्रा च सरस्वती।।6।।
अनसूयाऽरुंधती मीरा बाई दाहरस्त्री तथा।
चेन्नम्मा च महादेवी - यक्क रुद्राम्ब रुक्मिणि।।7।।
जयमती च भवानी च वीणा प्रीतिश्च कल्पना।
मयणल्ला शारदामाता भगिनी च निवेदिता।।8।।
जिजा लक्ष्मीरहल्या च दुर्गा येसुस्तथा रमा।
पन्ना कृष्णाकुमारी च पद्मिनी रामरक्षिता।।9।।
भारते हिन्दुनारीणां भवेत् संघटनं दृढम् ।
इति संस्थापिता राष्ट्र-सेविका समितिर्यया।।10।।
संस्कृतेश्च स्वधर्मस्य रक्षणार्थं समर्पितम् ।
क्षणशः कणशश्चैव जीवितं चंदनं यथा।।11।।
यया रामयशोगानैः कृता भारत-जागृतिः।
लक्ष्मीं केलकरोपाख्यां स्मरामो मावशीं वयम् ।।12।।
मातृवत् स्नेहवात्सल्यं राष्ट्र कार्यार्थ जीवनम् ।
सरस्वति नमस्तुभ्यं सेविकाप्रेरणाम्रवम् ।।13।।
एता उज्ज्वलचारित्र्यः स्त्रियः प्रातः सदा स्मृताः।
भवन्ति शीलशौर्यादीन् वितरन्त्यो गुणान्सदा।।14।।
गंगा, गोदा, ब्रह्मपुत्रा, गोमती च सरस्वती।
कावेरी, यमुना, कुंभा, सिंधु, रेवा, इरावती।।15।।
प्रातः स्मरणमेतद्यो नित्यं नियमतः पठेत् ।
अखण्डं भारतं नित्यं तस्य स्फुरति चेतसि।।16।।

भारत माता की जय

नमस्काराः

प्रथमो मे नमस्कारः प्रचोदनाय मित्राय नमस्तेजो गोलकाय।

द्वितीयो मे नमस्कारः जातवेदसे देवाय प्राणीनां पावकाय।

तृतीयो मैं नमस्कारः नमो वरुणदेवाय जगति पोषकाय।

चतुर्थो मे नमस्कारः रत्नगर्भा वसुधायै नित्यमाधारभूतायै।

पञ्चमो मे नमस्कारः नमो भारतजनन्यै स्वाभिमानप्रतिमायै।

षष्ठो मे नमस्कारः जनन्यै जनकाय स्नेहभावप्रेरकाय।

सप्तमो मे नमस्कारः नमो विद्यासेवकाय आत्मज्ञानबोधकाय।

अष्टमो मैं नमस्कारः महद्भारतीसंस्कृते अक्षरवाग्देवते।

नवमो मे नमस्कारः ब्रह्मरूपस्वदेहाय जागरितचैतन्याय।

दशमो मे नमस्कारः नमो दिग्भ्य आकाशाय पुरो मार्गदर्शकाय।।

गायत्री मंत्रः

ॐ भूर्भुवः स्वः।
तत्सवितुर्वरेण्यम् ।
भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।।

राष्ट्र सेविका समिति

राष्ट्र सेविका समिति - राष्ट्र के लिये स्वयंप्रेरणा से कटिबद्ध बहनों का अर्थात् सेविकाओं का संगठन। समेतः अर्थात् एकत्र आकर कार्य करना। आज सन् 1936 से यह कार्य निरंतर चलता आ रहा है। दिनप्रतिदिन नयीनयी योजनाओं के साथ राष्ट्र हित के अनेकानेक कामों में अग्रेसर है। वर्धा में वं. मौसीजी - लक्ष्मीबाई केळकर द्वारा प्रारंभ किया कार्य विश्व में फैल रहा है। इस कार्य से जुडी बहनों का जीवन नयी प्रेरणा, उमंग, आशा, विश्वास, हिंदुत्व के भाव से सुगंधित कर रहा है।

चिंतनशील व्यक्तित्व

वं. मौसीजी एक चिंतनशील व्यक्तित्व था। अपनी आयु के 31 वे वर्ष में उन्होंने इस अनोखे कार्य का प्रारंभ किया। 15 वर्ष की आयु में उनका विवाह हुआ। 1932 में गृहस्थी का सपना चूरचूर हुआ। छः बेटे दो बेटियाँ थी। इनका दायित्व निर्वाह करना था। यह सब निभाते समय वह अपने राष्ट्रीय कर्तव्यों के प्रति भी सजग एवं सचेत थी। वर्धा में बापूजी का आश्रम होने के कारण उनकी तथा अनेक श्रेष्ठ महानुभावों की निरंतर आवागमन रहता था। इस कारण वं. मौसीजी को अनेकों प्रेरणादायी विचार सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, विचार समृद्ध होते गयें।

वह काल स्वाधीनता आंदोलन का था। गांधी जी के प्रेरणासे महिलायें बडी मात्रा में घर से बाहर आकर इस आंदोलन में भाग लेने लगी थी। वं. मौसीजी भी प्रभातफेरी, पिकेटिंग आदि के कार्यक्रम में सहभागी होती थी। परंतु वहाँ के अनुभव मन को उद्वेलित करते थे। मन में प्रश्न था कि महिलाओं का आंदोलन में जुडना यह क्षणिक आवेग तो नहीं है? ज्वार के समान यह लुप्त तो नहीं हो जायेगा?

स्वमानरक्षा

वह काल ऐसा था कि महिलायें घर की चारदीवारें लांघकर बाहर आ रहीं थी। शिक्षा के विविध क्षेत्र उनके लिये खुले हो रहें थें। यह शिक्षा उन्हे थोडा व्यक्तिकेंद्रित, उच्छृखंल बना रहीं है क्या? कर्तव्य से भी अधिक अधिकारों के प्रति वे सचेत हो रहीं है क्या? ऐसे विचार वं. मौसीजी के मन में प्रत्यक्ष वातावरण देखकर उठते थे। सत्यशोधक समाज द्वारा महिला जीवन में सुधार लानेवाले प्रयत्न और व्यापक राष्ट्रीय विचारों का अधिष्ठान लेकर समग्रता से चले ऐसा भी उनको लगा। उन दिनों पत्रिकाओं के मुखपृष्ठपर छपलेवाले महिलाओं के चित्र (गीले वस्त्र पहनी हुई महिला आदि), क्या भारतीय विचारधारासे महिला भटक रहीं है? ऐसा ही लग रहा था। दूसरी ओर दहेज के कारण जलायी जानेवाली बहुबेटियों की कहानीयाँ मन को झकझोर देती थी। महिलाओं के अपहरण तथा उनपर होनेवाले बलात्कारों की घटनाओं के आनेवाले समाचारों से वह व्यथित होती थी। इस दलदल से उनको बाहर निकालेगा? वं. मौसीजी के मन ने ही उत्तर दिया 'वह स्वयं!' इतिहास की सीता, द्रौपदी, पद्मिनी, रानी लक्ष्मीबाई आदि अनेकों के चरित्र बताते है की उसकी तेजस्विता ने ही उसकी रक्षा की है। अतः आज भी महिलाओं को तो अपने सन्मान का रक्षण स्वयं ही तेजस्विता से करना होगा।

सीता के जीवनसे राम की निर्मिति

इस विचार की और पुष्टि प्राप्त हुई - म. गांधीजी के उत्तर से। एकबार वं. मौसीजी सेवाग्राम आश्रम में सायं प्रार्थना के समय उपस्थित थी। तब प्रश्नोत्तरी के समय बापूजी को एक महिला द्वारा पूछा गया प्रश्न "आप महिलाओं को सीता का आदर्श रखने के लिये बताते है वैसे पुरुषों को राम का आदर्श रखने

के लिये बताते है क्या?" तब उन्होंने दिया हुआ उत्तर "नहीं - मुझे ऐसी आवश्यकता नहीं लगती। क्यों कि सीता के जीवन से राम के जीवन की निर्मिति होती है ऐसा मेरा विश्वास है।" इस विधान की सत्यता का अनुभव लेने के लिये वं. मौसीजी ने रामायण का अध्ययन किया। तब स्त्री पर निसर्गतः सौपा गया निर्माण एवं स्वरक्षण काय कार्य एवं उसका जीवन ध्येयपूर्ण, सुशील, सुधीर, समर्थ बनाने की आवश्यकता उनके सम्मुख स्पष्ट हुई।

सुशीलता, सुधीरता के साथसाथ स्त्री समर्थ भी हो यह स्वामी विवेकानंद जी के वचनों से मन पर अंकित हुआ। विवेकानंद जी कहते है गरुड पक्षी को उडान भरना हो तो उसके दोनों पंख समान सामर्थ्यशाली होने चाहिये। वैसे ही स्त्री भी राष्ट्र का आधा हिस्सा है वह जब तक सक्षम नहीं बनेगी तबतक देश सक्षम नहीं हो सकता समर्थ नहीं बन सकता। कैसे प्रयास किये जाय? वं. मौसीजी का मन इसी चिंतन में डुब गया।

उस समय देश की परिस्थिति भी उद्वेगजनक थी। श्रद्धानंद जी जैसे श्रेष्ठ व्यक्तीकी हत्या, क्रांतिकारकों का फांसी के फंदे पर झुलना आदि के कारण लगता था की घने अंधकार में है हम। देश को ऐसी विपन्नावस्ता क्यों? मुठ् ठीभर अंग्रेज हम करोडों पर क्यों हावी हो रहे है? इसका उत्तर उनको उनके चिंतन के कारण ही मिला। इस की जड में है हमारी विघटनवादी वृत्ति। उस के कारण ही पराभव, परदास्य हमारे भाग्य में लिखा गया। अतः अनेक समस्याओं का समाधान एकही है हिंदु समाज का संगठन अर्थात् एक उदात्त ध्येय लेकर एकत्रित आना। इस युग की आवश्यकता संघटित होने की है - क्यों कि उसके अभाव में ही स्वाधीनता के कोई प्रयास सफल नहीं हो रहें है। समाज हित कि दृष्टी से स्त्री संगठित होवें और संस्कारित भी। क्यों कि महिला यदि सचेत और संघटित हुई तो वह अपने संतानो को उन्ही संस्कारों से ओतप्रोत कर इतिहास बदल सकती है। स्त्री संगठित होने से उसकी पूर्ण क्षमता का उपयोग हो पायेगा। आज उसकी सभी शक्तिया सुप्त है उनका जागृत करना चाहिए। ऐसे अनेक विचारमंथनों में से निकला हुआ नवनीत अर्थात् राष्ट्र सेविका समिति। वं. मौसीजी के विचारमंथन के काल में ही उनके पुत्र संघ शाखा में जाते थे। उनके व्यवहार में बालने में हो रहा परिवर्तन एवं अनुशासन आदि देखकर वं. मौसीजी को लगा जो मेरे मन में अस्पष्ट संकेत है वहीं इनके द्वारा व्यक्त हो रहे है। अतः प. पू. डॉ. जी के वर्धा प्रवास में वं. मौसीजी उनसे मिलने के लिये गयी। महिलाओं को भी इस प्रकार के काम की आवश्यकता प्रतिपादित की। डॉक्टरजी ने कहा मैने तो केवल पुरुषों के संगठन के बारे में सोचा है महिलाओं के बारे में नहीं। परंतु आपने कहा है तो इसके बारेमें सोचुंगा। उसके पश्चात् आप इसका दायीत्व लेंगी तो हम सहयोग देंगे ऐसा डॉ. जी. ने आश्वासन दिया और वह पुर्णतः निभाया भी। अनेक बार उनकी भेट हुई उसमें इस विषय पर चर्चा होती रही। दोनों महानभावों ने एक निश्चय किया कि ये दोनों संगठन रेल की पटरी के समान समानांतर चलते हुए अपने ध्येयमार्ग तक पहुंचेंगे।

1936 के विजयादशमी के पावनपर्वपर श्री यादवराव माधव काले, बुलढाणा इनके उपस्थिति में वर्धा नगरी में कार्य का शुभारंभ हुआ।

महिलाओं का खुले आम चार दिवारों के बाहर परिवार जनों के साथ न होते हुए घुमना जिस काल में आक्षेपार्ह माना जाता था ऐसे समय वं. मौसी जी ने इस संगठन के माध्यमसे तरुणियोंद्वारा खुले मैदान में शारीरिक कार्यक्रम करवायें और स्पष्टरूप से समाज में यह विचार प्रतिष्ठित किया कि स्त्री अब अबला नहीं रहीं वह स्वामिनी, मानिनी, तेजस्विनी, राष्ट्रसेविका बनकर समाज को प्रभावित करेगी।

जब महिलायें लाठी हाथ में लेकर रास्ते से जाती थी तो लोग टिप्पणी करते थे। 'डंडा हाथ में सासू के पीठ में' ऐसे उलहाने देते थे फिर भी महिलायें अडिग थी। स्वाधीनता संग्राम की उस बेला में महिलाओं में

देशकार्य की बडी ललक थी। भंडारा में नानी कोलते, पुणे में ताई आपटे आदि ने अपने अपने स्थान पर महिलाओं के लिये इसी विचार से कार्य प्रारंभ किया था। प. पू. डॉक्टरजी द्वारा वर्धा के कार्य की जानकारी प्राप्त होते ही वर्धा में प्रारंभीत कार्य मूल कार्य मानकर अन्य सभी प्रवाह वर्धा की धारा में सम्मीलित हो गये। किसीका भी स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा। बल्कि सभीका मिलकर एक सशक्त प्रवाह राष्ट्र भक्तिभावना से बहनों को सिंचित करते ध्येयमार्ग की ओर बढने लगा। 1947 तक देश के महाराष्ट्र, विदर्भ, मध्यप्रदेश, सिंध, पंजाब, जम्मूकश्मीर, गुजरात, आंध्रप्रदेश आदि प्रांतो में कार्य प्रारंभ हुआ। लगभग 240 दैनंदिन शाखायें थी। शिशु, अरुण, तरुण, प्रौढतक बहनें दैनिक शाखा में आती थी। योगचाप, दंड, छुरिका, व्यायामपद्धति, व्यायामयोग आदि शारीरिक के साथ गीत, बौद्धिक चर्चा आदि का भी आयोजन शाखाओं में होता था। विदर्भ में वेणुताई कळमकर, कालिंदीताई पाटणकर, कमलाबाई नागले, काकू परांजपे, नानी कोलते, महाराष्ट्र में ताई आपटे, ताई दिवेकर, काकू रानडे, काशीताई कुळकर्णी, जिजी केतकर, ताई आगाशे, म. प्र. में ताई अंबर्डेकर, गुजरात में जिजी काणे, आंध्र में माई अफझुलपूरकर कार्य की धुरा संभाल रहीं थी। प्रतिवर्ष वर्ग होते थे। समिति का प्रथम प्रशिक्षण वर्ग 1938 में वर्धा में हुआ। वर्ग में समिति कार्य की पुरी जानकारी दी जाती। पश्चात् कार्य का विकेंद्रीकरण करने की दृष्टी से प्रथम, द्वितीय वर्ष के वर्ग अपने अपने प्रांत में होने लगे। तृतीय वर्ष का वर्ग नागपूर में होता था। आज भी वहीं क्रम चल रहा है। 1947 के वर्ग में सिंध, जम्मू आदि स्थानों से बहनें आयी थी। 1945 में प्रथम अखिल भारतीय बैठक मुंबई में हुई। उसके पश्चात् प्रतिवर्ष अखिल भारतीय बैठक होने लगी। कार्यविस्तार के साथ-साथ अखिल भारतीय बैठक वर्ष में दो बार आयोजित होना प्रारंभ हुआ। वर्ष की प्रथम अर्धवार्षिक बैठक लगभग जुलै में होती है वह नागपुर में और द्वितीय अर्धवार्षिक बैठक फरवरी में अलगअलग प्रांतों में योजनानुसार होती है। उसमें उल्लेखनीय है। सन् 1989 में भानपुरी (बस्तर संपन्न म. प्र. का वनवासी क्षेत्र), 1998 में हुई कन्याकुमारी की चिंतन बैठक सन् 2000 में गुवाहाटी बैठक के पश्चात् पूर्वोत्तर राज्यों की परिस्थिति ध्यान में लेकर अलगअलग गुट परिस्थिति दर्शन, अध्ययन हेतु विभिन्न स्थानोंपर भेजे गये थे। हाल ही में फेब्रुवारी 2003 में पांडिचेरी में हुई बैठक (श्री माँ की 125 वी जयंती के उपलक्ष्य में) उनकी जीवनी पर पुस्तक प्रकाशन एवं सभी बहनों का अरविंदाश्रम का दर्शन प्रभावी रहा।

आज देश के मिझोरम, अरुणाचल आदि प्रदेश छोडकर अन्य सभी प्रांतों में कार्य चल रहा है। कार्य शायद अधिक भी पनपता परंतु 1948 की गांधीवध की घटना के कारण देश में जातिविद्वेष भडका, लूटपाट, आगजनी की घटनायें स्थानस्थानपर हुई। संघपर प्रतिबंध लगाया गया। समितिपर प्रतिबंध तो नहीं था परंतु अनेक सेविकाओं को भयंकर कष्ट हुए। देश की परिस्थिति देखकर वं. मौसीजी ने कुछ काल के लिये कार्य स्थगित किया। शाखायें खुले मैदान के बदले घर में, मंदिर में भजनमंडली, शारदा मंडल आदि के रुप में चलने लगी। परंतु इस परिस्थिति ने समितिकार्य को काफी धक्का लगा। संघ पर लगाये गये प्रतिबंध हटाने हेतु बहनों ने प्रयास किये। मुंबई, नागपूर के मोर्चे विशेष थे। मुंबई की बहनें तत्कालीन मुख्यमंत्री मोरारजी देसाई से मिली। वार्तापत्र मुद्रांकित करना, बांटना, उचित स्थानों पर छिपछिपकर पहुंचाना, यह कार्य भी सेविकाओं ने किया। पुरुष बंदी हुए है ऐसे घर में जाकर मिलना ढांढस बंधाना चल रहा था। प्रतिबंध के बादल हटने के बाद कार्य पूर्ववत् प्रारंभ भी हुआ। परंतु सूत्र खंडित होने के कारण कार्य की गति में अंतर आया। अनेक ध्येयनिष्ठ युवतियों के विवाह हुए। एकत्रिकरण के लिये भजनवर्ग, शारदोत्सव मंडल आदि नये मार्ग खोजते हुए कार्य को गति दी गयी।

शारीरिक शिक्षण यह समिति शाखा का एक प्रमुख अंग है। प्रारंभ से ही दंड, खड्ग, छुरिका, वेत्रचर्म,

व्यायामपद्धती, गणसमता आदि सिखाया जाता था। 1953 से योगासनों का अंतर्भाव शारीरिक शिक्षा में किया गया। उसके पश्चात् सत्तर के दशक में नियुद्ध का अंतर्भाव किया गया। कुछ वर्गोंपर निशाने बाजी, नागरी सुरक्षा, प्रथमोपचार आदि भी सिखाने का प्रयोग हुआ। 1986 में नागपूर संमेलन में योग के लिये विशेष सत्रों का आयोजन किया था। विवेकानंद केंद्र, कैवल्यधाम, योगविद्याधाम, आदि विविध योगकुलों को एकत्रित लाया था। योग और मातृत्व यह विषय भोपाल की डॉ. चरणजीत घुई की अध्यक्षता में आयोजन हुआ।

बौद्धिक

समितिस्थानों पर विविध विषयों पर बौद्धिक, चर्चा नित्य होते है। बोधपट विस्तार, अमृतवचन, श्लोक कंठस्थ करवाना यह शाखा का एक प्रमुख उपक्रम है। वर्तमान में कार्यशालाओं का प्रयोग यशदायी हो रहा है। परिसंवाद आदि का भी आयोजन किया जाता है संपूर्ण देश में सभी शाखाओं में एक ही विषय नववर्ष के स्वागत के समय तथा विजयादशमी उत्सव के समय रखा जाता है।

उत्सव

वर्षप्रतिपदा, रक्षाबंधन, गुरुपौर्णिमा, विजयादशमी, मकरसंक्रमण आदि 5 पर्व विशेषरूप से मनाये जाते है। तीनों आदर्शों की पुण्यतिथियाँ तथा स्थानीय विशेष महिलाओं की उदा. कित्तूर चेन्नम्मा, रूद्रम्मा आदि की पुण्यतिथियाँ मनायी जाती है। सेविकाओं के आत्मीयसंबंध बढे, इस दृष्टि से कोजागिरी, होलिमिलन, सहभोज, वनभोज, सहल, एकत्रिकरण आदि कार्यक्रमों का सिलसिला चलता ही रहता है।

युगादि के दिन नववर्ष का स्वागत धूमधाम से किया जाता है। आग्रा में नववर्ष की पूर्व संध्यापर मेला लगाया जाता है। अन्य स्थानोंपर कहीं प्रातः शहनाई लगाकर, चौराहे निश्चित कर वहाँसे आनेजानेवाले नागरिकोंको तिलक करना, मिठाई बांटना, नूतनवर्षाभिनंदन के स्टीकर्स वितरित करना आदि। वैसेही शाखाशाखाओं में रामकथा प्रवचन भी होते है। कहीं सेविकायें वं. मौसीजी के प्रवचनों की पुस्तक पढती है, कहीं वे स्वयं विषय तयार कर प्रवचन देती है। कहीं किसीको प्रवचन देने हेतु बुलाया जाता है।

रक्षाबंधन यह व्यापक जनसंपर्क के लिये अतीव उपयुक्त ऐसा पर्व है। अतः अपाहिज एवं अंध विद्यालय, प्रशासनिक कार्यालय आदि विविध स्थानोंपर जा कर राखी बांधती है। प्रतिवर्ष वंदनीय प्रमुख संचालिका जी की ओरसे रक्षाबंधन संदेश भेजा जाता है। सन् 1951 से यह उपक्रम चल रहा है।

गुरुपोर्णिमा के दिन गुरु पुजन और संक्रमण उत्सव में प्रात्यक्षिक होते है।

विजयादशमी के पावनपर्वपर पथसंचलन, शारीरिक प्रात्यक्षिक लिये जाते है वैसे ही योजनानुसार एक विशिष्ट विषयपर बौद्धिक होता है। शस्त्रशास्त्रसंभृतम् भवतु भारत् स्वयंमेव मृगेंद्रता जैसे विषय रखे गये है। इसी दिन शाखामें शस्त्रपूजन भी होता है। कई स्थानों पर सघोष संचलन होता है।

वं. मौसीजी का जन्मदिन संकल्पदिन, स्मृतिदिन संपर्कदिन के रूप में तथा वं. ताईजी का स्मृतिदिन सेवादिन के रुप में मनाया जाता है।

संमेलन

समितिकार्य प्रारंभ होने के केवल 9 वर्ष पश्चात् ही अखिल भारतीय त्रैवार्षिक संमेलनों का प्रारंभ हुआ। वं. मौसीजी को सभी सेविका बहनें एकत्रित आयें, अपने विचारों का आदानप्रदान करें, हम एक परिवार की अनुभूति लें। नयी उमंग, नयी प्रेरणा, विश्वास लेकर कार्यक्षेत्रमें लौटे ऐसी आवश्यकता प्रतीत हुई। वर्ग में अनुशासन और मिनिटमिनिट का कार्यक्रम निश्चित रहता है। उससे थोडा ढिला फिर भी अनुशासनयुक्त ऐसा संमेलन सर्वप्रथम मुंबई में हुआ। उसके पश्चात् 1948 में मिरज, 1953 में मुंबई, 1958 में नाशिक, 1961 में वर्धा, 1964 में नागपूर 1968 पुणे, 1971 ग्वालियर, 1974 दिल्ली, (जिजामाता-त्रिशताब्दि के उपलक्ष्य में) 1978 भाग्यनगर (हैद्राबाद),

1981 बंगलोर, 1984 कर्णावती (अहमदाबाद), 1986 में नागपूर, ऐसे त्रैवार्षिक संमेलन हुए। 1986 में संमेलन त्रैवार्षिक के स्थानपर दशवार्षिक लेने का निर्णय हुआ। उसके अनुसार 14 वाँ संमेलन दिल्ली में हुआ। 10,000 की संख्या थी।

सम्मेलनों की विशेषता

1948 में मिरज में चीनी की कमी थी बहनों ने घरघर से एकेक कटोरी चीनी लाकर एवं शृंखलाबद्ध पद्धतिसे पानी भरकर कमी को दूर किया। कम श्रम में अनुशासन से कैसा काम होता है इसका यह प्रत्यक्ष वस्तुपाठ ही था।

1953 का संमेलन

वं. मौसी जी ने 1953 में मुंबई में अ. भा. त्रैवार्षिक संमेलन के समय में दिनांक 2 मे से 4 मे 1953 को 'भारतीय स्त्री जीवन विकास परिषद' नाम से विशेषज्ञों की एक परिषद आयोजित की थी। 'भारतीय स्त्रीजीवन विकास परिषद' यह समिति के इतिहास में विशेष महत्व रखती है। महर्षि अण्णासाहेब कर्वे, डॉ. म्हसकर, शिक्षणतज्ञ श्रीमती यमुनाताई हेर्लेकर, श्रीमती कमलाताई देशपांडे आदि को आमंत्रित किया गया था। समिति के शारीरिक पाठ्यक्रम में कुछ परिवर्तन की आवश्यकता, स्त्री का सौष्ठव, सुघटित, स्वास्थ्य बनाये रखनेवाले ऐसे कुछ व्यायामप्रकार अपने पाठ्यक्रम में अंतर्भूत करना और दुसरा भी एक विचार वं. मौसीजी के मन मे था की स्त्रियों के लिये शिक्षा के सभी क्षेत्र मुक्त हुएं है, जिस से उसे ज्ञान प्राप्त हो रहा है, अनेक क्षेत्रों में वह प्रगतिपथपर है फिर भी घरगृहस्थी तो उसे निभानी ही है। 'गृहिणी' यह उसकी महत्वपूर्ण भूमिका है परंतु गृहिणी पर गुणों के लिये आवश्यक ऐसा न कोई प्रशिक्षण है और नहीं कोई पाठ्यक्रम बना है। केवल कर्वे विद्यापीठ में 'गृहितागमा' इस नामसे स्नातक उपाधि थी। अतः स्त्री को 'गृहिणी' रुप में संस्कारित करना, घर के साथ ही समाज और राष्ट्र के दायित्व का बोध कराने हेतु इस परिषद् का आयोजन था। 1300 सेविकाएं इस संमेलन में उपस्थित थी। कपास से बनाये हुए चित्रों की प्रदर्शनी भी आयोजित कि थी। सांस्कृतिक कार्यक्रमों का दायित्व सुप्रसिद्ध लेखिका योगिनीताई जोगळेकर एवं सुशीलताई महाजन का था। प्रमुख संयोजिका मा. बकुळताई थी। 'सेविका' वार्षिक का शुभारंभ हुआ। महामहोपाध्याय बाळशास्त्री हरदास जी द्वारा वार्षिक का प्रकाशन हुआ। 'गृहस्थीरूपी रथ का पुरूष रथी एवं स्त्री सारथी है' यह कल्पना वं. मौसी जी ने प्रथम बार प्रस्तुत की। तब तक स्त्री और पुरुष गृहस्थी रथ के दो पहिये है यहीं कल्पना प्रचलित थी। वं. मौसी जी के इस नये कल्पना से स्त्री को उसके विशेष दायित्व का बोध दिया। सारथी कुशल और चतुर होना नितांत आवश्यक है। महाभारत युद्ध में भगवान कृष्ण जी ने अर्जुन का सारथ्य स्वीकार कर 'सारथी' की भूमिका का महत्त्व सबके सम्मुख रखा है। वं. मौसी जी के इस विचार से सभी आश्चर्यचकित हुए। व्यंगचित्रकारों ने भी दूसरे दिन इस कल्पना पर आधारित व्यंगचित्र निकाले।

1961 में वर्धा में संमेलन हुआ। प्रथम बार शोभायात्रा का आयोजन किया गया। यह पद्धति उस समय सबके लिये नयी थी और यह शब्दप्रयोग भी। इस संमेलन के समय कार्य का आधार ऐसी वं. मौसी जी की जेठाणी उमाबाई का देहान्त हुआ। फिर भी वं. मौसी जी संमेलन के समापन कार्यक्रम में आयी उनका भाष्ण भी हुआ। कर्तव्यकठोरताका पाठ सेविकाओं ने सहजरूप से ग्रहण किया। 1964 में नागपूर में संमेलन हुआ। वं. मौसीजी की षष्ट्यब्दी निमित्त सेविकाओं ने उनका अभिनंदन किया। प. पू. गुरुजी उपस्थित थे। वं. मौसीजी के षष्ठ्यब्दी निमित्त सेविकाओं ने विविध संकल्प किये थे।

1968 में प्रथमबार सघोष पंथसंचलन पुणे में हुआ। 1971 में प्रथम बार ही महाराष्ट्र से बाहर अन्य प्रांत में हिंदी भाषी प्रांत में - ग्वालियर में - संमेलन हुआ। 1978 में भाग्यनगर में प्रथमबार नागरी सुरक्षा तथा जिम्नॅस्टिक्स का प्रदर्शन हुआ। संमेलन के कुछ दिन पूर्व आंध्र में विलक्षण तुफान आया था अतः

संमेलन सादगीपूर्ण पद्धति से मनाते हुए राशि आंधीग्रस्त इलाके में दी गयी। इस संमेलन का भाषण वं. मौसी जी का अखिल भारतीय स्तर का अंतिम उद्‌बोधन रहा। 1981 का संमेलन बंगलोर में हुआ। वं. ताई जी प्रमुख संचालिका बनने के बाद उनका यह प्रथम सार्वजनीन उद्‌बोधन ही कहना होगा। पेजावर के शंकराचार्य जी उपस्थित थे। 1984 में कर्णावती में संमेलन के समापन कार्यक्रम में मुरारीबापू की उपस्थिति रहीं। ऐन समयपर प. पू. बाळासाहेब जी आ रहें है अतः स्थान नहीं मिलेगा ऐसा विद्यालयने सूचित किया। स्थान की पर्यायी व्यवस्था कर कार्यक्रम प्रभावी रूप से हुआ। 1986 में नागपूर में संमेलन में असमय वर्षा ने सेविकाओं की परीक्षा ली। इसी समय वं. मौसी जी का स्मारक श्रीशक्तिपीठ के प्राच्यविद्याकक्ष एवं श्रीशक्तिपीठ का उद्‌घाटन हुआ।

दिल्ली संमेलन में 10,000 सेविकायें थी। चित्रपात्रवस्त्रक्षेत्र प्रदर्शनी आकर्षण का विषय रहा। सेविका प्रकाशन की ओर से प्रेरिका, 'कर्तृत्व, मातृत्व, नेतृत्व', Life Sketch of V. Mousiji यह तीन पुस्तकें तथा भारतीय संस्कृति के मूलाधार पुस्तकोंका प्रकाशन हुआ। 1986 के पश्चात् योजनानुसार प्रांतप्रांत में भी संमेलन आयोजित किये गये।

विधायक उपक्रम

1957 स्वातंत्र्ययुद्ध का शताब्दि वर्ष इस युद्ध की कुशल सेनानी राणि लक्ष्मीबाई का स्मृतिशताब्दि वर्ष। वं. मौसी जी के मन में तीनों आदर्शों के प्रति नितांत श्रद्धा थी और उनके स्मारक देश के विभिन्न स्थानोंपर महिलाओं को प्रेरणा देते रहें यह उनकी इच्छा थी। समितिकार्य प्रारंभ हो कर 21 वर्ष हुए थे। समिति का अपना कार्यालय बनाना भी आवश्यक लग रहा था। नाशिक पावनभूमि है। प्रति 12 वर्ष के बाद यहाँ कुंभमेला होता है और प्रभु रामचंद्रजी ने 14 वर्ष के वनवास का कुछ कालखंड यहाँ व्यतीत किया था, संगठनशास्त्र के प्रवर्तक रामदासजी की भी यह तपश्चर्यास्थली! अतः वहाँ 'स्वा. राणी लक्ष्मीबाई स्मारक समिति' इस नामसे ट्रस्ट निर्माण किया गया। समिति का सर्वप्रथम सर्वजनिक प्रतिष्ठान। राणी भवन इस नामसे यहाँ का भवन सबको ज्ञात है। दर्शनी भाग में खड्गधारिणी का पुतला है। आज इस संस्थाने जनमानस में अपना एक विशेष स्थान बना लिया है।

उसके पश्चात् वं. मौसी जी की षष्ठ्यब्दी के उपलक्ष्य में उन्हें समर्पित किये गये श्रद्धानिधि से नागपूर में प्रधान कार्यालय देवी अहल्या मंदिर का निर्माण हुआ। वं. मौसीजी को रामायण से प्राप्त पवित्र राशि का भी इस पावनस्थली के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है। उसके पश्चात् वर्धा में 1972 में अष्टभुजा मंदिर, मुंबई 1975 में राजमाता जिजामाता ट्रस्ट, भारतीय स्त्रीजीवन विकास परिषद, पुणे में जिजामाता स्मारक समिति, सोलापूर में कित्तूर चेन्नम्मा स्मारक समिति, लातूर में स्नेहसंवर्धिनी, कोल्हापूर में कृष्णा स्नेह संवर्धिनी, नांदेड में सरस्वती प्रतिष्ठान, तेजस्विनी सेवा प्रतिष्ठान यवतमाळ, बिलासपूर, स्व. इंदिराबाई सुभेदार प्रतिष्ठान भंडारा, राणी रुद्रम्मा स्मारक समिति हैद्राबाद, मंगेर मंगलम् चेन्नई, सृकृपा बंगलोर, मंगलोर, रघुमणी स्मृती केरळ, श्रीशक्तिप्रतिष्ठान गुजरात, विश्वंभरा दिल्ली, सरस्वती सिंधु न्यास जलंधर, वं. लक्ष्मीबाई केळकर स्मारक समिति कलकत्ता, उर्मिला स्मारक समिति गुवाहाटी, इमालक्ष्मी स्मारक समिति मणिपूर इस नामसे 35 प्रतिष्ठान कार्यरत है।

उनमें विविध उपक्रम चल रहें है। वाचनालय जिसमें वर्धा एवं पुणे के वाचनालय को बी दर्जा प्राप्त है। पुस्तकालय, शिशु मंदिर, रुग्णोपयोगी साहित्य सेवा केंद्र, वसतिगृह, सेवा छात्रावास, कमलिनी मूक बधिर विद्यालय, धर्मार्थ चिकित्सालय, प्याऊ, सिलाई केंद्र, योगासन वर्ग, स्वदेशी वस्तु भांडार, क्रीडासंकुल आदि है। चार स्थानों पर अष्टभुजा मंदिर एवं एक श्रीराममंदिर है। उद्योगमंदिर भी अपने कुछ प्रतिष्ठानों की विशेषता है। अनेक महिलाओं को यहाँ हम रोजगार दे सकते है। जिजामाता ट्रस्ट, श्रीशक्तिपीठ, राणी भवन के उद्योगमंदिर विशेष उल्लेखनीय है। जिजामाता

में क्विंटलो से मिरची पावडर, हलदी बनती है। दीपावली के समय सुकामेवा के भेट डिब्बे बनाते है। श्रीशक्तिपीठ में रोज ताजा व्यंजन बनता है। कर्णावती में शांपू, क्रीम, गुवाहाटी में गमछे, चद्दर तो बंगाल में ज्यूट की वस्तुएं बनायी जाती है। जम्मू के पहाडी-देहाती क्षेत्र में भी ज्यूट थैलीयाँ आदि बनाने का प्रशिक्षण देकर उनके द्वारा थैलीयाँ आदि बनाये जाते है।

लगभग सभी प्रतिष्ठानो में स्वदेशी वस्तु भांडार बहुत अच्छे प्रकार से चलाये जाते है। संभाजी नगर में 'जुसापी' प्लास्टीक कॅरी बॅग के पर्याय का प्रयोग अति यशस्वी रहा।

शैक्षिक

भारतीय श्रीविद्यानिकेतन इस नाम से और समिति का शैक्षिक प्रकल्प है। स्त्री के नैसर्गिक कर्तव्यों के अनुसार उसका विकास हो इस उद्देश्य से इस का निर्माण हुआ। 1953 में गृहिणी विद्यालय भी इस दृष्टि से कार्य कर रहा था। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि' यह इसका ब्रीद वाक्य है। जबलपूर में भी इसी नामसे कार्य है। नागपूर, जबलपूर, मुंबई में एकेक विद्यालय चल रहा है। यवतमाळ में विद्यालयों से संपर्क कर अपना अतिरिक्त पाठ्यक्रम पढाया जाता है। भारतीय श्रीविद्यानिकेतन की ओरसे संस्कृत वर्णमाला का प्रकाशन हुआ। इसके पूर्व संस्कृत में वर्णमाला उपलब्ध नहीं थी। मुंबई में गृहिणी विद्यालय और नागपूर में महिला कला निकेतन ये शैक्षिक संस्थायें है। ड्रेस डिझायनिंग आदि विविध पाठ्यक्रम चलाये जाते है।

सेवा

'शिवभावेन जीवसेवा' यह इस युग के लिये दिया गया महान् मंत्र है। उसके अनुसार सेवाकार्यों के माध्यम से हम तेजस्वी हिंदुराष्ट्र की संकल्पना की ओर अग्रसर हो सकते हैं। सेवाबस्तीमें हम संस्कारवर्ग आदि चलायें यह हमारी द्वितीय प्रमुख संचालिका वं. ताई जी की अतीव इच्छा थी। धीरे-धीरे समिति का सेवाविभाग विकसित हो रहा है। गुजरात में अगरिया वस्ती में चलनेवाला संस्कारवर्ग, खिलौना बँक, अपने आप में विशेष है। अनेक स्थानों पर संस्कारवर्ग, सिलाईकेंद्र, विनाशुल्कशिक्षण सुविधा, साक्षरतावर्ग, चिकित्सालय, प्याऊ, आदि। भिन्न-भिन्न प्रांतों में निःशुल्क बालिका छात्रावास भी चलाये जाते है। पूर्वांचल की बालिकाओं के लिये वनवासी कन्या छात्रावास देवी अहल्या मंदिर में चल रहा है। जिसमें असम, अरुणाचल, मणिपुर, मिझोरम, नागालॅण्ड, त्रिपुरा इन छः प्रांतों की जनजाती की बालिकायें रहती है। तेजस्विनी कन्या छात्रावास कुष्ठ रोगियों के स्वस्थ बालिकाओं के लिये बिलासपुर में, लेहलद्दाख की बालिकाओं के लिये जालंधर में छात्रावास है। जम्मूकश्मीर के आतंकवादियों के कारनामों से अनेक परिवार प्रतिदिन उजडते रहते हैं। ऐसे परिवार के बालिकाओं के लिये जम्मू में, पारधी समाज की बालिकाओं के लिये तेजस्विनी कन्या छात्रावास-यवतमाळ, नक्षलवादियों के कारनामों से उध्वस्त परिवार के बालिकाओं के लिये भगिनी निवेदिता छात्रावास जगत्याल। मणिपुर की बालिकाओं के लिये बंगलोर में तथा मेघालय मिझोरम की बालिकाओं के लिये नांदेड में जून 2003 से वं. ताई आपटे कन्या छात्रावास प्रारंभ होगा। हाफलाँग एन.सी.जिल्स में रानी माँ गाईदिनिल्यु छात्रावास पूर्वांचल की जनजातीय बालिकाओं के लिये प्रारंभ हुआ है। बालिकाओं के सर्वांगीण विकास के लिये छात्रावासों में प्रयत्न किये जाते है। 2002 की दीपावली में सात छात्रावासों का त्रिदिवसीय एकत्रिकरण भी लिया गया।

सेविका प्रकाशन

1953 में सेविका प्रकाशन का प्रारंभ हुआ। सेविकाओं के सुप्त प्रतिभा को प्रोत्साहीत करना, अपनी वैचारिक भूमिका रखना तथा सुदूर प्रदेशों में भी कार्य की जानकारी पहुंचाना इस सब के लिये सेविका प्रकाशन का प्रारंभ किया गया। राष्ट्रसेविका समिति का मुखपत्र यहीं उसका परिचय। सेविकाओं का सेविकाओंद्वारा चलाया जानेवाला - सेविका प्रकाशन ऐसा सीधासरल नाम। प्रारंभ में सेविका वार्षिक में ही एक हिंदी विभाग प्रकाशित होता था। पश्चात् मराठी,

हिंदी, गुजराती वार्षिक निकलने लगे। इस वर्ष अर्थात् 2003 में सेविका मराठी ने अपना सुवर्णमहोत्सवी अंक प्रकाशित किया 'स्त्री माझे नाव असे'।

आज मराठी, हिंदी, इंग्लिश, गुजराती, कन्नड, तेलगु, बंगाली, असमिया, तमिल, उडिया, आदि 10 भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित हो रहीं है। आचारपद्धति, बलसाधना जैसी क्रमिक पुस्तकें, चरित्र, राष्ट्रीय समस्या आदि विविध विषयोंपर पुस्तके प्रकाशित होती रहती है। रिबन काटकर नहीं तो अन्य कलात्मक तरीके अपनाकर प्रकाशन किया जाता है। मराठी में 'चैतन्याची कळी' इस मालिका के अंतर्गत निवेदिता, राणी माँ गाईदिनिल्यू, मॅडम कामा आदि चरित्र प्रकाशित किये गये। वं. मौसीजी के रामायण प्रवचन, भगवद्ध्वज, वंदेमातरम्, कारसेवाओं में महिलाओं का योगदान, राष्ट्रीय सुरक्षा यह पुस्तकें विशेषरुपसे लोकप्रिय हुई। संस्कारप्रद, संस्कृतिसंवर्धक एवं कोशक प्रेरक राष्ट्रीय प्रश्नों को स्पर्श करनेवाला दर्जेदार साहित्य निर्माण करना यह 'सेविका' का ब्रिद है।

दिनदर्शिका

1965 से लेकर दिनदर्शिका प्रकाशित हो रहीं है। दिनदर्शिका शब्द भी प्रथमबार उपयोग में लाया गया। यह हिंदु कालगणना के अनुसार प्रकाशित की जाती है। मौसम की अचूक जानकारी, विविध क्षेत्र के महानुभावों की जन्म तथा पुण्यतिथियाँ, सुंदर सुभाषितों का संग्रह इस कारण दिनदर्शिका लोकप्रिय हो रही है। सन् 1990 से दिनदर्शिका में एक विषय प्रस्तुत किया जा रहा है। भारत की नदियाँ, 12 ज्योर्तिलिंग, 52 शक्तिपीठ, वंदेमातरम्, अहल्याबाई, भारत की विज्ञानजगत् को देन, भारत में स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् विज्ञान की उपलब्धियाँ, वैज्ञानिकों का परिचय, भारतीय आहारशास्त्र, रामायण आदि।

वार्ता - समिति की गतिविधियों से सेविकाओं को अवगत कराने हेतु पीछले छः वर्षोंसे 'वार्ता' प्रकाशित किया जा रहा है। वर्तमान में षणमासिक ऐसा उसका स्वरुप है।

प्रदर्शनी - संस्कारों द्वारा व्यक्तिनिर्माण यह समिति की विशेषता है। संस्कार देने के लिये विविध माध्यम अपनाये गये। चित्र अतीव प्रभावकारी होते है। अनेक भाषणों से हम जो व्यक्त नहीं कर पाते वह एक चित्र से प्रभावीरूप से होता है। चित्रप्रदर्शनी लोक शिक्षण का प्रभावी माध्यम है। अतः समिति चित्रप्रदर्शनी के माध्यम से अनेक विषयों पर उद्बोधन करती है। कै. काकू रानडे समिति के प्रदर्शन की उद्गाता थी। रुई की मूर्तियां यह उनकी विशेषता थी।

1950 में देश का संविधान संमत हुआ। युद्ध के बिना ही देश को स्वाधीनता प्राप्त हुई ऐसा उद्घोष चल रहा था। अतः वास्तव इतिहास से अवगत कराने हेतु - 1) 1857 से 1947, 2) वेदकाल से आजतक का ध्वज इतिहास, 3)रामायणकाल से आजतक भारतीय मानचित्रों में परिवर्तन, 4) घरौंदा प्रतियोगिता आदि प्रदर्शनिया की गयी। उसके पश्चात् विविध प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया।

1) रामकथा अति पावन, 2) स्वामी विवेकानंद, 3) भगिनी निवेदिता, 4) कित्तूर चेन्नम्मा, 5) स्वतंत्रता का मूल्य, 6) राणी लक्ष्मीबाई, 7) स्वा. सावरकर, 8) छत्रपति शिवाजीमहाराज, 9) मातृशक्ति की झलकियाँ, 10) धर्मांतरण एक राष्ट्रीय समस्या, 11) झुलसता कश्मीर, 12) वंदेमातरम् इतिहास, 13) वंदेमातरम् गीत के प्रत्येक शब्द के अर्थपर आधारित प्रदर्शनी (इस पद्धतिसे की गयी यह प्रथम प्रदर्शनी होगी।) 14) भारत की प्रगत वस्त्रकला, 15) चित्रपात्रवस्त्रक्षेत्र, 16) स्मृतिगंध - वं. मौसीजी, वं. ताईजी, 17) समिति परिचय, 18) समर्थ रामदास, 19) बृहत्तर भारत 20) स्त्री जीवन की दशा और दिशा 21) असम प्रश्न इत्यादि।

गीत - चित्र के समान संगीत भी अतीव परिणामकारी है। संगीत में महिलाओं की विशेष रुचि होती है। कहा जाता है प्रत्येक महिला के पास 'एक एक रती सोना और एक गीत' अवश्य होता है। इसीको विकसित करते हुए स्वरजिजाई, गीतजिजाऊ, गीतजिजा,

गीतलक्ष्मी, यज्ञशिखा, अहल्याबाई आदि विविध कार्यक्रम तयार हुए। भारतभक्तीपर गीतोंपर निवेदन के साथ भी कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये।

स्वप्न हे साकारले

जिजामाता की जीवनीपर आधारित 100 बहनों का नाट्याभिनय - निवेदन, गीत, मूकदृश्य आदि के माध्यम से 21 दृश्यों का 'स्वप्न हे साकारले' शिवाजी जन्मपूर्व परिस्थितिसे शिवराज्याभिषेक तक के 21 दृश्य प्रस्तुत करने का एक अभूतपूर्व कार्यक्रम 1973,1974 और 1979 में प्रस्तुत किया गया। आज भी लोगों के स्मृति में यह कार्यक्रम है।

विज्ञान प्रगत होते गया वैसे स्लाईडस्, व्हीडीओ कॅसेट भी बनाये गये। गीतलक्ष्मी - राणी लक्ष्मीबाई के जीवनपर आधारित स्लाइडस और गीतों का कार्यक्रम बिलासपूर में बना। नाशिक ने भी राणी लक्ष्मीबाई के जीवनपर 1 घंटे का स्लाइड शो बनाया। वं. मौसीजी की जीवनीपर आधारित कॅसेट नाट्य आदि प्रस्तुत किये गये।

पथनाट्य के भी प्रयोग स्थानस्थानपर किये जाते है।

नागपूर, नाशिक, ठाणे, पुणे आदि स्थानों पर पौरोहित्य वर्ग चलते है। इन दोनों वर्गो में अनुशासन भी है और समर्पण भी। श्रीशक्तिपीठ में प्रतिवर्ष कीर्तनवर्ग पुजा वर्ग होता है। कीर्तन यह लोकजागरण का प्रभावी माध्यम है। रामायण के अभ्यासवर्ग आयोजित किये जाते है।

आपात् प्रसंगों में

1962, 1965, 1971, 1998 के युद्धकाल में समितिने यथाशक्ति अपनी भूमिका निभायी। 1965 में मा. सिंधुताईजीने जम्मू से जोधपूर सीमावर्ती प्रदेश का प्रवास किया। तत्कालीन मा. सुरक्षा मंत्री एवं मा. पंतप्रधानजी को मिलकर परिस्थिति का ज्ञापन दिया। युद्धकाल में स्वेटर्स भेजना, हॉस्पिटल में जाना आदि विविध कार्य किये। 1998 में पुणे के 'क्वीन्स मेरी' में बहनोंने वहाँ की आवश्यकता नुसार चार एरोसोल डिसइन्फेक्टर यंत्र, चार थर्मास, सौ टोपीया तथा 22,000 रुपये रोख सहयोग के रूप में दिये। ताकि उपचार सुलभ हो। प्रतिवर्ष रक्षाबंधन एवं दीपावली में बहनें वहाँ मिठाई लेकर जाती है। उनके लिये कुछ मनोरंजनात्मक कार्यक्रम भी आयोजित किये।

2002 में जम्मू प्रदेश में युद्धसदृश परिस्थिति निर्माण हुई। सीमापर बारुद बिछायी गयी। शत्रुपक्ष के गोले घरपर गिरने के कारण घर गाव उध्वस्त होने लगे। शासन की ओर से राहत शिबिर लगाये गये। वहाँ की उध्वस्त मानसिकता देखकर संस्कारशिबीरों का आयोजन किया। नागपूर, असम, गुजरात, उ. प्र. आदि क्षेत्रों से जा कर बहनों ने वहाँ 18 शिबीरों में संस्कार वर्ग लिये। उन्हें गीत, कहानी, ज्युडो-कराटे, चित्रकला, पेंटिंग आदि सिखाया गया। इतनी विपरित परिस्थिति में महाविद्यालयीन युवतीयों को इस कार्य में जुटे हुए देखकर लोक आश्चर्यचकित हुए। पंजाब में आतंकवाद, उग्रवाद की चरमसीमापर था। योजनानुसार भाऊराव देवरस जी से बातचीत होकर बहनों को वहाँ विस्तारिका के रूप में भेजा गया।

भोपाल में विषैला गॅस बाहर आने के कारण निर्माण हुई आपत्ति, उमरगा भूकंप, मोवाड की बाढ, ओरिसा में तुफानी चक्रवात के समय, गुजरात में पशु चारे के लिये धन देना, उत्तरकाशी, जबलपूर के भूकंप आदि समय में शक्तिनुसार सहायता की गयी। 26 जानेवारी 2001 को गुजरात में भूकंप हुआ वहाँ भी बहनों ने सहायता की। राहत कार्य के लिये मुंबई, संभाजीनगर, नागपुर से बहनें गयी थी। उन्होंने भूकंपग्रस्त परिवारों के बच्चों को खेल खिलाना, संस्कारवर्ग लेना आदि कार्य, कुछ बहनों ने हॉस्पिटल में सुश्रुषा का काम किया। बहनोंने उनसे भी कच्छी कशिदा सिखा। मयापुर में 81 घरों का निर्माण किया। अपनी ही आर्किटेक्ट बहन विभूती ने संपूर्ण वर्ष देकर निर्माण कार्य की ओर ध्यान दिया। दिनांक 4 मे 2002 को लोकार्पण कार्यक्रम वं. उषाताई जी के प्रमुख उपस्थिति में हुआ।

विशेष कार्यक्रम

राष्ट्र के उत्थानमें जिनका विशेष योगदान है ऐसे महिलाओं के चरित्र समाज के संमुख रखने का समितिने हरसंभव प्रयास किया है। उनकी जन्म शताब्दी आदि के विशेष कार्यक्रम आयोजित किये है। उसके कुछ उदा. 1958 में राणी लक्ष्मीबाई स्मृतिशताब्दी का कार्यक्रम नाशिक में हुआ। 1982 में राणी लक्ष्मीबाई की 125 वी पुण्यतिथि अवसरपर झांशी में कार्यक्रम संपन्न हुआ। प्रदर्शनी, स्मारिका प्रकाशन, शोभा यात्रा, सार्वजनिक कार्यक्रम, झांसी किले का दर्शन आदि। कलकत्ता में शानदार कार्यक्रम हुआ। जागे नारी जागे देश स्मरिका प्रकाशित की गयी। नाशिक ने स्लाईड शो बनाया। उसके अनेक प्रयोग किये। वाराणसी यह राणी लक्ष्मीबाई का जन्मग्राम है। उनके जन्मदिनपर - जन्मस्थलीपर प्रतिवर्ष उन्हें मानवंदना दी जाती है। ऐसे ही कार्यक्रम ग्वालियर, नागपुर, पुणे में विविध संस्थाओं को एकत्रित कर होते है।

जिजामाता त्रिजन्मशती

1973 में जिजामाता की जन्मत्रिशताब्दि की थी। उनका जन्मग्राम सिंदखेडराजा में कार्यक्रम की योजना बनी। तब तक इस ग्राम से लोग अनभिज्ञ ही थे। कार्यक्रम के कुछ दिन पूर्व ही रेल्वे का देशव्यापी हडताल हुआ दीर्घकाल चला। रेल्वे की यह प्रथम हडताल थी। फिर भी बहनें वहाँ पहुंची। सघोष शोभायात्रा हुई। जिजामाता को मानवंदना दी गयी। व्यवस्था के लिये मा. ताई अंबर्डेकर, मंगलाताई तारे आदि बहनें मारुती मंदिर में रहीं। जिजामाता त्रिशताब्दि के उपलक्ष्य में मुंबई शाखा की सेविकाओं ने तीनसौ ग्रामों से संपर्क किया। आगे चलकर जिजामाता के 325 वी पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में जिजामाता का समाधिस्थान पाचाड में कार्यक्रम संपन्न हुआ। पूर्व नियोजन के अनुसार केवल 750 बहनें उपस्थित थी। केवल उतनी ही बहनों की व्यवस्था करना संभव था। क्योंकि पाचाड बहुत ही छोटा होने के कारण भोजन, पीने का पानी आदि सभी व्यवस्थायें निकटवर्ती नगर महाड से करनी थी। सिंदखेडराजासे ज्योति प्रज्वलित कर पाचाड तक लेकर वहा लगाई गयी। ग्रॅनाइट पर जिजामाता की जन्मतिथि, पुण्यतिथि तथा कुछ काव्यपंक्तियाँ लिखी गयी। घोष के साथ मानवंदना विविध सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए। प्रतिवर्ष मुंबई की सेविकायें वहाँ जाकर जन्मदिन मनाती है। केंद्रसरकार से पत्रव्यवहार कर जिजामाता का डाक टिकट छपवाया गया। विशेष अनुरोधपर 7 लाख अतिरिक्त टिकटें छपवायी गयी। 7 जून को टिकट विमोचन का मुख्य कार्यक्रम विज्ञानभवन दिल्ली में हुआ। मा. पंतप्रधान अटलबिहारी वाजपेयी जी ने टिकट लोकार्पण किया। उसके आधा घंटा पश्चात् नागपुर, मुंबई, चेन्नई, कलकत्ता, गुवाहाटी, अहमदाबाद आदि 7 स्थानोंपर तिकीट लोकार्पण के कार्यक्रम हुए। बंगलोर, सिंदखेडराजा, नाशिक आदि अनेक स्थानोंपर भी कार्यक्रम लिये गये। अहल्याबाई स्मृतिद्विशताब्दी के अवसरपर उनका जन्मग्राम चौडी में समिति ने सर्वप्रथम कार्यक्रम आयोजित किया। प्रमुख संचालिका जी को भी बैलगाडी में बैठकर जाना पडा। सोलापूर के बहनोंने व्यवस्था की। चौडी भी अतीव छोटा ग्राम है। महेश्वर उनकी कर्मभूमि में भी बडे कार्यक्रम का आयोजन हुआ। शोभायात्रा आदि हुई। शरदपूर्णिमा का दिन था नर्मदामैय्या के प्रवाह में रात को अनेक दीप प्रवाहित किये। प. पू. गुरुजी के गुरुबंधु श्री अमुर्तानंदजी महाराज 104 वर्ष की आयु में आशिष देने हेतु पधारे थे। न्यायपीठ के सामने मानवंदना दी। हे कर्मयोगिनी राजयोगिनी गीत का फलक एवं कुछ महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्थानों पर बोधवचन लगाये गये।

भगीनी निवेदिता के शताब्दि के उपलक्ष्य में 1968 में निवेदिता विशेषांक प्रकाशित किया। प्रदर्शनी का आयोजन हुआ। 1992 में छोटी पुस्तिका प्रकाशित कर छात्राओं के प्रश्नमंच के कार्यक्रम हुए उसमें स्थानीय विद्यालय भी संमीलित हुए थे। मालदा में निवेदिता पुतला स्थापित किया। कलकत्ता में उनका स्वदेशी का आग्रह ध्यान में लेकर 'स्वदेशी मेला का आयोजन किया था। स्वदेशी खाद्यपदार्थ, स्वदेशीपेय, शरबत

आदि स्वदेशी खेल, स्वदेशी जादु, स्वदेशी गान, स्वदेशी वस्तुओं की प्रदर्शनी विक्री आदि। 'कस्तुरी' नामक स्मारिका बंगाली एवं हिंदी में प्रकाशित हुई। भगीनी निवेदिता का समाधी स्थान डार्जिलिंग में देश भर से बहने गयी। स्थानिक विद्यालयों के सहयोग से शेभा यात्रा, मानवंदना आदि कार्यक्रम हुआ। निवेदिता के लॉकेटस्, स्टिकरस् भी निकाले गये।

स्वामी विवेकानंद तथा प. पू. डॉ. हेडगेवार जी जन्म शती के कार्यक्रम हुए। वंदेमातरम् गीतशताब्दि के समय आपात्काल था फिर भी विद्यालयों में जाकर गीत कंठस्थ करवाया। इतिहास बताया। बकिमचंद्र जी के स्मृतिशताब्दि के अवसरपर महामंत्र वंदेमातरम्, वंदेमातरम् इतिहास के पन्नों से प्रकाशित की। वंदेमातरम् की प्रदर्शनी बनायी।

वं. मौसी जी का 25 वाँ स्मृतिवर्ष

कार्तिक वद्य 12 शके 1924, वं. मौसीजी का 25 वाँ स्मृतिदिन!

वं. मौसी जी का श्रीराम प्रभुपर आत्यंतिक प्रेम, श्रद्धा। आप अपने रामायण प्रवचनों के माध्यम से आज भी जनमानस में स्थान बनायी हुई है। आपकी वाणी अनेकों के कानों में गूंज रहीं है। श्रीरामरक्षा स्तोत्र यह सिद्धमंत्र है। आसेतु हिमाचल इसका पाठ अनेकों दृष्टि से लाभदायी सिद्ध हुआ है। वं. मौसी जी प्रतिदिन सुस्वर रामरक्षा बोलती थी। अतः सेविकाओं ने रामरक्षा कंठस्थ करवाने का निश्चय किया। स्थान-स्थान पर विद्यालयों से संपर्क हुआ। अभी भी यह कार्यक्रम चल रहा है। दिनांक 2 डिसेंबर 2002 को स्थानस्थान पर सामूहिक पाठ हुआ।

विशेष उपक्रम

समयसमय पर परिस्थितिनुसार समितिने देश का स्वत्व, स्वाभिमान संजोये रखने हेतु विविध विशेष उपक्रम लिये। इनमें गोरक्षाहेतु स्वाक्षरी संग्रह सन् 1955, दूरदर्शन के अश्लील स्तरहीन कार्यक्रम, विज्ञापनविरोध में हस्ताक्षर संग्रह निवेदन ज्ञापन आदि है। सन् 1981 में मीनाक्षीपुरम् में पूरे ग्राम को धर्मांतरित किया गया तब उसे प्रधानता देकर 'धर्मांतरण विरोधी अभियान आयोजित किया गया। इस विषय की संपूर्ण जानकारी देनेवाले पत्रक पत्रक सभी सर्वाजनिक संर्पक स्थानों पर हजारो की संख्या में बांटे गये। स्थानस्थान पर इस समस्या को उजागर करते हुए उद्बोधन के कार्यक्रम लिये गये। धर्मांतरण अर्थात् राष्ट्रांतरण यह विषय समिति में नित्य चर्चा के माध्यम से रखा जाता है।1975 में बेल्जियम से प्रकाशित Red Flows the Gangeage इस पुस्तक में झांसी कि रानी लक्ष्मीबाई के चरीत्र के संबंध में विकृत जानकारी देकर मानभंग किया गया है, यह ध्यान में आने पर तत्कालीन प्रधानमंत्री मा. इंदिराजी को ज्ञापन दिया गया और उन्होंने भी तत्परतापूर्वक कृति करके वे अंश हटाने का आदेश दिया।

1990 में कश्मीरघाटी के हिंदू जम्मू में विस्थापित बनकर आये तब उनको बारबार मिलकर राहत देना, प्रत्यक्ष श्रीनगर में जाकर एक टोली परिस्थिति का निरीक्षण कर आयी। सभी विस्थापित परिवार 10 x10 के तंबू में रहते थे। उनकी परिस्थिति देखते हुए वहाँ के कमिश्नर तथा तत्कालीन प्रधानमंत्री व्ही. पी. सिंग जी को मिलकर ज्ञापन दिया गया। 17 सप्टेंबर 1990 को पूरे देश में काश्मीर बचाव अभियान का आयोजन किया। प्रांतप्रांत में मानवी शृंखला, रॅली, मोर्चा, भाषण, ज्ञापन देना आदि विविध कार्यक्रम हुए। राष्ट्रीय एकता अखंडित अभियान भी आयोजित किया गया। समान नागरी कानून, स्वदेशी भाव जागरण, कारसेवा में समयसमय पर सहभाग लिया। मिल्क बँक व फास्टफुड जैसे विषयों पर भी चर्चासत्र लेकर उनके परिणामों से अवगत कराने के प्रयास किये गये।

हुबली में 15 ऑगस्ट में 1993 में कित्तूर चेन्नम्मा मैदान पर कडे प्रतिबंध होते हुए भी तिरंगा लहराने का यशस्वी प्रयास बहनों ने किया। इस मैदान पर ईद की नमाज पढी जाती है, इस लिये उसे इदगाह भी कहा जाता है। पहले उसी मैदान पर 15 ऑगस्ट को झेंडावंदन होता था परंतु 1992 में यह ईद की प्रार्थना का मैदान

है अतः दुसरा कोईभी - स्वातंत्र्यदिन का कार्यक्रम भी नहीं होगा ऐसा बताया गया। वातावरण तनावग्रस्त हुआ। मैदान के इर्दगिर्द कंटिली बाढ लगायी गयी। कडी सुरक्षा थी परींदा भी न जायें ऐसा प्रयास था। अन्य संस्थाओं ने किये हुएं प्रयास असफल होने के पश्चात दूसरे वर्ष समिति की बहनों को उस मैदान पर ध्वज फहराने का दायित्व दिया गया। उन्होंने भी बहुत बुद्धिमानी से अपनी स्वतंत्र, अनूठी योजना बनाई। उस क्षेत्र के विद्यालय का गणवेश छोटे बालकों को पहनाकर उनको विद्यालय पहुंचाने के बहाने बहनें निकल पडीं। वर्षा ऋतु होने के कारण हाथ में छाता लेना स्वाभाविक लगता था। बहनों ने उसी में तिरंगा ध्वज छिपाया था। बहनें मैदान में पहुंची, छाता खोला और उसके दंडे पर तिरंगा ध्वज फहराया, उसको अभिवादन कर वंदे मातरम् बोलना प्रारंभ किया। वह सुनकर सुरक्षाकर्मी भौचक्के होकर बहनों को बंदी बनाने हेतु दौडे। 'हम राष्ट्रगीत बोल रहें है, आप भी खडे हो जाईये', कडी आवाज में एक बहन ने बताया, तब उनको रुकना पडा। वंदे मातरम् के पश्चात् बहनों को बंदी बनाया गया।

प्रचारिका-विस्तारिका पद्धति

प्रारंभ में समितिकार्य का विस्तार विवाह होकर या अपने पिता/पति का स्थानांतरण होकर अन्यान्य स्थानों पर जानेवाली बहनों के माध्यम से हुआ। गुजरात, बंगाल, बिहार आदि क्षेत्रों में ऐसा ही कार्य विस्तार हुआ। परंतु 1980 के पश्चात् पूर्ण समय देकर कार्य करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। वैसी मानसिकता तैयार करके अनेक युवा सेविकाओं को कार्य करने हेतु प्रोत्साहित किया गया। और ऐसी सेविकाओं की संख्या क्रमबद्ध रीति से बढती गई। अल्पावधी देकर कार्य करनेवाली विस्तारिका और दीर्घकाल तक कार्य करनेवाली प्रचारिका ऐसी शब्दावलि प्रचलित हुई। वैसे तो इसका अनौपचरिक प्रारंभ 50 के दशक में मा. सिंधुताई एवं. मा. प्रमिलाताई जी ने किया था। आज समिति की प्रचारिकायें एवं विस्तारिकायें विभिन्न प्रदेशों में जम्मू-कश्मीर, पूर्वोत्तर राज्यों जैसे अशांत और असुरक्षित प्रदेशों में धैर्यपूर्वक समितिकार्य सुदृढ बना रही है।

प्रगतिशील, समृद्ध, समर्थ राष्ट्र जीवन में पथ प्रदर्शक के रूप में महिलाओंको अपने पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय दायित्व का बोध कराते हुएं जागृत एवं संगठित करने के उद्देश्य से राष्ट्र सेविका समिति कार्य प्रारंभ हुआ। सरिता के समान यह कार्य प्रवाह मार्ग में आनेवाले अनुकूल प्रतिकूल विचारों के पहाड या खाईयों को पार करते हुए ध्येय सागर तक पहुंचने हेतु अनवरत प्रवाहित रहेगा यह निश्चित है।

समिति की मनीषा

समाज का आधा हिस्सा होने के कारण स्त्री का राष्ट्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कार प्रदान करने में स्त्री ही अग्रेसर है। मानसशास्त्र के अनुसार बालक एक से तीन साल तक सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण संस्कार ग्रहण करता है। और इस आयु के बालक माँ के पास ही रहते है। मानव को दानव बनाना या देवता बनाना यह माता के संकल्प पर निर्भर है। दुर्बल और परतंत्र स्त्री स्वाधीन और समर्थ राष्ट्र का निर्माण नही कर सकेगी। गृह राष्ट्र का प्रमुख अंग है। उसकी एकात्मता रखकर हर घटक परिवार का हर व्यक्ति श्रेष्ठ, चारित्र्यवान राष्ट्रप्रेमी नागरिक बनेगा इसका दायित्व स्त्री पर है। पुरुष के सत्कार्य से उसको वह निभाना है। वह राष्ट्र की उन्नतावस्था के कारणरूप स्वयंकी उन्नति के लिये उत्तरदायी है। उसीसे भारतकन्याओं के सामने सतीत्व का आदर्श रखकर, उन्हें संगठित और समर्थ बनाकर, तेजस्वी हिंदु राष्ट्र का निर्माण करना यही समिति की मनीषा है।

समिति कार्य - विश्व में

मा. श्री. पांडुरंग शास्त्री आठवले दि. 29 डिसें. 73 को नाशिक में समिति के एक कार्यक्रम में पधारे थे। प्रास्ताविक - परिचय भाषण में समिति की एक सेविका ने कहा कि समिति एक अखिल भारतीय हिंदु महिलाओं का संगठन है। मा. शास्त्रीजी ने अपने भाषण में कहा कि समिति केवल अखिल भारतीय नही अपितु वैश्विक संगठन के रूप में शीघ्र ही उभरकर आयेगी। वं. मौसीजी ने कहा कि श्रीराम चाहेंगे तो वैसा भी होगा। उस समय तो हम उनकी यह दूरदृष्टि समझ नहीं पायें। परंतु बहुत जल्दी ही उसकी सत्यता अनुभव में आने लगी।

भारत में कार्यविस्तार विवाहित सेविकाएं अन्यान्य प्रांतों में जाने के कारण हुआ वैसे ही समिति की कुछ सेविकाएं विवाह के बाद अन्यान्य देशों में जाने के बाद हुआ। कुछ महिलाओं को संघ स्वयंसेवकों से विवाह होने के पश्चात् संघ जैसे संगठन की जानकारी हुई। मा. श्री. भिडेजी जैसे ज्येष्ठ प्रचारकों को भी समितिकार्य भारत से बाहर भी निर्माण होने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इन सभी बातों का फलित था - भारत के बाहर समिति कार्य का प्रारंभ।

प्रथम संपर्क

समुद्रपार अन्य देशों में रहनेवाले अपने लोगों से प्रथम संपर्क 1982 में मुंबई के FISI (Friends of India Society International) के कार्यक्रम के कारण हुआ। वह तो केवल एक औपचारिक परिचय मात्र था। संघकार्य से जुडे कुछ परिवारों से परिचय हुआ। मुंबई की समिति शाखा ने बाहर देशों से आयी हुई महिलाओं से और परिचय होने की दृष्टि से एक एकत्रीकरण आयोजित किया। 1978 के बाद ब्रिटेन में कार्य प्रारंभ हुआ था। परिवार शाखा के रूप में। उसकी जानकारी और कार्य के बारे में कुछ सूचनाएं दी गयी - कुछ अपेक्षाएं भी प्रकट की गयी।

बाहर देशों की परिस्थिति की कल्पना आनेपर यह स्पष्ट हुआ कि वहाँ कोई भी कार्य चलाना है तो उसका पंजीयन होना चाहिये। समिति की ऐसी स्वतंत्र व्यवस्था नही थी या करना भी उस प्राथमिक अवस्था में संभव नहीं था इसलिये संघ के पंजीयन के अंदर संघ की ही एक गतिविधि के रूप में समिति कार्य चलें यह उचित था। इस लिये समिति कार्य परिवार शाखा और बाद में स्वतंत्र शाखा में भी प्रगत हुआ।

ब्रिटेन - कार्य का श्रीगणेश

हिंदु सेविका समिति का कार्य प्रारंभ करनेवाला ब्रिटेन प्रथम देश है। भारत के साथ संपर्क रखने की महत्त्वपूर्ण कडी थे मा. भिडेजी और वहां स्थायी रूप से रहनेवाली कुछ सेविकायें। वे जब भी आते तब समिति के प्रधान कार्यालय - अहल्या मंदिर - में आकर वं. मौसीजी से मिलते थे। उनके साथ समितिकार्य की चर्चा कर सलाह लेते थे।

ऐसा संपर्क बढता गया। यू. के. से श्रीमती सरस्वतीबेन दवे, जयश्रीबेन मिस्त्री, रक्षाबेन कुकडिया और केनिया से श्रीमती वसुधाताई धर्माधिकारी एवं सूर्यकलाबेन शाह अहल्या मंदिर में आनेवाली कुछ प्रमुख कार्यकर्ता बहनें है।

केनिया

श्रीमती शरयू हेबाळकर अपने पति श्री. हेबाळकर के साथ केनिया गयी और वहां समिति कार्य की जडें जमायी। वह भारत आने के पश्चात् अन्य बहनों ने वह सूत्र पकडकर कार्य को आगे बढाया है। 1987 में वसुधाताई केनिया की 11 बालिकाओं को लेकर भारत आयी थी। उनके लिये विशेष रूप से एक प्रशिक्षण शिबिर में आयोजित किया था। परंतु कार्यवृद्धि की दृष्टि से यह प्रयत्न अपेक्षाकृत सफल नही हो पाया। परंतु लगातार प्रयत्न चलते रहे। वहाँ के वर्ग में जाना हुआ उसके बाद कार्य में स्थिरता आयी और इस वर्ष डिसेंबर 2002 में संपन्न आंचलिक वर्ग के बाद कार्यकर्ताओं की उत्साही टोली खडी हो रही है।

मॉरिशस

श्री. माधवदा बनहट्टी मॉरिशस में प्रचारक थे। वह नागपुर के होने के कारण वहाँ आने पर समिति कार्य के बारे में चर्चा होती थी। समिति कार्य के प्रति आस्था होने के कारण उन्होंने अनेक महिलाओं के पते दिये उनसे पत्रव्यवहार होता रहा। फलस्वरूप 1986 के नागपुर संमेलन में मॉरिशस से सुश्री कमला सम्मिलित हुई थी। 1999 में समिति की प्रचारिका अन्नदानम् सीता अन्नदानम् का मॉरिशस, केनिया, दरबान में प्रवास हुआ था। समिति कार्य को थोडी गति मिली। फिर भी बहुत अच्छा कार्य वहाँ अभी नही हो पाया है।

मलेशिया

1998 में मलेशिया से कुछ सेविकाओं ने तामिलनाडू में समिति शिक्षा वर्ग में प्रशिक्षण लेने के पश्चात् वहां काम शुरु हुआ। समिति शाखा के साथ-साथ कुछ सेवाकार्य भी चलाये गये। वहाँसे सुश्री मलर अपनी नोकरी छोडकर प्रचारिका निकली है। भारत के बाहर यह पहली समिति प्रचारिका है। यह हम सबके लिये गर्व की बात है। मलेशिया में समितिकार्य का अच्छा स्वरूप दिखाई देगा।

द. आफ्रिका, म्यानमार, फीजी

इन देशों के साथ संपर्क स्थापन होने के लिये मा. रामप्रकाशजी, रामनिवासजी, यशवंतजी, सोष्माचार्यजी आदि प्रचारकबंधुओं का बहुमोल सहाय्य मिला है। 1995 दरबान में प्रथम विश्व हिंदु संमेलन संपन्न हुआ। उसमें सरीशा, वनिता, अनीता आदि अनेक बहनें सक्रिय हुई। मा. रुक्मिणीअक्का का प्रवास उस समय वहाँ हुआ। समितिकार्य का श्रीगणेश हुआ। आज वहाँ अच्छा कार्य खडा हुआ है। डिसेंबर 2002 में दरबान में स्वतंत्र रूप से आंचलिक शिक्षा वर्ग हुआ इतनी प्रगति हुई है।

अमेरिका - ऑस्ट्रेलिया

मा. बकुलताई देवकुले और मा. सुशीलाताई महाजन का प्रवास अपने निजी कारणों से हुआ। परंतु उनके प्रवास में उन्होंने समितिकार्य को मार्गदर्शन किया। अमेरिका में उच्चशिक्षा हेतु चेन्नई से मालिनी और नागपुर से स्वाती देशपांडे जाने के बाद - मा. कीर्तिदा से उनका संपर्क हुआ। बाद में बंगलोर से परिमला विवाह होकर वहाँ गयी। आज अमेरिका का कार्य कीर्तिदा और परिमला के प्रयत्नों के कारण आगे बढ रहा है।

ऑस्ट्रेलिया में दिल्ली की निशा भटनागर जाने के बाद वहाँ काम खडा हुआ है।

फीजी में भी काम खडा हो रहा था। परंतु वहाँकी राजनीतिक उथलपुथल का प्रभाव कार्य पर हुआ है।

नॉर्वे, हॉलंड, जर्मनी, गयाना, त्रिनिदाद और अभी-अभी सुरिना में कार्य खडा हो रहा है।

प्रथम अधिकृत प्रवास

1989 में प. पू. डॉक्टरजी की जन्मशताब्दि नागपुर में संपन्न हुई। उस समय ब्रिटेन से सॉलिसिटर सरस्वती दवे उपस्थित रही। ब्रिटेन में संपन्न होनेवाले प्रथम विश्व हिंदु संमेलन में उपस्थित रहने का निमंत्रण उन्होंने दिया। उसमें समिति की प्रतिनिधि के नाते मा. प्रमिलाताई मेढे और मा. कुसुमताई साठे उपस्थित रही। मा. कुसुमताई संमेलन के पश्चात् यूरोप प्रवास में गयी और मा. प्रमिलाताई ब्रिटेन में रही और वहाँकी शाखाओं में प्रवास किया। भिडेजी का अनमोल मार्गदर्शन उस समय प्राप्त हुआ। उसी समय उनकी मा. शंकरराव तत्त्ववादी, वर्तमान विश्वविभाग संयोजक से भेट हुई। डेन्मार्क, हॉलंड की कुछ बहनों से संपर्क हुआ। इस दृष्टि से भारत से बाहर समिति की ज्येष्ठ सेविकाओं का प्रथम अधिकृत प्रवास काफी सफल रहा।

ब्रिटेन का काम सबसे व्यवस्थित होने के लिये वहाँ की बहनों के परिश्रम कारणीभूत है। वहाँ का कार्य विभाग स्तर पर सुदृढ - स्वावलंबी रूप से खडा है। स्वतंत्र रूप से समिति की शाखाएँ चलती है। वर्ग शिबिर उत्सव स्वतंत्र संपन्न होते है। परंतु पारिवारिक रूप में आवश्यकतावश कार्यक्रम सामंजस्यपूर्वक संपन्न होते है। इंग्लेंड में भी जान्हवी, बन्सरी, माधवी इन तरुण सेविकाओं ने 1-2 साल पूर्ण समय देकर कार्य किया है। इस लिये भी कार्य को गति और दृढता प्राप्त हुई है। वर्तमान में डॉ. विदुला आंबेकर कार्यवाहिका और शिल्पा छेडा सह-कार्यवाहिका है। नये उत्साह से कार्य प्रगतिपथ पर है।

प्रथम विश्व संघ शिबिर १९९०

संगठन में कार्यरत विश्वभर के बंधुबहनों का संमेलन संपन्न करने का सौभाग्य बंगलोर को प्राप्त हुआ। अभी तक पत्रों के, दूरभाष के माध्यम से होनेवाला संपर्क जीवन्त रूप में होने का अवसर प्राप्त हुआ। विविध देशों की बहनों से संपर्क कर उनकी शिबिर से अपेक्षा के बारे में जानकारी ली गयी। वे पूरी करने का प्रयास किया गया। वं. ताईजी आपटे की शिबिर में उपस्थिति प्रेरणादायक रही। अनेक देशों की बहनों का प्रत्यक्ष परिचय हुआ। समिति कार्य को नया आयाम मिला।

ब्रिटेन में दूसरा प्रवास

ब्रिटेन में 1996 में समिति शिक्षा वर्ग के निमित्त मा. प्रमिलाताई मेढे एवं अन्नदानम् सीता का प्रवास हुआ। वर्ग के पश्चात् सघन प्रवास हुआ, उसमें गृहिणी शाखा की संकल्पना आग्रहपूर्वक रखी गयी। कार्य को स्थिरता देने का दायित्व गृहिणी शाखा का है यह स्पष्ट होने पर गृहिणी सेविकाएँ कार्यरत हुई और एक अर्थ से देवदुर्लभ टोली खडी हुई।

इस प्रवास में ही विविध क्षेत्रों में कार्यरत बहनों से समन्वय साधने के लिये प्रयत्न किये गये। अलग-अलग क्षेत्रों में कार्य करनेवाली बहनें हिंदू के नाते एक मंच पर आयें - हिंदु हित का विचार करें - हिंदुप्रतिमा उज्वल करें - एक श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत करें यह समय की मांग है, यह प्रतिपादित किया गया। कुछ मात्रा में सफलता मिली यह निश्चित।

द्वितीय विश्व संघ शिबिर

द्वितीय विश्व संघ शिबिर 1995 में वडोदरा के निकट कायावरोहण में संपन्न हुआ। 200 से अधिक बहनें सहभागी हुई थी। समिति की अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता बहनों में थी। इस लिये निर्धारित समयसारिणी से अधिक समय उसमें लगाने की उनकी इच्छा यथासंभव पूर्ण की गयी। सार्वजनिक समारोह में समिति के घोषगण का उत्कृष्ट प्रात्यक्षिक हुआ। स्वतंत्र शाखा लगने के कारण समिति की बहनों का स्वतंत्र रूप से समापन कार्यक्रम शाखा के समय किया गया। शारीरिक आदि कार्यक्रम बहुत अच्छे हुएं। संघ के थोडे से ही अधिकारी उपस्थित थे। बाद में अन्य लोगों ने पूछा उनको क्यों नही बुलाया।

इस शिबिर में भारत की वस्त्रकला के विषय में छोटीसी प्रदर्शनी आयोजित की गयी और विश्व की दृष्टि से एक छोटीसी मार्गदर्शक टोली बनाने का विचार प्रथम बार सामने आया कारण उसकी प्रखर आवश्यकता प्रतीत होने लगी।

इस शिबिर में मा. प्रमिलाताई एवं मा. रुक्मिणी अक्का पूर्ण समय रही। वं. उषाताई का मार्गदर्शन सभीको प्राप्त हुआ।

इस समय समिति अधिकारियों का विश्वप्रवास यह विषय बैठक में आया। समिति संघ के विश्व विभाग की रचना में एक घटक है - उस दृष्टि से यह विचार आवश्यक लगा।

तृतीय विश्व संघ शिबिर - २००२

मुंबई के केशवसृष्टि परिसर में संपन्न यह शिबिर समिति कार्य की दृष्टि से मील का पत्थर सिद्ध हुआ। समिति शिक्षा वर्ग स्वतंत्र रूप से लगाने का निर्णय लिया गया।

समिति का शारीरिक एवं घोष का प्रदर्शन सर्वोत्कृष्ट रहा। अनुशासन की दृष्टि से भी समिति पीछे नही थी।

'वंदे मातरम्' गीत पर आधारित प्रदर्शनी यह एक विशेषता रही। वंदे मातरम् के इतिहास पर प्रदर्शनी पहले ही समिति ने आयोजित की थी। परंतु वंदे मातरम् गीत के शब्दों को चित्ररूप की चित्राताई की कल्पना अपूर्व थी। सोलापुर के चित्रकार दासजी के अथक परिश्रम के कारण यह संभव हुआ। किसीने कल्पना नही की थी की इतने प्रभावी ढंग से शब्दों को चित्ररूप दिया जा सकता है।

इस शिबिर में वं. उषाताई का मार्गदर्शन सबको प्राप्त हुआ। मा. प्रमिलाताई, रुक्मिणीअक्का, अल्काताई, शांताक्का आदि अधिकारी पूर्ण समय उपस्थित थे।

माँ की पावन पूजा में - १९९७

यह शिखर कल्पना लेकर 1997 में पुणे में विश्व विभाग का समिति शिक्षा वर्ग संपन्न हुआ। ब्रिटेन,

अमेरिका, जर्मनी, म्यानमार, त्रिनिदाद, द. आफ्रिका आदि देशों से 35 सेविकाओं ने उसमें भाग लिया।

समापन के पूर्व पथसंचलन हुआ। सभी के लिये यह अभूतपूर्व आनंद की अनुभूति थी। पुणेवासियों ने किया हुआ उत्स्फूर्त स्वागत चिरस्मणीय है। सार्वजनिक समापन एवं दीक्षान्त के कार्यक्रम अपने आपमें विशेष थे। समापन में ध्वज को मानवंदना एवं दीक्षांत में विश्व का मानचित्र रेखांकित किया था। नागपुर के स्थान पर वं. उषाताईजी ने दीप प्रज्वलित किया। उसी दीप से प्रज्वलित दीप सेविकाओंने अपने-अपने स्थान पर रखें। बडा भावुक वातावरण था। सभी शिबिरार्थियों को गणेश जी की छोटी प्रतिमा भेट की। गणेश जी बुद्धिमान एवं कुशल, यशस्वी, नेतृत्व के प्रतीक है। हर हिंदु को विश्व कल्याण हेतु ऐसाही नेतृत्व देना है यह संकेत मात्र था।

मृत्युंजय हम हिंदू है - २००१

विश्व विभाग का समिति शिक्षा वर्ग 2001 में नागपुर के रेशिमबाग परिसर में संपन्न हुआ। मध्यवर्ती कल्पना थी मृत्युंजय हम हिंदु है। 11 देशों की 51 बहनों ने भाग लिया। सेवाकार्यों को भेट, पथसंचलन, मातृहस्तेन भोजनम्, विविध प्रदर्शनी समापन एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम वैशिष्ट्य पूर्ण एवं प्रभावी रहें। वं. उषाताईजी, अन्य केंद्रीय अधिकारी तथा संघ की ओरसे मा. परमेश्वरनजी, मोहनजी भागवत एवं प. पू. सुदर्शनजी का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

उद्घाटन में प्रणवकन्या संघ की संन्यासिनी मा ज्ञानानंदमयी एवं समापन में आंतरराष्ट्रीय कीर्ति की नृत्यांगना डॉ. पद्मा सुब्रमण्यम् उपस्थित थी। दोनों का एक ही मत हिंदू ने हिंदू के नाते संगठित होना चाहिये। संन्यासिनी हो या नृत्यांगना विचारों में अद्भुत एकरूपता है। मा. ज्ञानानंदमयी मां तो रेशिमबाग को तीर्थस्थल ही बोलती रही।

इस वर्ग की विशेषता यह थी की समय संघ का वर्ग नही था। सभी सेविकाए अपने अपने स्थानों से अपनी जिम्मेदारी पर आयी।

अमेरिका प्रवास

1998 में मा. प्रमिलाताई ने और 2000 में मा. अलकाताई ने अमेरिका का प्रवास किया। स्वतंत्र समिति शाखा की संभाव्यता पर मा. प्रमिलाताई के प्रवास में विचार हुंआ और अलकाताई के प्रवास में स्वतंत्र रूप से समिति शिक्षा वर्ग संपन्न हुआ।

स्वतंत्र समिति शाखा की संभाव्यता

बाहर देशों में केवल संघ या समिति का ही नही अपितु संपूर्ण हिंदु समाज का प्रतिनिधित्व करने की आवश्यकता है इसलिये इस विषय पर सोच समझकर ही निर्णय लेना होगा। अनेक देशों में समिति शाखाएं स्वतंत्र रूप से लगती है परंतु संघ के पंजीयन के अंतर्गत ही यह कार्य चल रहा है। स्वतंत्र पंजीयन का विचार कहीं-कहीं चल रहा है। परंतु एकदम निर्णय लेना संभव नही।

इस समय विश्व में स्वतंत्ररूप से चलनेवाली समिति शाखाओं की संख्या 76 है।

दीप से दीप जलाते चलें

वं. मौसीजी की जन्मशताब्दि - 2005 में आ रही है। भारत जैसे ही, भारत से बाहर सेविका समिति ने भी जन्मशताब्दि वर्ष में विविध कार्यक्रमों का आयोजन करने का निश्चय किया है। विश्व परिदृश्य में प्रबल हिंदु संगठन की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। मतांतरण, मानवी नीतिमूल्यों का ह्रास, भौतिकता, उपभोगप्रवणता, व्यक्तिकेंद्रितता का प्रभाव बढता जा रहा है। संपूर्ण मानवी जीवन संकटों से ग्रस्त है। ऐसी परीस्थिति में हिंदु परिवार जीवन के माध्यम से सुख, समृद्धि, समाधान सुरक्षितता प्राप्त हो सकती है ऐसा विश्वमानस बन रहा है। इस लिये हिंदु समाज का यह श्रेष्ठ दायित्व है कि सुसंगठित होकर संभ्रमित मानव, को उचित - प्रभावी दिशा दें।

सच्चा वैश्वीकरण

वं. मौसीजी के जन्मशताब्दि वर्ष के कार्यक्रमों की रचना इसी दृष्टि से आयोजित करने की कल्पना है। संपूर्ण विश्व स्नेह-सौहार्द भावना से जुडे। सजा की अभिलाषा से नही यही सच्चा वैश्वीकरण है। ऐसा वैश्वीकरण साधने की दिशा में बहने जाना यही जन्मशताब्दि वर्ष की उपलब्धि रहेगी।

समिति का उद्देश्य - स्वसंरक्षणक्षम

विश्व में उत्पन्न कोई भी वस्तु या प्राणी बिना उद्देश्य का उत्पन्न नहीं होता। मनुष्य की भी कोई कृति कभी भी उद्देश्यहीन नहीं होती। वैसी ही बात कार्य की भी है। कोई भी कार्य उद्देश्यहीन नहीं होता। कार्य का जितना महान उद्देश्य, उतनी ही अधिक साधना और उतने ही अधिक परिश्रम की आवश्यकता होती है।

हम हमेशा तीन शब्द सुनते है। उद्देश्य, ध्येय तथा लक्ष्य। संघटन का भी अपना उद्देश्य महिलाओं को स्वसंरक्षण क्षम बनाना, ध्येय है संघटन तथा लक्ष्य है तेजस्वी हिन्दु राष्ट्र की निर्मिति।

राष्ट्र सेविका समिति का निर्माण ही 'स्वसंरक्षण' क्षमता को लेकर हुआ है। वं. मौसीजी का कहना था कि स्वसंरक्षण केवल अपने स्वयं के शरीर का संरक्षण करना ही नहीं, 'स्व' के अंतर्गत जिन-जिन बातों का अविर्भाव होता है उन सभी की रक्षा करना और इसीलिए सामर्थ्यवान बनना। स्वयं का परिवार, कुलाचार, कुलपरम्परा के साथ ही स्वराष्ट्र की प्रतिष्ठा का भी संरक्षण करने की क्षमता महिला में होनी चाहिए। (पथदर्शिनी श्रीरामकथा पृ. क्र. 118)

स्वयं का संरक्षण - इस विषय में सोचेंगे तो ध्यान में आएगा कि महिलाओं के संरक्षण की जिम्मेदारी उनकी अपनी होती है। इतिहास के पन्ने इसके साक्षी है।

भारतीय संस्कृति में 'स्व' रक्षा का अपना एक विशेष महत्व है। स्त्री के पावित्र्य, स्त्रीत्व अर्थात् उसके शील को महत्व दिया गया है। उसका जीना मरना उसी से अनुसंधान रखता है। वं. मौसीजी कहती थीं कि "सीता के जीवन से शील की रक्षा द्रौपदी के जीवन से शील के लिए लड़ना तथा पद्मिनी के जीवन से शील के लिए मरने की शिक्षा हमें प्राप्त होती है।"

सीता रावण के बंदीगृह में सुरक्षित रह पायी अपने सामर्थ्य पर। द्रौपदी बार-बार अपने मुक्तकेश दिखाकर पति पुत्रों को प्रतिशोध के लिए प्रेरित करती रही। पद्मिनी तथा अनेक राजपूत महिलाओं ने शील सुरक्षा के लिए जौहार किया।

शची की कथा भी इसी की पुष्टि करती है। नहुष राजा स्वपराक्रम से इन्द्रपद पर आरूढ़ हुआ। स्वर्ग के सभी उपभोग प्राप्त होने से इन्द्र पत्नी शची की माँ उसे अभिलाषा हुई। शची अत्यंत दुखी हुई। एक दिन नहुष ने उसे निमंत्रण भेजा। निमंत्रण के उत्तर में उसने नहुष को कहा 'आप ऐसे पालकी में बैठकर आइए जिसके वाहक पारम्परिक वाहन न हो। फिर मै आपकी बात मानूंगी।' नहुष ने सप्तर्षियों को पालकी ढोने के लिए कहा। सप्तर्षियों को पालकी ढोने का अभ्यास नहीं था। उनकी धीमी गति से नाराज होकर कहता था 'सर्प सर्प' (जल्दी चलो)। ऋषियों ने नाराज होकर शाप दिया 'तुम सर्प बनोगे'। नहुष का पतन हुआ। ब्राह्म तेज को जागृत कर शची ने अपनी रक्षा स्वयं की। वह न तो स्वयं लड़ने के लिए गई या नहुष के सम्मुख गई। निर्भय तथा समर्थ मन ही स्वसंरक्षण कर सकता है।

निर्भयता तथा सामर्थ्य निर्माण के लिए शारीरिक अभ्यासक्रम द्वारा शरीर सक्षम बने, साहस बढ़े यह तो भाव है ही, परंतु मन यदि स्थिर तथा सशक्त है तो ही शस्त्रज्ञान समय आने पर काम आ सकता है। योगाभ्यास द्वारा मन को स्थिर करने का प्रयास किया जाता है। जीवन का सम्यक् अर्थ ज्ञात होना उस साक्षात्कार होना इसी से मन समर्थ बनेगा। ऐसे समर्थ आदर्श चरित्र सेविकाओं के सामने समय-समय पर रखना चाहिए। सि के दाहिर राजा की कन्या, माँ शारदा देवी, ऐसे अनेक उदाहरण है।

जितने गहराई से विचार करे - ध्यान में आता है कि मनुष्य उन्नति तभी करता है जब उसमें स्वाभिमान

जागृत होता है। राष्ट्र में (व्यक्तियों में) जब तक 'स्वत्व' है वह स्वतंत्र रहता है। संघर्ष करता है। 'स्व' के स्फुरण से ही मनुष्य अपना अस्तित्व बनाए रखता है, स्वत्व का विस्मरण अर्थात् अस्तित्वहीनता अर्थात् मृत्यु है।

समिति संगठन द्वारा विशाल मातृत्व की आकांक्षा रखती है। समिति का जीवनाधार ही विशाल मातृत्व है। मातृत्व अर्थात् सृजन, संरक्षण, संवर्धन। माँ किसकी रक्षा करती है - 'स्व' की। वह नित्यप्रति 'स्व' का स्मरण दिलाती है।

मदालसा अपने बालकों को सुलाते समय उन्हें बताती थी - 'शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि।' अपने स्वत्व का मनुष्य को स्मरण दिलाना है। शक्ति का अहसास दिलाना है। दुर्बलता, दीनता हटाना है।
स्व. संस्कृति रक्षा -

प्राचीनकाल में बलि राजा के समय हुए सांस्कृतिक आक्रमण से अदिती अत्यंत व्यथित हुई। उसने वामन जैसे पुत्र को तैयार किया और संस्कृति की रक्षा की। जीजा माता ने भी अपनी संस्कृति एवं धर्म की रक्षा अपने पुत्र शिवाजी को सु-संस्कार देकर उसके द्वारा ही हिन्दवी स्वराज्य का निर्माण किया।

इसी संदर्भ में भ. निवेदिता का उदा. भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। जब श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने निवेदिता से कहा की वे आपने बेटी को अंग्रेजी सिखाना चाहते है अतः निवेदिता उसे अंग्रेजी सिखाएं। यह सुनते ही बिजली जैसे गरज कर वह बोली - 'क्या आप उसे मैडम बनाना चाहते है?' उसे एक श्रेष्ठ भारतीय स्त्री ही बनने दीजिये। उपरिपक्व अवस्था में अंग्रेजी सिखाकर उसे बिगाड़िये नहीं। भारतीयों का भविष्य भारतीयों के ही हाथों में है। वे ही अपने जीवन के शिल्पकार है। वे हिन्दु पद्धति से विचार करें। आचरण करें, तो वे सुनहरे दिन दूर नहीं, ऐसी उनकी निश्चित धारणा थी।

स्वराज्य रक्षा

स्वराज्य रक्षा हेतु पन्नादाय ने अपने स्वयं के पुत्र उदयसिंह को सामने किया। अपने पुत्र की बलि चढ़ाकर राजवंश को सुरक्षित रख राज्य की रक्षा की। अपने हाथों अपने पुत्र की बलि चढ़ना समर्थ मन का ही द्योतक है।

स्व-स्वामिनी - संतु माई

खण्डोबल्लाल की बहन ने अपना बलिदान देकर अपनी स्वामिनी येसूबाई को सुरक्षित रखा।

स्वकुल की रक्षा

स्वत्वहीन पति को जागृत करने वाली सावित्री हमारे स्वाभिमान का विषय है।

स्वाभिमान, शौर्य जगाने वाली गौतमी-मृत्यु के भय से युद्धभूमि से भागकर आने वाले अपने पुत्र रणछोड़दास को दुर्ग का दरवाजा न खोलने वाली, उसका स्वाभिमान जागृत करनेवाली, उसको अपने धर्म तथा कर्तव्य का बोध कराने वाली, स्वयं भी युद्ध भूमि पर लड़ने जाने वाली। मध्य भारत में विदुला-संजय की कहानी भी प्रसिद्ध है।

स्वदेशी की रक्षा

1905 में स्वाधीनता आंदोलन का एक भाग था विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तथा स्वदेशी का व्रत। बंगाल की महिलाओं ने नित्य उपयोगी आवश्यक ऐसी विदेशी कांच की चुड़ियां पहनना छोड़ दिया और शंख की चूड़ियां पहनना प्रारंभ किया वे गीत गाती थी -

छडे दाओ कांचेर चुड़ी बंग नारी
कभु हाथे परो ना
तोम राजे गृहलक्ष्मी धर्मसाक्षी
जगते भरे आधा जाना
कांचेर माया ते भूले, शंख पेले
कलंक हाथे परो ना।

महाराष्ट्र आदि प्रांतों में भी महिलाओं ने काँच भी चुड़ियों के साथ चाय तथा शक्कर विदेशी होने के कारण घर में न लाने का संकल्प लिया था। कस्तुरबा, कमला नेहरु जैसी अनेक महिलाएं खादी का उपयोग ही करती थी।

स्वभाषा रक्षा

हमें अपनी भाषा का स्वाभिमान होना चाहिए। राष्ट्रभाषा का गौरव होना चाहिए। किसी के सामने अपनी भाषा बोलने पर हीनता नहीं गर्व महसूस होना चाहिए। अपनी भाषा का महत्व गौरव हम ही बढ़ा सकते है। किसी भी बात का महत्व बढ़ाना और घटाना हमारे ही हाथ में होता है। भगिनी निवेदिता इसका एक सुंदर उदाहरण है। एक स्थान पर निवेदिता के स्वागत में भारतीय युवक नारे लगाने लगे। हिप हिप हुर्रे। अंग्रेजी नारे सुनते ही उसका रक्त खौल उठा। वे तुरंत बोली, रुकि। क्या तुम्हारे पिता अंग्रेज है या माँ गौरकाय हैं? जिससे आप यह नारे लगा रहे हो। आपको विदेशी नारे लगाने में संकोच नहीं लगता? गलत नहीं लगता मै बताती हूं कैसे नारे हो - बोलो वाहे गुरु की फतेह, सद्गुरु की विजय हो, परमेश्वर की जय हो, और सभी ने वैसे ही नारे लगाएं। भारतीयत्व निवेदिता के रोम-रोम में समाया था।

भाषा से संस्कृति प्रगट होती है। कोई भी बात अपनी भाषा से सहजता से समझ में आती है।

देववाणी संस्कृत यह हमारी अमूल्य धरोहर है यह सभी भाषाओं की जननी है, सभी विधाओं का भंडार है। अतः यह भाषा आना तथा उसका स्वाभिमान होना प्रत्येक हिन्दू के लिए आवश्यक है।

भाषा के साथ वेषभूषा स्वदेशी हो, यह भी नितांत आवश्यक है। भोजन भी स्वदेशी हो, आज फास्ट फूड, मॅगी का बहुत चलन है - फास्टफुड हानीकारक है। यह भी सिद्ध हुआ है, अतः अपनी कुशलता से घर में नित अपने पद्धति के व्यंजन बने इस का आग्रह हो।

स्वइतिहास अपने देश का वास्तविक इतिहास अवगत होना और अन्योंको कराना यह एक महत्वपूर्ण कार्य है।

उत्कर्षो भवतु हिंदुनाम्
अखण्डम् भारतम् तथा
कृण्वन्तो विश्वमार्यंच
प्रतिज्ञा सफला भवेत् ।।
भारत माता की जय

स्वदेशी खेल

हमारे खेलों की एक प्राचीन परंपरा है। शारीरिक व्यायाम के साथ-साथ, संगठन भाव, संगठित शक्ति का भाव निर्माण होता है। विजय पाना है तो श्रृंखलाबद्ध खेल यह सिखाता है कबड्डी खेल। शत्रु के पाले में पकड़े जाने पर छुट कर आने का प्रयत्न करो शक्ति से, सतर्कता से। मरना फिर से जीवित होना। जीवन यह भी एक खेल है जन्म मृत्युका। मृत्युर्वे प्राणीनां धृवः यह संस्कार खेलों में मिलता है। पुनर्जन्म की कल्पना दृढ़ होती है। वयं सुपुत्राः अमृतस्य नूनं। यह संस्कार मजबूत होता है।

इस प्रकार 'स्व' में अन्तर्निहित सभी की रक्षा करना, महिलाओं को कटिबद्ध बनाना, सक्षम बनाना यही समिति का उद्देश्य है।

स्त्री का एक जन्मसिद्ध गुण है कि वह अपनों के लिए अपने इच्छा की बलि चढ़ाकर दूसरों को पुष्ट बनाती है। दूसरों की संतुष्टी में स्वयं संतुष्टी का अनुभव करती है। परिवार के लिए वह मर-मिट जाना भी पसंद करती है।

आज भी स्थिति बड़ी गंभीर है। दिन प्रतिदिन स्त्री की ओर उपभोग्य वस्तु के रूप में देखा जा रहा है।

'तू चीज बड़ी है मस्त-मस्त' यह भाव आ रहा है।

वह केवल 'अर्थ' का साधन बन गई है। दुर्बलता छोड़ अन्याय के विरोध में उसे खड़ा होना है और 'स्व' रक्षा के लिए तत्पर होना है। उसे स्वसंरक्षणक्षम् बनना होगा। उसके इस गुण संवर्धन में ही राष्ट्र की यशस्विताः तेजस्विता अंतर्निहित है।

आनुकुल्येन संघस्य
स्थापयित्वा निजं कुलम्
संघस्यैव ततो भूत्यै
कुर्याद् भूतियुतं कुलम् ।।

समाज को लाभदायक होगा इस प्रकार से अपने कुल की रचना करके समाज के वैभव के लिये ही अपने कुल का वैभव बढाना है

समिति का ध्येय - संगठन

समूह से रहने की आदत हम सर्वत्र देखते है। हाथी, हिरन इत्यादि प्राणी, झुंड में रहते है। पक्षी भी झुंड में रहते है। प्रातः होते ही एक साथ अनाज के लिये निकल पड़ते है। स्वयं की रक्षा सुरक्षा के लिए झुंड में रहना पसंद करते है। मनुष्य अधिक बुद्धिमान है, उसके पास विचारशक्ति है। उसका समूह में रहना केवल संरक्षण के लिए नहीं, अपितु स्वयं के तथा अपने बांधवों के उन्नति के लिए होता है। जीवन का हर छोटा मोटा क्षण फिर वह आनंद का हो या दुख का वह अकेला सह नहीं पाता वे क्षण वे बिताते है मित्र-परिवार के साथ।

मनुष्य जीवन का कुछ लक्ष्य होता है वह उसके मनुष्यत्व का निदर्शक है। उस लक्ष्य की परिपूर्ति, संगठन के माध्यम से सुलभता से हो सकती है। कौन सा भी कार्य लौकिक हो, अथवा पारलौकिक अनेक लोगों के सहकार्य के अभाव में संभव नहीं हो पाता और कलियुग का तो युगधर्म ही संगठन है। कहा जाता है -

'संघे शक्तिः कलौ युगे'

संगठन अर्थात् योग्य पद्धति से गठित किया हुआ समूह, संगठन में परस्पर प्रेम, आदर, विश्वास और सहकार्य की भावना रहती है। उसके आधार पर व्यक्ति स्वयं का तथा अपने समाज, राष्ट्र का कल्याण, उन्नति एवं प्रगति कर सकता है।

संगठन का अर्थ केवल एकत्रीकरण नहीं है। बीच-बीच में एकत्रीकरण लेना यह हमारे कार्यपद्धति का एक अंग जरूर है। बस अड्डा, रेलवे स्थानक आदि स्थानों पर काफी भीड़ रहती है। सैकड़ों लोग एकत्रित आते है परंतु उसे हम संगठन नहीं कहते।

घड़ी के सभी पुर्जे जैसे मिले वैसे लिए और रख दिये टेबल पर यह हुआ एकत्रीकरण। परंतु पुर्जे यथास्थान रखे और एक दूसरे के साथ समन्वय के साथ जोड़ दिये तो वेही पुर्जे समय दिखाने का कार्य कर सकते है।

भीड़ में अनेक व्यक्ति एक साथ रहते है, परंतु एक साथ होते हुए भी उनकी उक्ति, कृति लक्ष्य अलग-अलग होते है। एक ही बात की उनकी अभिव्यक्ति और अनुभूति अलग-अलग होती है। उसके विपरीत संगठन में अनेक व्यक्तियों के आचार-विचारों की दिशा एक ही होती है। उन सभी का लक्ष्य एक होता है। अतः उनकी हलचलों से एक प्रचंड शक्ति का अनुभव आता है। हर व्यक्ति स्वतंत्र होते हुए भी संगठन से अभिन्न होती है। और इसी में व्यक्ति एवं संगठन का हित समाया हुआ रहता है।

संगठन की यह महत्ता ध्यान में लेते ही मनुष्य किसी न किसी प्रकार का संगठन प्रारंभ करता है। आज स्थान-स्थान पर हमें यूनियन के फलक दिखाई देते है। संगठन का उद्देश्य और आवश्यकता पर संगठन की आयु निर्भर रहती है। उद्दिष्ट क्षणिक होगा तो संगठन अल्पजीवि रहेगा। लेखक, कवि, खिलाड़ियों का भी अपना स्वयं का एक संगठन होता है। धर्म पर विश्वास और उपासना पद्धति से भी संगठन निर्माण होते है। भाषा, राजनैतिक उद्देश्य आदि अनेक कारणों से संगठन निर्माण होते है और नष्ट भी होते है। परिस्थिति के झूले पर संगठन का अस्तित्व हिलोरे लेता रहता है।

जिसे स्थिर आधार हो ऐसे संगठन चिरंजीवी रहता है। राष्ट्र चिरंजीवि रहता है, अतः राष्ट्रवाद की ठोस नींव पर स्वयं गठित स्थापित संगठन भी चिरंजीवी

होगा यह सहज सिद्ध है। इस तरह का संगठन विशिष्ट व्यक्ति के लिये कभी रुकता नहीं। परंतु विविध व्यक्तियों को समा लेने का उसका सामर्थ्य विलक्षण आश्चर्यजनक होता है।

परंतु विविध व्यक्तियों को समा लेने का राष्ट्रवादी संगठन का सामर्थ्य बड़ा अद्‌भुत होता है। राष्ट्रजीवन बहुविध रहता है, बहुभाषी भी होता है, अतः सभी स्तर एवं क्षेत्र के व्यक्तियों को अपनी अपनी क्षमतानुसार कार्यक्षेत्र उपलब्ध होता है। सहकार और सहयोग का सूत्र अक्षुण्ण रहने के लिए मदद होती है।

समिति का संगठन भी राष्ट्रभक्ति के ठोस आधार पर अधिष्ठित है।

यह संगठन भारत वर्ष के लिए नयी चीज नहीं भगवान गणेश प्रणेता है। वं. मौसी जी अपने बौद्धिक में गणेश जी श्रेष्ठ संगठन प्रमुख कैसे है उसकी आंखे बारिक क्यों है, पेट बड़ा क्यों, इसका सुंदर वर्णन करती थी। लोकमान्य जी को जब संगठन की आवश्यकता प्रतीत हुई तो उन्होंने लोगों को संगठित करने हेतु गणेशोत्सव प्रारंभ कि। स्व. बाबा साहेब आपटे कहते थे - गण का अर्थ बारिकी से सोचना है। गणेशजी केवल व्यक्ति ही नहीं वरन् एक तत्व है, एक विद्या है, उसका नाम गणेशविद्या - और उसके द्वारा समाज का प्रत्येक व्यक्ति चरित्र्यवान, निर्लोभी, अनुशासनबद्ध एवं कार्यक्षम बनाया जाने लगा। आज की परिभाषा में हम इसी को संगठन शास्त्र भी कह सकते है। हमारे यहां के सूक्त 'संगच्छ्वं, संवदध्वं' संगठन कैसा हो यह मार्गदर्शन सदैव करते है। हमारे पूर्वजों की यह श्रद्धा थी कि, नदी का धर्म है बहना, अग्नि का धर्म है जलना, सूरज का प्रकाश तथा उष्णता देना, चंद्रमा का शीतलतादेना, वैसे ही समाज का धर्म है संगठित रहना। समाज को जीवित रहना है तो संगठित रहना ही होगा। विघटित होने पर सर्वनाश निश्चित है। समष्टि धर्म के अभाव में मुट्ठी भर अंग्रेज विशाल भारत वर्ष पर राज कर सकें।

व्यक्ति बुद्धिमान है, सज्जन है, कार्यक्षम है। ऐसे अकेले व्यक्ति ने यदि परिश्रम से, पूर्ण समय देकर भी कार्य किया तो वह समाज की किसी समस्या को हल नहीं कर पाएगा। केवल एक व्यक्ति का विकास होगा। समाज का नहीं। संपूर्ण समाज के विकास के लिए एकत्रित होकर ही प्रयत्न करने पड़ेंगे। चरित्रसम्पन्न ऐसे हजारों हृदयों को एक सूत्र में पिरोने वाला अनुशासन युक्त संगठन ही सामर्थ्यशाली रहेगा। समाज की समस्याओं का समाधान कर सकेगा। देवों की अवतारकथाएं हम सुनते है। श्री विष्णु ने जिस समय राम या कृष्ण का अवतार लिया तो अकेले नहीं, उनके साथ अनेक देवताओं ने, सहयोगियों ने भी जन्म लिया और उनका समाज, धर्म की स्थिति सुव्यवस्थित करने में सहयोग दिया। श्री विष्णु ने आदेश दिया कि उन्हें कहॉ और किन गुणों से, शक्तियों से युक्त होकर जन्म लेना है, क्योंकि उन्हीं गुणों से संगठित कार्यशक्ति निर्माण हो सकती थी। हमारी प्रार्थना में भी हम कहते है - सुशीला सुधीरा, समर्था, समेताः हम सुशील, धैर्यशाली, बुद्धिमान, समर्थ बनकर संगठित रहे। गुणहीन व्यक्तियों का एक साथ आने से किसी प्रकार का हित तो होगा नहीं अपितु नुकसान अवश्य होगा स्वार्थी, अविचारी एवं दुष्ट समाज का निर्माण होगा।

अंतः हमें ऐसा समाज निर्माण करना है जो संपूर्ण समाज में सम्यक कार्यचेतना जगाए। ग्राम तथा नगरवासी, अशिक्षित, शिक्षित, गरीब, अमीर सभी को संगठित करना होगा। उन सब में एकता का भाव निर्माण कर परस्पर सुख-दुख की संवेदना निर्माण करनी होगी। अग्नि जैसे प्रकाश तथा उष्णता को एक साथ वहन करता है, वैसे ही सेविका को संवेदना तथा शक्ति का वाहन बनना चाहिए।

हमारा उद्देश्य राष्ट्र को संगठित करना है अर्थात् राष्ट्रीय चरित्र, ऐक्य निर्माण करने वाले गुणों का विकास करना है। मातृभक्ति, मातृभूमि की भक्ति यह मेरा भी दायित्व है यह भाव, आदर्शों के प्रति निष्ठा, अनुशासन निर्माण करना ही संगठन का लक्ष्य है।

राष्ट्र विकास संगठित शक्ति पर ही निर्भर होता है। राष्ट्रीय वृत्ति से प्रेरित व्यक्ति, समूह को चुंबक के समान आकृष्ट करता है तथा उनमें भी चुंबकीय गुण भरता है। यह प्रक्रिया राष्ट्रकल्याण में महत्वपूर्ण मायने रखती है।

हमारे राष्ट्र ने भी आर्थिक तथा उद्योग व्यवसाय में विकास किया, परंतु राष्ट्रीय चरित्र के अभाव में उसका लाभ हमारे राष्ट्र को मिलने की अपेक्षा दूसरे राष्ट्रों ने उठाया। केवल उत्पादन क्षमता बढ़ने से विकास नहीं होगा तो बिना भ्रष्टाचार के उसके वितरण से होगा। और यह राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रीय चरित्र से ही संभव होगा। चारित्र निर्माण की एक पद्धति है 'संगठन शास्त्र' जो हमने स्वीकार किया है। तात्पर्य है कि राष्ट्रविकास अर्थात् संगठन और संगठन के साथ राष्ट्र विकास यह समीकरण है। सूर्य उदय के साथ अंधकार का नाश होता है। सूर्योदय के साथ सारे हिंसक पशु निर्विघ्न जंगल में छिप जाते है। कमलदलों का विकास एक साथ एक समय ही होता है। वैसे ही शुद्ध चरित्र पर आधारित संघटन और राष्ट्रीय विकास का एकरूपत्व है।

संगठन में निर्माण सेविका शिक्षिकाएं विद्यार्थियों को केवल पाठ नहीं पढ़ाएंगी, तो अपने आचरण, विचार, भाषा से चरित्र सम्पन्नता का आदर्श निर्माण करेगा। शिक्षा क्षेत्र में अभिप्रेत राष्ट्रीय विकास होगा, मजदूरों की हडताल से होने वाला राष्ट्रीय नुकसान रोका जा सकेगा।

शासकीय सेवा में कार्यरत कर्मचारी, अधिकारी रिश्वत न लेते हुए देश के कल्याण तथा प्रतिष्ठा का ध्यान रखेगा। एक विशेष उद्देश्य से युक्त आदर्शमय जीवन हमें निर्माण करना है। बिना इसके संगठन का कार्य असंभव है। इस दृष्टि से अनेकानेक राष्ट्रीय गुणों से परिपूर्ण असंख्य व्यक्ति निर्माण कर संगठन सूत्र में पिरोना है। बस जीवनभर यही साधना करनी है।

पूरक उदाहरण

गरुड ओर चंडौल पक्षी की कहानी

समाज सामर्थ्यवान बनने से अनेक समस्या हल हो सकती है।

पाच उंगलियों की कहानी।

दो बैलों की कहानी (पंचतंत्र की)

भारत में भी मुसलमान और अंग्रेज आएँ, उन्होंने तोडो और राजकरो (डिवाईड ऑन्ड रुल) की नीति अपनाई और राज्य किया।

जयचंद और पृथ्वीराज (विघटन वृत्ति के कारण जयचंद की सहायता से महंमद ने दिल्ली तथा उसके पश्चात कन्नोज लूट लिया।)

राणा प्रताप और शक्ति सिंह (व्यक्तिगत महात्वाकांक्षा या प्रतिष्ठा के कारण दोनो भाईयों में शत्रुता) शक्तिसिंह के शौर्य का लाभ अकबर को मिला। राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध हुआ।

धर्म, जाति, भाषा भेद, का भारत में अंग्रेजों ने लाभ उठाया। खण्ड प्राय देश में अलग-अलग जाति, भाषा होना स्वाभाविक है। परंतु सभी को राष्ट्रीयता के एक सूत्र में पिरोना आवश्यक है। यही समिति कार्य है।

संगठन की शक्ति

कार्यकर्ताओं की एकात्मता संगठन की शक्ति केवल संख्याबल में नही। परस्पर सहानुभाव निरपेक्ष स्नेहभाव हर समय परस्पर सहायता के लिये सहजता से दौडकर जाने की तत्परता समाज के सुखदुख में अपना सुखदुख देखने की प्रवृत्ति यह संगठन की अनुभूति है।

संगठन के सभी घटकों में यह प्रवृत्ति जागृत करना यही संगठन का कार्य है।

संस्थापिका एवं आद्य प्रमुख संचालिका

वं. मौसीजी

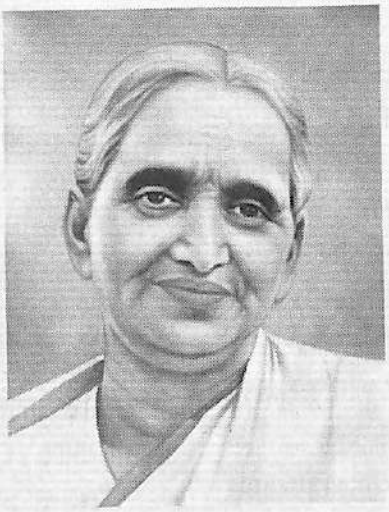

वह समर्थ महिला कौन थी, जिसने केवल भारत में ही नही अपितु पूरे विश्वभर के विभिन्न देशों में रहनेवाली सैकडों-हजारो महिलाओं में हिन्दुत्व की भावना की ज्योति जगाकर उन्हें संगठन का महान मंत्र पढाया है। उस अलौकिक व्यक्तित्व का जीवन कैसा रहा होगा, जिसने मातृशक्ति को राष्ट्रकार्य के लिए प्रेरित किया और साकार हुआ एक विश्वव्यापी नारी संगठन जिसे आज विश्वभर में सम्मान की नजर से देखा जाता है।

व्यक्तिगत जीवन

राष्ट्र सेविका समिती की आद्य संस्थापिका श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर उपाख्या वं. मौसीजी के जीवन के बारे में जानने के लिए सभी निश्चित् ही उत्सुक होंगे। मॉ जैसी ममताका वर्षाव करनेवाली वं. मौसीजी का जन्म आषाढ शुद्ध दशमी के अवसरपर 5 जुलै 1905 को नागपूर के दाते परिवार में हुआ। तरोताजा प्रफुल्लित कुसुम जैसी बालिका को देखते ही डॉक्टर ने उनका नामकरण 'कमल' रख दिया। (जो आगे जाकर यथार्थ सिद्ध हुआ)।

दाते परिवार लौकिकार्थ से विशेष संपन्न नही था, परंतु वैचारिक रूपसे पूर्णतः, संपन्न था। छोटी कमल ने अपनी ताईजी से सुश्रुषा का गुण, पिताजी से तन-मन-धन से सामाजिक कार्य का तथा माताजी से निर्भयता, राष्ट्र प्रेम और राष्ट्रप्रेम के गुण विरासत में लिए, आत्मसात किये। लो. तिलकजी की प्रतिमा घर में रखकर, पास-पडोसकी महिलाओं को एकत्रित करके उनकी माताजी 'केसरी' समाचार पत्रका वाचन करती थी। जिन दिनो सरकारी नौकरों को केसरी घरमें रखने की अनुमती नही थी, उन दिनों में कमल की माताजी अपने नाम पर केसरी खरीदती थी। अपनी चाची ताईजी के साथ वह गोरक्षा हेतु भिक्षा के लिए तथा कीर्तनों में जाती थी और जानेअंजाने संस्कार ग्रहण कर रही थी। जिसका प्रभाव उनकी बाल्यावस्थासे ही दिखाई देने लगा। उन दिनों में स्वतंत्र बालिका विद्यालय न होने के कारण उन्हें मिशनरी स्कूल में प्रवेश लेना पडा। वहाँ की शिक्षा और घर में मिलनेवाली शिक्षामें महान अंतर का प्रतीत होने से उनके मनमें निरंतर संघर्ष चलता रहता था और यही संघर्ष एक दिन वास्तव रूप में उभर आया विद्यालय में प्रार्थना के समय आँखे बंद रखने का नियम था। एक दिन कमल ने बीच में ही आँखे खोली, तो उसे डांट पडी। तो निर्भय कमल ने तुरंत उस अध्यापिका से प्रश्न किया "अगर आपकी आँखे बद थीं तो आपको, कैसे पता चला की मैने ऑखे खोली थी?" जिसका उत्तर अध्यापिका के पास नही था। कमल ने उस विद्यालय में जाना छोड दिया। अब उनकी आगे की शिक्षा हिन्दु प्रेमी व्यक्तियों द्वारा स्थापित "हिन्दु मुलींची शाळा" इस विद्यालय में हुई। उन दिनों की प्रथा के अनुसार कमलकी शिक्षा चौथी कक्षा तक पहुँचते ही उसके विवाह के प्रयास शुरु हो गये। कमल बचपन से ही अपने विचारों के बारे में सचेत थी, उसमें आत्मविश्वास ओतप्रोत भरा था। वाचन, श्रवण, मनन से वह परिपक्व हो चुकी थी। अन्याय कारक घटनाओं से उसे बचपन से ही चीढ थी। दहेज प्रथा की शिकार बनी बंगाल की स्नेहलता के पत्रने उनके अंदर के

स्फुल्लिंग को चेतावनी सी मिली और उन्होंने सभी को बिना दहेज दिये और लिए विवाह के लिए आग्रहपूर्वक प्रेरित किया और स्वयं भी इसी विचारधारा का अनुकरण किया। विवाह के पश्चात् लगभग 14 वर्ष की आयुमें ही वह दो बच्चों की माँ, बन गयी। विवाह के बाद वह 'कमल' से 'लक्ष्मी' बनी। उनके पती पुरुषोत्तम राव केलकर वर्धा के प्रख्यात विधिज्ञ (वकील) थे। उनकी रहन-सहन और विशिष्ट स्वभाव के कारण लोग उन्हें सरदार कहते थे। कमल को वैवाहिक जीवन का सुख 10-12 साल ही मिला, राजयक्ष्मा के कारण अल्पायुमें ही पुरुषोत्तम राव परलोक सिधारे। अब लक्ष्मी के सामने 8 संतानो की - 2 बेटियाँ और 6 बेटे की जिम्मेदारी थी। पतिनिधन का वज्राघात, बच्चों की देखभाल, गृहस्थी की जिम्मेदारी इन आपत्तियों से लक्ष्मी सी हो गयी।

विवाहोत्तर जीवन

अपने पती के जीवनकाल में भी लक्ष्मी अपनी गृहस्थी की सभी जिम्मेदारियों को निभाते हुए कांग्रेस की प्रभात फेरी, पिकेटींग आदि कार्यक्रमों में सक्रिय थी। पती निधन के पश्चात् भी उनके कार्यक्रम चलते ही रहे, जिस समय विधवा होते ही महिला को बाहर के दरवाजे बंद किये जाते थे। ऐसे समय लक्ष्मी का यह व्यवहार प्रवाह को विरूद्ध दिशा में मोडने वाला था। वह वर्धा के गांधी आश्रम में प्रार्थना के लिए उपस्थित रहती थी। प्रार्थना के समय गांधीजी द्वारा इस कथन ने उन्हें अंतर्मुख बनाया कि सीता के जीवन से ही राम की निर्मिती होती है, अतः महिलाओंने अपने सामने सदैव सीताजी का आदर्श रखना चाहिए। अब लक्ष्मी ने सीता में स्त्री की वास्तविक भूमिका को खोजने के लिए रामायण का अध्ययन शुरु किया। महिलाओं की स्थिती, उनके ऊपर लादे गये बंधन, अपहरण, अत्याचार तो वह स्वयं देखती थी, समाचार पढती थी। धीरे-धीरे जीवन पद्धती में परिवर्तन हो रहा था। स्त्री की ओर देखने का दृष्टीकोण बदलने लगा था, उसे पढने को प्रवृत्त किया जाने लगा। केशवपन प्रथा का भी जोरदार विरोध हो रहा था। स्त्री को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूपमें माना जाने लगा। स्त्री को निर्भयता से डटकर खडा होना आवश्यक है इसकी आवश्यकता वह स्वयं ही अनुभव कर रही थी।

बंगाल में कुसुमबाला को घसीटकर ले जाकर उसका अपहरण करते समय गुंडोंने उस के पति को सुनाया कि, कानून तुम लोगों के लिए है। हमारा कानून हमारी बाहुओं में है। ऐसी घटनाओं से महिलाओं की असुरक्षितता प्रकट होती थी और परिणाम स्वरुप लक्ष्मीजी के मन में दिनरात विचार मंथन चलता रहता था कि अब महिलाओं को स्वसंरक्षणक्षम कैसे बनाये। कौन सा मार्ग ढूँढे?

लगभग इसी समय अपने पुत्र मनोहर और दिनकर के माध्यम से उनका परिचय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से हुआ और इसी प्रकार का संगठन महिलाओं के लिए भी बनाने की आवश्यकता की बात उनके मन ने ठान ली। उनके मन में डॉ. हेडगेवारजी की भेंट करने की इच्छा जाग उठी और संयोगवश यह अवसर शीघ्र ही उन्हें प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने बेटों से डॉक्टर हेडगेवारजी से अपने स्वयंसेवक बेटों की अभिभावक के नाते मिलने की इच्छा प्रदर्शित की। उन दिनों पिता या घर के पुरुष को ही अभिभावक समझा जाता था। इसलिए बेटों ने अधिकारियों से पूछकर अनुमति ले ली और अनुमति मिलने पर कार्यक्रम के समय वे उपस्थित रही। वार्तालाप के लिए अलग से समय माँगने पर डॉक्टर साहबने स्वीकृती दे दी। उस समय वं. मौसीजीने महिलाओ के लिए भी राष्ट्रीय दृष्टी से संघटित होने की आवश्यकता की बात बतायी। तथा महिला व्यक्तिगत ही नहीं अपितु सामाजिक दृष्टी से सुरक्षित होने की बातको भी उठाया। वं. मौसीजी का दृढनिश्चय तथा प्रगल्भता को देखकर डॉक्टरजी ने उन्हें इस कार्य से पूरा सहकार्य देनेका आश्वासन दिया। अब मौसीजी के विचारों को वास्तविक रूप प्राप्त हुआ और राष्ट्र सेविका समिति का जन्म होकर वर्धा में उसका कार्य प्रारंभ हुआ। महिलाएँ प्रतिदिन निश्चित समय पर एकत्रित होने लगीं, मातृभूमी के प्रति अपने दायित्व के रूपमें

सोचने लगीं। प्रार्थना तैयार हुई, जिससे मन में हिन्दुत्व जगे, शक्ति, बुद्धि प्राप्त हो, स्त्री सुशीला, सुधीरा समर्थ बनें। इस तरह महिलाओं का प्रतिदिन एकत्रित होना, सैनिकी पद्धतिका प्रशिक्षण लेना यह बात उस समय के समाज द्वारा विरोध भी हुआ, लेकिन मौसीजी अपने विचार से परे नहीं हटी। गृहस्थी के साथ-साथ यह कार्य करना रस्सीखेच जैसा ही था।

स्वयं सिद्धता

स्वयं को निरंतर संगठन के ढाँचे में ढालने का उनका प्रयास निरंतर जारी थी। प्रारंभ में उन्हे भाषण देने का अभ्यास नहीं था। वक्तृत्वशैली भी नहीं थी। लेकिन समाज जागरण के हेतु से समाज को मार्गदर्शन करने की आंतरिक, अत्यंतिक इच्छा थी, जिससे आगे का मार्ग सुगम हुआ। विषय का अध्ययन करना, उसमें से महत्वपूर्ण मुद्दे निकालना और उन्हें प्रभावी भाषा में जनता के सामने प्रस्तुत करना - यह बातें अभ्यासपूर्वक आत्मसात की और आत्मविश्वासपूर्वक अपने विचार व्यक्त करनेवाली उत्कृष्ट वक्ता बन गई। मधुर आवाज, स्पष्ट उच्चारण, भावस्पर्शी शब्दों का चयन इन सबका मनोहारी संगम होने के कारण उनका वक्तृत्व श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देता था।

उन्हें समिति की शाखा-शाखाओं में जनसंपर्क हेतु जाना पडता था, इसलिए मौसीजीने साइकिल चलाना सीख लिया, तैरना भी उन्हें आता था। उनकी बेटी वत्सला की पढने में रुचि देखकर घरपर शिक्षक बुलाकर उसकी पढाईका प्रबंध किया। वर्धा में विद्यालय शुरु करने के लिए अपनी देवरानी को प्रोत्साहित किया और वहाँ पढाने के लिए आयी कालिंदीताई, वेणुताई जैसी शिक्षिकाओं का रहने का प्रबंध अपने स्वयं के घर में किया, जिन शिक्षिकाओं ने उन्हें समिति का कार्य में भी सहयोग दिया।

गहरा चिंतन

वं. मौसीजीने संगठन की चौखट स्वयं तैयार की थी। जिसमें उन्होंने अपने स्वयं के विचारों से ध्येय धोरण के रंग भरे थे। स्वसंरक्षण हेतु समिती में दी जानेवाली शारीरिक शिक्षा कहीं उसकी शारीरिक रचना या स्वास्थ्य में बाधक तो नहीं बनेगी इस बातपर भी वह सोचती थी। 1953 में उन्होंने स्त्रीजीवन विकास परिषद का आयोजन करके डॉक्टरोंको एकत्रित किया और महिलाओं के सौष्ठव के बारे में परिचर्चा आयोजित की। योगासन का महत्व जानकर उन्होंने स्वयं योगासनों की शिक्षा ली। योगमूर्ति जनार्दन स्वामीजी को अनेक स्थानोंपर आमंत्रित करके सेविकाओं को योगासनों का शास्त्रशुद्ध प्रशिक्षण दिया। समिती के शिक्षा वर्गों में भी योगासन का समावेश किया गया।

सेविका कैसी हो उनके सामने इसकी स्पष्ट रूपरेखा थी कि वह संतुलित व्यक्तित्ववाली हो तभी वह समाज के लिए पोषक और प्रेरक सिद्ध होगी। अतः उन्होंने देवी अष्टभुजा की प्रतिमा आराध्यदेवता के रूप में सेविकाओं के सामने रखी। देवी के आठ हाथों में धारण किये आयुधों का वह वर्णन करके बताती थी जिसमें से उनकी अलौकिक प्रतिभा तथा प्रगल्भ और गहरे चिंतन की ज्योति झलकती थी।

रामभक्ति

मौसीजी राम की निस्सीम भक्त थी। उन्होंने रामायण पर उपलब्ध अनेक ग्रंथों का अध्ययन किया और उसमें का राष्ट्रीय दृष्टीकोण अपने 13 दिनों के रामायण के प्रवचन के माध्यम से जनता के सामने लाकर स्पष्ट किया। उन्होंने लगभग 108 प्रवचन किये और लोगों को समझाया राम को केवल भगवान समझकर उसकी पूजा मत करो, वह एक राष्ट्रपुरुष है, उसका अनुकरण करो। इन प्रवचनों से प्राप्त, धनराशि का विनियोग उन्होंने समिती के कार्यालय निर्माण करने के लिए किया। आज उनके वक्तृत्व की अमोल निधी 'पथदर्शिनी श्रीराम कथा' के रूप में हमारे पास है।

वं. मौसीजी की स्मरण शक्ति अद्भुत तेज थी। एक बार परिचय होने के बाद वह उस व्यक्ति को नाम सहित हमेशा याद रखती थी। जीवन के अंतिम चरण में जब वह चिकीत्सालय में भर्ती थी, तो सेविकाओं से

भजन गीत गाने को कहती थी और बीच में अगर गानेवाली भूल गयी तो तुरंत आगे के शब्द बताती थी।

व्यवस्थित सरल जीवन, कलात्मक, सांस्कृतिक दृष्टि

वं. मौसीजी का रहन सहन का ढंग अत्यंत सीधासादा था। वह हमेशा स्वच्छ और सफेद सूती साडी ही पहनती थी। अपने कपडे स्वयं धोने का उनका परिपाठ था। उनका हर काम कलात्मक रहता था। समय मिलते ही सिलाई कडाई चालू रहती थी। भगवान के सामने रंगोली सजाना, पूजा करना उसमें भी एक विशेषता थी। हर उत्सव में चाहे वह शाखा में हो या घर में, सांस्कृतिक प्रतीकों के प्रदर्शन का उनका आग्रह रहता था। हर परिवार में एक राष्ट्रीय कोना हो, जहाँ परिवार के सदस्य मिलकर समाज के, राष्ट्र के बारे में दिन में एक बार सोचे इसलिए वह हमेशा प्रयत्नशील थी।

वर्ष प्रतिपदा (गुढी पाडवा) के दिन गुढी के बजाय अपने घरोंपर हमारी संस्कृती का प्रतीक भगवा ध्वज फहराया जाय यह उन्हीकी कल्पना थी। पूजा के लिए छोटे-छोटे ध्वज उन्होने ही बनवाएँ। वंदे मातरम् माँ की प्रार्थना है अतः वह गाते समय हाथ जोडने की प्रथा उन्होंने ही शुरु की।

पाककला में वह निपुण थी। परोसने में भी उनकी कला तथा मातृभाव का अनुभव होता था।

कुशल संघटक

"दो महिलायें कभी एकत्र आकर कार्य करना संभव नहीं है" यह जनापवाद उन्होंने झूठा साबित कर दिया है। आव्हान के रूप में महिलाओं का सशक्त संगठन स्थापित करके यह सिद्ध कर दिया कि समिती की सैंकडों सेविकाएँ मिलजुलकर आपस में आत्मीयता से ध्येय निष्ठा से राष्ट्र के लिए विधायक काम सशक्तता से कर सकती है। पूना में श्रीमती सरस्वतीबाई आपटे द्वारा महिलाओं के संगठन के कार्यकी शुरुआत की जानकारी मिलनेपर मौसीजी स्वयं पूना जाकर सरस्वतीबाईजी से मिली। मौसीजी के कुशल, आत्मीय और सौहार्द्र व्यवहार से, प्रसन्न व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सरस्वतीबाईजी ने अपने संगठन को राष्ट्र सेविका समिती में संम्मिलित कर दिया।

पत्र व्यवहार से मौसीजी सभी के साथ निरंतर संपर्क बनाये रखती थी। अखंड प्रवास का सिलसिला और सेविकाओं से मिलना निरंतर शुरु ही रहता था। प्रातः स्मरण, देवी अष्टभुजा स्तोत्र, पूजा, नमस्कार इत्यादि रचनायें उन्होंने की महिलाओं की संगीत में रूचि और भक्तिभाव को देखते हुए उन्होंने भजन मण्डलके लिए प्रोत्साहित किया।

अनेक चित्रकारों को एकत्रित करके उनके सामने प्रदर्शनी के विषय रखे और चित्र निकालने का आव्हान किया। कला के द्वारा राष्ट्रीय विचारधारा पुष्ट करने मे सहयोग वाली बात की नईदृष्टी प्राप्त होनेवाली बात एक चित्रकार ने ही कही। समितीद्वारा उन्होंने अनेक प्रदर्शनियों का आयोजन करवाया।

साहसी वृत्ती

अगस्त 1947 का समय था। प्रिय मातृभूमि का विभाजन होनेवाला था। मौसीजी को सिंध प्रांत की सेविका जेठी देवानी का पत्र आया कि सेविकाएँ सिंध प्रांत छोडने से पहले मौसीजी का दर्शन और मार्गदर्शन चाहती है। इससे हमारा दुःख हल्का हो जायेगा। हम यह भी चाहते है कि आप हमें श्रद्धापूर्वक कर्तव्यपालन करने की प्रतिज्ञा दे। देश में भयावह वातावरण होते हुए भी मौसीजी ने सिंध जानेका साहसी निर्णय लिया और 13 अगस्त 1947 को साथी कार्यकर्ता वेणुताई को साथ लेकर हवाई जहाज से बम्बई से कराची गयी। हवाई जहाज मे दूसरी कोई महिला नही थी। श्री जयप्रकाश नारायणजी और पूना के श्री. देव थे वे अहमदाबाद उतर गये। अब हवाई जहाज में थी ये दो महिलाएँ और बाकी सारे मुस्लिम, जो घोषणाएँ दे रहे थे - लडके लिया पाकिस्तान, हँस के लेंगे हिन्दुस्थान। कराची तक यही दौर चलता रहा। कराची में दामाद श्री चोळकर ने आकर गन्तव्य स्थान पर पहुँचाया।

दूसरे दिन 14 अगस्त को कराची में एक उत्सव संपन्न हुआ। एक घर के छतपर 1200 सेविकाएँ एकत्रित हुई। गंभीर वातावरण में वं. मौसीजी ने प्रतिज्ञा का उच्चारण किया, सेविकाओं ने दृढता पूर्वक उसका अनुकरण किया। मन की संकल्पशक्तिको आवाहन करनेवाली प्रतिज्ञा ने दुःखी सेविकाओं को समाधान मिला। अन्त में मौसीजीने कहा, "धैर्यशाली बनो, अपने शील का रक्षण करो, संगठन पर विश्वास रखो और अपनी मातृभूमिकी सेवा का व्रत जारी रखो। यह अपनी कसौटी का क्षण है।" वं. मौसीजी से पूछा गया - हमारी इज्जत खतरे में है। हम क्या करें? कहाँ जाएँ? वं. मौसीजीने आश्वासन दिया - "आपके भारत आनेपर आपकी सभी समस्याओं का समाधान किया जायेगा। अनेक परिवार भारत आये। उनके रहने का प्रबंध मुंबई के परिवारों में पूरी गोपनीयता रखते हुए किया गया। इस तरह असंख्य युवतिंयों और महिलाओं को आश्रय और सुरक्षितता देकर वं. मौसीजीने अपने साहसी नेतृत्व का परिचय दिलाया।

व्यक्ति निष्ठा नहीं

वं. मौसीजी के जीवन का एक प्रसंग। एक शाखा में मौसीजी के आगमन की पूर्वसूचना मिलते ही सेविकाओं ने उनके स्वागत की जोरदार तैयारियाँ की। उनके लिए गौरवपर गीत रचकर गाया गया। बौद्धिक के समय वं. मौसीजीने सेविकाओं से कई प्रश्न कि और कहा कि इस गीत में एक परिवर्तन चाहिए। इसमें आपने मौसीजी कार्य के प्रति समर्पण की भावना की बात जतायी है, लेकिन यह किसी एक व्यक्ति का कार्य नही है अपितु आपको राष्ट्र सेविका समिती के राष्ट्र कार्य के प्रति समर्पण की भावना रखनी है। ऐसे कई गुणों के कारण ही वह वंदनीय बन गई।

ऐसे व्यक्तित्व को ही वंदनीय कहा जाता है। वंदनीय इसलिए नहीं कि उनके पास लम्बी उपाधियाँ थी या वह धनवान थी। न तो उनके पास कोई सिद्धी थी, न बह कोई तंत्र-मंत्र जानती थी। यह तो एक आम महिलाओं जैसी एक सरल, सीधा साधा गृहस्थी जीवन व्यतीत करनेवाली स्त्री। बाल्यकालसे ही प्राप्त राष्ट्रीय संस्कार और बुद्धिमत्ता और तेजस्विता के साथ-साथ राष्ट्रकार्य के प्रति आत्यंतिक आस्था के कारण ही उन्होंने यह अद्वितीय कार्य कर दिखाया। राष्ट्र सेविका समिती की स्थापना, अखिल भारतवर्ष में उसका प्रचार और प्रसार तथा निर्माण की हुई कार्य पद्धती जिसपर आज भी समिती का कार्य सरलता से चल रहा है। इन्हीं गुणों से उन्हें वंदनीय बताया।

यह शांत, पवित्र तेजवी जीवन 27 नवम्बर 1978, कार्तिक (मार्गशीर्ष) कृष्ण द्वादशी, युगाब्द 5080 को पंचत्व में विलीन हो गया। देह नष्ट हुआ, कीर्ति, प्रेरणा अमर है, निरंतर चलती रही है और आगे भी रहेगी।

किं साधितं त्वया मृत्यो। अपह्नत्येतद् ज्ञान निधिम् ।।
नश्वरशरीरं भस्मीकृतम् । अनश्वरथशासि का ते गतिः।।

दीपज्योति प्रणाम

दीपज्योति प्रणाम तुझे नित दीपज्योति प्रणाम।
शुभंकरी तू जग कल्याणी
मातृशक्ति प्रेरक तू मानी
कोटि-कोटि हृदयों में अंकित मंगलमय तव नाम।।
रामायण वाल्मिकी कृती तू
लवकुश जननी स्वयं स्फूर्ती तू
दिव्य चरित सीता से ज्योतित प्रकट हुये श्रीराम।।
ध्येयमार्ग का दीपस्तंभ तू
कोटी करों का स्नेहबंध तू
कण कण क्षण-क्षण राष्ट्र समर्पित किये कर्म निष्काम।
ज्योतिर्मय है मार्ग हमारा
चंचल मन क्यों भ्रम में हारा।
तव जीवन की स्मृति सुमनों में प्रेरक शक्ति महान।।

अध्ययन हेतु पुस्तके

1) कर्मयोगी वं. मौसीजी 2) दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते 3) चालविसी हाती धरोनिया 4) स्त्री-शक्तीचा साक्षात्कार 5) Life sketch of Van. Mausiji

शांत, स्निग्ध नंदादीप - वं. ताई आपटे

(द्वितीय प्रमुख संचालिका)

'सतैजोऽस्तु नित्यं शांतपावित्र्यस्य
दिव्य चारित्र्यस्य नंदादीपः।'

इसका साक्षात् रूप थी वंदनीय ताईजी (सरस्वतीबाई) आपटे राष्ट्र सेविका समिती की द्वितीय प्रमुख संचालिका। उनके रूप में ये पंक्तियाँ हमने न केवल देखी, अपितु उसका अनुभव किया।

वं. ताईजीका जन्म कोकण में केळशी तहसील में आंजर्ले गांव में फाल्गुन कृष्ण 11 इ. स. 1910 में हुआ। लो. तिलकजी उनके पिताजीके मामा थे। विरासत से राष्ट्रभक्ति का संस्कार लेकर आयी इस बालिका का नाम तापी अर्थात् तापहरण करनेवाली ऐसी रखा गया। ताईजी ने वह नाम सार्थ कर दिखाया। गोवा मुक्ति संग्राम और पानशेत बांध टूटने से आये प्रलय मे अपना संपूर्ण योगदान दिया प्रथम प्रमुख संचालिका लक्ष्मी व द्वितीय प्रमुख संचालिका सरस्वती याने लक्ष्मी और सरस्वती का अनोखा संगम राष्ट्र सेविका समिती के लिए बडे सौभाग्य की बात है। केवल अपने मायके और ससुराल के लोगों के लिए ही नहीं, अपितु सम्पर्क में आनेवाली हर व्यक्ति के लिए वह तापहारक शीतल ऐसी सिद्ध हुई। 15 वर्ष की आयु में तापी विद्वांस ने सरस्वती आपटे के रूप में पुणे में प्रवेश किया। एक पुत्र और दो कन्याओंने उनका जीवन परिपूर्ण बनाया।

जीवन का पूर्वरंग

संघस्थापना के पश्चात् पुणे में संघकार्य का आरंभ होते ही विनायकरावजी आपटे संघ कार्य में जुट गए। शीघ्र ही वे पुणे संघचालक बनें। उनका स्वभाव अत्यंत मिलनसार था। 751, सदाशिव पेठ,पुणे के ही नहीं अपितु देशभर के स्वयंसेवकों का कार्यकर्ताओं का प्रचारकों का अपना घर बन गया। दिन रात लोगों की आवभगत चलती थी। इसलिए मकान मालिक कहते थे इनके घर आने-जाने वाले लोगों के कारण हमारी सीढियाँ घिस गयी। कीलें निकलगयी। प. पू. डॉक्टरजी, प. पू. गुरुजी, वं. मौसीजी जबभी पुणे आते थे, तो 751, सदाशिव पेठ में ही उनका निवास होता था। उस समय संघकार्यालय नही थे इस लिये 751, सदाशिव पेठ यही कार्य का केंद्र बन गया और भोजन आदि की व्यवस्था करते-करते वं. ताईजी उनकी बाते सुनती थी। स्वभाविकता संघ जैसे कार्य की महिलाओं के लिए आवश्यकता पर मन ही मन विचार भी करती थी। उन्होंने महिलाओं का एकत्रीकरण प्रारंभ किया। अब रसोईघरों में राष्ट्र की पराधीनता ब्रिटीशोंद्वारा किये जानेवाले अत्याचार स्वदेशी व्रत का स्वीकार और उसको निभाने में अपनी अहम् भूमिका आदि विषयों पर चर्चाएँ गूँजने लगीं। एक भेंट में प. पू. डॉक्टरजी ने उन्हें वर्धा में प्रारंभ हुए राष्ट्र सेविका समिति के कार्य के बारे में जानकारी दी।

एक दिन वं. मौसीजी डॉक्टरजी का पत्र लेकर ताईजी आपटे के घर पहुँची दोनोंकी भेट चर्चा हुई। बिना शर्त ताईजीने अपने कार्य प्रवाह को समिति की

केंद्र धारा में सम्मिलित कर दिया। यह कहा जाता है कि, लक्ष्मी-सरस्वती की आपस में नहीं बनती, परंतु समिति के कार्य में लक्ष्मी-सरस्वती ने हाथ में हाथ बांधकर बडा शानदार मार्गक्रमण किया।

ममतामयी माँ

वं. ताईजीका गृहस्थीजीवन अत्यंत कठिन था। राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित विनायकरावजी के लिए सरकारी नौकरी करना असंभव ही प्रतीत होता था और निजी वकिली के व्यवसाय के लिए संघकार्य से समय निकालना कठिन था। परिणामतः ताईजी को हिंदुस्थान मुद्रणालय का काम देखना पडता था। आप वह काम अच्छी तरह से जानती थी। घर में तो स्वयं सेवकों का तांता लगा रहता था। ताईजी को बहुतबार आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पडा। ऐसी गृहस्थी निभाकर समाजकार्य करना कोई साधारण बात नही थी। परंतु वं. ताईजीने यह साध्य कर दिखाया। ऐसी स्थिति में भी वं. ताईजी की प्रसन्नता ढली नहीं और उनके घर से कोई भी खाली हाथ गया नहीं। भारतवर्ष में प्रवास करते समय हमने ताईजी के हाथों का भोजन किया था। ऐसा बतानेवाले सैंकडो प्रचारक हमें मिलते है। जगन्नाथरावजी जोशी हमेशा कहा करते थे, मेरे व्यक्तित्व को आकार दिया विनायकरावजीने और सुदृढ शरीर दिया वं. ताईजीने।

'मातृहस्तेन भोजनम् की अनुभूति हर व्यक्ति को वं. ताई देती थी।' उनका जीवन राष्ट्ररूप था। चिंतन भी उसी प्रकारका था। अपने अंतिम भाषणमें उन्होंने बडी भावुकता से कहा था 'मेरे हाथ का भोजन जिन्होंने किया, वे कभी इधर उधर भटके नहीं, राष्ट्रकार्य में लगें रहे।'

1966 तक विनायकरावजी का सहवास उन्हें प्राप्त हुआ। कैन्सर से उनका देहान्त हुआ। परंतु पति की मृत्यु के पश्चात् भी घर की गरिमा वही रही, लोगों का संपर्क चलता रहा। गृहिणी गृहमुच्यते को वं. ताईजीने सार्थ कर दिखाया। तीनों सरसंघचालकों से उनके अत्यंत घनिष्ठ पारिवारिक संबंध थे। प. पू. गुरुजी के पिताजी का देहान्त होने के पश्चात् उन्होंने अपनी मॉ-ताई के पास रहने के लिए इस ताई को पुणे से बुला लिया था। उनके व्यक्तित्व की गहराई को समझने के लिए इससे अच्छा उदाहरण और कौनसा हो सकता है?

संघ पर आयें दोनों आपातकालमें आपने जो काम किया वह बेजोड है। घर-घर की मानसिकता उन्होंने बनायी रखी। द्वितीय आपात काल में प. पू. बालासाब की 60 वीं वर्षगाठ उन्होंने येरवडा कारागृह में मनायी। सुहागिन महिलायें और वैदिक ब्राह्मणों को साथ लेकर उनको आशीर्वचन दिये, आरती उतारी, मिठाई बाटी। उन्होंने कारागार प्रमुख को बताया कि हमारे भाई का जन्मदिन है। हमें वह मनाना ही है अपने स्नेहिल व्यक्तित्व से उनको अनुमति सहज प्राप्त हुई। गोवा मुक्ति संग्राम में सम्मीलित होने के लिए भी आप बहुत उत्सुक थी, परंतु पिछाडी का महत्त्वपूर्ण दायित्व संभालने को कहा गया। वह आपने कुशलता से निभाया।

नगर कार्यवाहिका से क्रमशः प्रदेश कार्य वाहिका, अ. भा. कार्यवाहिका और अंत में प्रमुख संचालिका का सर्वोच्च दायित्व भी आया जो आपने कुशलता से निभाया। वं. मौसीजी ने अपनी धुरा उनके कंधों पर देने के पश्चात् निरंतर संगठन के कार्य के लिए उन्होंने पूरे भारतवर्ष में भ्रमण किया। 84 वर्ष की आयुतक वह सुदूर जम्मूतक प्रवास करती रही।

पाठ पढाया आचरण से

वं. ताईजीने हमें बातों से कम परंतु आचरणसे अधिक सिखाया है। उनका बौद्धिक हमेशा प्रेरणादायी रहता था। उसमे विद्वत्ता से अधिक व्यावहारिकता अधिक झलकती थी। उनके छोटे तथा सरल वाक्य हमें अंतर्मुख करनेपर बाध्य करते थे। यही कार्यकर्ताओं का जोडनेवाली बात है। 'मुंह में मिठी मिश्री और सिरपर बर्फ' यह है उनका दिया हुआ महामंत्र। हमें सदा के लिए उपयुक्त है। वह हमेशा कहा करती थी कि विविध प्रकार का खट्टा मीठा, तीखा भोजन हमारे

पेट में रह सकता है, परंतु किसी के चार शब्द क्यों नहीं रख सकते।

वं. ताईजी का जनसंपर्क बडा व्यापक था। 'राखी' यह उनका आपसी संपर्क का प्रभावी माध्यम था। आप अत्यंत क्रियाशील थी, कभी खाली हाथ बैठना उन्हें मान्य नहीं था। प्रतिवर्ष आप हजारों राखियाँ बनाती थी। समिति की अखिल भारतीय बैठक में आनेवाली सभी सेविकाओं को स्वयं बनायी हुई राखी बाँधती थी। गाँव-गाँव में भी भेज देती थी। सामान्य रिक्शाचालक एवं फलाट पर रहनेवाले लोग, कामायनी (अपंगो की संस्था) के बच्चे इन सब को स्वयं जाकर राखी बांधती थी। उनके इस स्नेहभरे व्यवहार को देखकर संपर्क में आया हर व्यक्ति उनके प्रेम के धागे में बँध जाता था। उनका व्यक्तित्व सीधा-सादा, सरल था, जिसमें कोई कृत्रिमता या आडम्बर नहीं था।

स्वयं पत्र लिखना यह उनकी विशेषता थी। अंतिम काल में हाथ में दर्द था, लिखना कठिन हो रहा था। फिर भी दूसरे किसी से पत्र लिखवाकर हस्ताक्षर करना उन्हें मान्य नहीं था। अंतिम दिनों में उनके लिखें हुए पत्र उनके देहांत के तुरंत बाद ही कोलकाता में वसंतरावजी बापट, अमरावती में शैलाताई भागवत और लतादीदी वाखरू के प्राप्त हुए थे।

हर व्यक्ति ने 24 घंटों में कम से कम एक घंटे का समय समाजकार्य के लिए अवश्य देना चाहिए ऐसी उनकी धारणा थी। आज घर-घर में आधुनिक उपकरण होने के कारण समय की बचत होती है, कम समय और कम शक्तिमें काम होता है। इस बची हुई इस शक्ति और समय का उपयोग राष्ट्र कार्य के लिए नहीं किया जाता है यहीं उनकी वेदना थी।

स्थायी भाव - सेवा

सेवा यह आपका स्थायी भाव था। पीलियापर आप नित्य दवाई देती थी। अनेक घरेलु दवाईयां आप जानती थी और अनेकोंने उनका लाभ उठाया था। आप नाडी परीक्षा अच्छी तरह से करती थी, 'मालिश' से तुरंत आराम प्राप्त होता था। यही सेवाभाव उन्हें बस्तियों में, जाने के लिए प्रेरित करता था। पानशेत बांध फूटने के समय उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। अकाल के समय 'राऊतवाडी' गोद में लिया था। जहाँ घर-घर में आपका संपर्क था। वहाँ हर तरह की सुविधाएँ प्राप्त करा देने के लिए आप हमेशा सतर्क रहती थी। उनका स्मृतिदिन माघकृष्ण द्वादशी का दिन सेविकाओंने सेवादिन के रूप में मनाने का निश्चय किया है। सेवा कार्यका यह संस्कार हमारे जीवन को उचित आकार देगा, संगठन को दृढ करेगा।

विकास के सोपान

1) समिति के प्रारंभ काल में युवतियाँ विवाह के पश्चात् या स्थानांतरण के कारण जाती जिस नगर में जाती थी, वहाँ समिति का कार्य प्रारंभ करती थी। इस तरह कार्य का विस्तार होता गया। बढते हुए कार्य के लिए अधिक समय देनेवाली सेविकाओं की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। वं. मौसीजी के कार्यकाल में ही वर्ग के लिए शिक्षिका के नाते युवतियों का अन्य प्रांतों में जाना प्रारंभ हुआ था। परंतु उस समय समाज कार्य के लिए स्त्री का घर से बाहर रहना या अपना घर छोडकर अन्य प्रांतों में जाना यह तो क्रांतिकारी बात थी। वं. ताईजी के कार्यकाल तक समाज की मनोधारणा में बदलाव आ चुका था। स्त्री का समाजकार्य अब जनमान्यता प्राप्त कर चुका था। प्रचारिका का काम करनेवाली युवतियों का दायित्व (स्थानीय) सेविकाओंने स्वीकारा था।

2) वं. ताईजी के कार्यकाल में ही विदेशों से संपर्क होना प्रारंभ हुआ था।

3) बढते हुए कार्य की व्याप्ति देखकर उन्होंने सहप्रमुख संचालिका का पद निर्माण किया और उसका दायित्व वं. उषाताईजीपर सौंप दिया।

4) अहल्या मंदिर में पूर्वांचल की लडकियों के लिए पूर्वांचल कन्या छात्रावास शुरु हुआ।

शाखा यह संजीवनी

वं. ताईजी हमेशा कहा करती थी कि शाखा यह हमारे कार्य की संजीवनी है। प्रतिदिन शाखा में

जाना उनका नित्यव्रत था, जो अंतिम दिन तक उन्होंने निभाया। अंतिम दिन भी आप जिजाबाई स्मारक समिति कार्यालय में बैठक के लिए उपस्थित थी। आपका दृढ विश्वास था कि शाखा में जाने से मन का मुटाव आलस सभी दूर होते है, मन ताजातरोज बनता है। अपने अंतिम पत्र में भी आपने यही पाथेय दिया है कि 'निष्ठा यह तारक शक्ति है। समिति के कार्य में निष्ठा रखो, वह जीवन नौका पार करेगी, जीवन कृतार्थ होगा। 'वयं भावी तेजस्वी राष्ट्रस्य धन्याः जनन्यो भवेम् यह आकांक्षा साकार होगी। हिन्दु राष्ट्र सारे संसार में तेजस्वी राष्ट्र के रूप मे उभर आयेगा।'

तुम कहाँ पर खो गई हो

छोड़कर पगचिन्ह अपने, तुम कहाँ पर खो गई हो
शस्य-श्यामल इस धरा की, गोद में क्यों सो गई हो
ईश अर्पित हो गई हो।।धृ.।।

वेदना का भाव उर में, मौन धरणी रो रही है
है व्यथित नभ, दश-दिशायें, पुष्प वर्षा हो रही है
हे समाधिस्थे! जगत् तज, साधनामय हो गई हो
छोड़कर पगचिन्ह अपने ... ।।1।।

अग्नि की उठनी शिखायें, दग्ध क्या तन कर सकेंगी
कोटि हृदयों में विराजित मूर्ति तब जीवित रहेगी
हे तपस्विनि! शान्त-प्राणा, भावना मय हो गई हो
छोड़कर पग चिन्ह अपने .... ।।2।।

मानवी थी देह अनुपम, ध्येय जीवन में सुधा था
सत्य, सेवा, अरु, समर्पण, प्यार जन-जन में बिधा था
निज करों से स्नेह बाँधे, संगठन-मणि पो गई हो।
छोड़कर पग चिन्ह अपने .... ।।3।।

राष्ट्र-सेवा में निरत हम, बढ़ चलें पग चिन्ह लखकर
स्वप्न तब साकार कर दें, स्वार्थ, माया, मोह तजकर
पल्लवित, पुष्पित, फलित हो. बीज तुम जो बो गई हो
छोड़कर पगचिन्ह अपने .... ।।4।।

वं. ताईचे विचार

_भारत केवल मिट्टी का नाम नही_

भारत केवल मिट्टी का नाम नही। यह एक राष्ट्र का द्योतक है। जो हजारों वर्षोंसे इस धरती को अपनी मातृभूमी तथा पुण्यभूमि मानता आ रहा है और इसकी रक्षा के लिए हजारों सपूतों व पुत्रियों ने बलिदान किये। अपने राष्ट्र तथा समाज के अभिन्न अंग के नाते सभी को अपने कर्तव्य की पहचान होना ही देश की अखंडता व सम्मान के रक्षण का परिचायक है। और इसी कर्तव्य की पहचान कराने का काम राष्ट्र सेविका समिति कर रही है।

राष्ट्र सेवा का बारहमास व्रत का स्वीकार ले

स्त्री को अपने चतुर्विध भूमिकाये निभाते हुए समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्योंका एहसास होना चाहिये। समाज तथा राष्ट्र के उन्नति के लिए संगठन के माध्यम से आजीवन कार्य करने का व्रत महिलाओं ने लेना चाहिये। चातुर्मास में महिलाएँ व्रत-अनुष्ठान करती ही है। उसी तरह देशसेवा का व्रत केवल चातुर्मास के लिए नही बारह महिनों के लिये लेना चाहिए।

मेरे पास समय नही है - मै थक गयी हूँ,
यह भाषा कभी न बोलें
व्यवहार के माध्यम से ही मनुष्य गढ़ता जाता है।

_पूरक है स्पर्धक नही_

मुक्ति आवश्यक है परंतु किससे? मुक्ति चाहिये - द्वेष से, लोभ से, मोह से। स्त्री-पुरुष समान है। इतना ही नही स्त्री पुरुष की प्रेरणा है, वह उसे संस्कार देती है, संभालती है परंतु स्त्री ने स्वयं की इस महानता को पहचानना होगा। पुरुषों के समान पोषाख पहनना, उसके जैसा व्यवहार करना यह पुरुष के कार्यों की कसौटी पर स्वयं के कर्तृत्व को नापना इसे समानता नही कहेंगे। वास्तव में समानता चाहिये तो वह स्त्री के व्यक्तित्व के विकास के अवसर उपलब्ध करने में, स्त्री के अस्तित्व को मान्यता देने में। स्त्री और पुरुष के नैसर्गिक कार्य एक दूसरों के पूरक है, स्पर्धक नही।

दूसरों के दोष निकालने के बजाय हम उन्हें समझें। उसी प्रकार दूसरों के कठोर बातों का बुरा न मानें। मेरे कारण काम रुकेगा यह भावना भी नहीं होनी चाहिये।

हमारा प्रवास लंबा है, कार्य का क्षेत्र काफी बड़ा है। इसके लिए अनेक हाथ चाहिये, विचार चाहिये और मन उत्साही चाहिये। कष्ट सहन करने की प्रवृत्ति होनी चाहिये। कोई कुछ भी करे और वह सहन करते रहना अन्याय है। उसके विरुद्ध आवाज उठानी है।

वं. उषाताई चाटी *(प्रमुख संचालिका)*

ऋजुता की प्रतिमूर्ति

वं. उषाताई चाटी, हमारी तृतीय प्रमुख संचालिका। एक ऋजु, स्नेहमयी व्यक्तित्व।

वं. उषाताई मूलतः भंडारा (विदर्भ) निवासी फणसे कुल की कन्या है। आपका जन्म 31 अगस्त 1927, तिथी भाद्रपद शुद्ध चतुर्थी याने गणेश चतुर्थी के दिन हुआ। बुद्धिदाता और गणों का नायकत्व करनेवाले गणपति का यह जन्मदिन और उसी अवसरपर आपका जन्म यह एक अद्‌भुत संजोग की बात है। उषाताई की पढाई भंडारा के मनरो हाईस्कूल में हुयी। वं. मौसीजी जिन्हे मातृतुल्य मानती थी ऐसी श्रीमती नानी कोलते की शाखा में उषाताई जाने लगी। उन के समर्पण भाव तथा निरपेक्षता का प्रभाव उषाताईपर हुआ।

1948 में विवाह के पश्चात् उनका परिवार नागपूर में स्थानांतरित हुआ। उनके पति श्री. गुणवंत चाटी बाबा नामसे जाने जाते थे। प्रथम भंडारा की जकातदार कन्याशाला में और विवाह के बाद हिंदूमुलींची शाळा इस विद्यालय में वं. उषाताई ने अध्यापन कार्य प्रारंभ किया। अल्पावधि में ही छात्राओं के साथ आपके आत्मीयतापूर्ण व्यवहारने उषाताई विद्यार्थीप्रिय शिक्षिका होकर छात्राओं का आधार केन्द्र बन गयी। परिवार में उषाताई सबसे बडी बहू होने के नाते आपने सास-ससुर, तीन देवर, 1 ननद इन सबका स्नेह, आपने स्नेह और सेवा पूर्ण व्यवहार से संपादन किया। श्री. बाबाजी संघ के निष्ठावान स्वयंसेवक थे। घोष प्रमुख के नाते घोष में नये-नये प्रयोग करते रहते थे। साथ-साथ उनका अनगिनत लोगों से संपर्क बना रहता था।

अध्यापन का कार्य करते-करते वं. उषाताई ने भूगोल एवं मराठी इन विषयों के माध्यम से अपनी छात्राओं को सुसंस्कृत बनाने की दृष्टि से संस्कार किये। छात्राओं के विकास के हेतु से स्थापित 'वाग्मिता' विकास समिति की निरंतर 30 साल वह अध्यक्षा रह चुकी है। यहाँ भी वह संस्कारक्षम कार्यक्रमों का आयोजन करती रही। आप सेवानिवृत्त होने के इतने वर्षो के पश्चात भी आपकी अनेक छात्राएँ और सहयोगी अध्यापिकाएँ आज भी उषाताई को आदरपूर्वक याद करती रहती है और मिलने के लिए आती है।

वं. उषाताई को मधुर और सुरीली आवाज की ईश्वरीय देन प्राप्त है। नागपूर में आने के बाद नागपूर आकाशवाणी पर संगीत के कार्यक्रमों में उनका सहभाग रहता था, जिसके लिए निरंतर अभ्यास की आवश्यकता होती है। परंतु समिति के कार्य से उन्हें समय नहीं मिलता था, वहॉका समय शाखा के समय से मेल नहीं खाता था। परिणाम स्वरूप उन्होंने संगीत आराधना छोड दी, साथ-साथ आकाशवाणी कार्यक्रम भी बंद किये। समिति कार्य को प्राथमिकता देकर प्रसिद्धी से नाता छोडकर हम सबके सामने एक आदर्श हमेशा के लिए रखा है।

प्रथम आपात्काल के समय श्री बाबाजी ने संघद्वारा आयोजित सत्याग्रह में भाग लिया। ऐसी कठिन परिस्थिति में परिवार का सभी प्रकार का दायित्व उषाताईने समर्थता से निभाया। श्री. बाबाजी जैसे समर्पित कार्यकर्ता की पत्नी की भूमिका उन्होंने अच्छी तरह से निभायी।

समिति का दायित्व, कार्यभार क्रमशः दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा था। नागपूर नगर कार्यवाहिका, विदर्भ कार्यवाहिका का दायित्व निभाते हुए 1970 में उन्हें अखिल भारतीय गीत प्रमुख का दायित्व सौपा गया। 1977 से उत्तर प्रदेश का पालकत्व उनके ऊपर सौपा गया। घर का तथा समिति का दोनो दायित्व वं. उषाताईजीने एकसाथ इतनी कुशलतासे निभाये कि दोनों एक दूरसे के पूरक बनकर रहे। समिति का कार्य करते समय वह अपने परिवार से भी उसी तरह जुडी रही। मातृवत्सलता के कारण उन्हें परिवार में (बडी चाची) ताई जी का सम्मान प्राप्त है, महत्त्व के विषयों पर उनकी राय और मार्गदर्शन नित्य लिया जाता है। हालही में गंभीर बीमारी के समय उनके परिवार के सदस्य भतीजे, बहुएँ, पोते-पोतियाँ उनकी सेवा के लिए उपस्थित रहते थे।

जून 1975 से कुछ दिन के लिए वं. उषाताई आपात्काल में सत्याग्रह कर के जेल गयी। वहाँ की साथी अन्य बंदी महिलाओं के साथ वात्सल्यपूर्ण व्यवहार से उन्होंने उनको प्रेरणा दी, उनमें धीरज बंधाया और कष्ट सहनेकी मानसिकता निर्माण की थी।

1982 में अचानक इस शांत जीवन में तूफान सा आ गया। श्री बाबाजी का हृदय विकार के झटके से कुछ ही क्षणों में अचानक निधन हो गया। संपूर्ण चाटी परिवार शोक सागर में डूब गया। ऐसे वज्राघात समान दुःख के समय भी उषाताईजी का विवेक संतुलन और संयम कायम था। अपने से भी अपनी वृद्ध सास का उन्हें ज्यादा ध्यान रहता था और इसलिए कोई सांत्वना के लिए आता था तो उषाताईजी उन्हे बताती थी कि आप पहले जाकर ताईजी से मिलें। ताईजी (सास) थोडी तेज स्वभाव की थी, परंतु उषाताईजी के स्वभाव ने उन्हें जीत लिया था।

धीरे-धीरे अपना संपूर्ण समय समिति के लिए देने के लिए, पूर्णतः समर्पिता वृत्ति से काम करने के लिए समिति कार्यालय में रहने का निर्धार दृढ हो रहा था।

मनोवृत्ति

प्रमुख संचालिका के नाते वं. उषाताई जी को कभी-कभी समस्याग्रस्त प्रान्तों का प्रवास करना पडता है। बडे हर्षोल्लास से वह यह प्रवास करती है, पूर्वनियोजित कार्यक्रमों में उपस्थित रहती है। कभी-कभी स्थानिक कार्यकर्ता सेविकाएँ आपकी सुरक्षा के बारे में चिन्तित रहती है। सैनिकी ट्रक या पुलिस जीप में सवार होकर यात्रा करनी पडती है। लेकिन उषाताई हँसते-हँसते यह सब निभा लेती है। ना स्वयं चिन्तित रहती है, ना दूसरों को रहने देती है।

वं. उषाताई का नेतृत्व, संगठन के लिए आवश्यक ऐसा मातृभाव देखकर अपनी बढती आयु के बारे में सोचकर व ताईजी आपटे ने 1984 में आप के हाथों में सहप्रमुख संचालिका का पदभार सौपा था, जिससे आपका प्रवास का क्षेत्र और अधिक विस्तारित हुआ। 1991 में विश्व हिन्दू परिषद के केन्द्रिय विश्वस्त के नाते उनका नाम स्वीकृत हुआ, उनकी बैठकों में आपको जाती रहती है।

दि. 9 मार्च, 1994 को वं. ताईजी आपटे का आकस्मिक निधन हुआ। उनकी अंतिम इच्छा के अनुसार वं. उषाताई को प्रमुख संचालिका का दायित्व सौंपा गया, वह दायित्व वह समर्थता से निभाती आयी है। पिछले कई वर्षो से घुटनों के दर्द से पीडित होनेपर भी किसी कार्यक्रम पर अपने बीमारीका प्रभाव नहीं पडने देती है, सभी कार्यक्रम पूर्ववत् चालू है। अपनी सहयोगी कार्यकर्ताओं पर उनका अटूट विश्वास है। अतः आप ऊनपर सहजता से बडी-बडी जिम्मेदारियाँ सौंप देती है।

एक अखिल भारतीय स्त्री संगठन की प्रमुख होने का अहंभाव उनमें कतई नहीं दिखायी देता। सामान्य सेविका की प्रशंसा आप खुले दिल से करती है। वह अच्छा बौद्धिक हो, गीत हो या कला कौशलवाली बात हो। सेविकाओं के आग्रहपर आज भी वह उनकी मधुर आवाजमें सहजता से गीत सुनाती है।

पुरस्कार

आपके कार्य के गौरवस्वरूप आपको -

1) जोशी फाउंडेशन की ओरसे दिया जानेवाला राष्ट्रीय एकात्मता पुरस्कार।

2) स्वामी विवेकानंद राष्ट्रीय शिक्षण संस्था, डोंबिवली के द्वारा दिया जानेवाला विवेकानंद पुरस्कार।

3) ओजस्विनी अलंकरण, भोपाळ

आप को प्राप्त हुए है।

इन सब पुरस्कारों में प्राप्त धनराशि आपने संघमित्रा सेवा प्रतिष्ठान को दान की है। आपके कार्यकाल में समिति द्वारा प्रेरित प्रतिष्ठानों की बैठकों को प्रारंभ हुआ। 1998 में पूना में, नागपूर में 2001-2002 में हुआ। विश्वसमिति शिक्षा वर्ग का आयोजन हुआ। विविध प्रांतों में जनजातीय और समस्यापीडित बालिकाओं के लिये निःशुल्क छात्रावास शुरु हुए।

ज्योति मंदिर में जलेगी

ज्योति मंदिर में जलेगी, राष्ट्र का आंगन सजेगा।
सकता का दीप जननी, प्राण से ज्योतित रहेगा।।धृ.।।

स्वार्थ शलभों को भस्म कर स्नेह की बाती बनायी
पूत रजकण जोड़कर संकल्प की आरति सजायी
साधना ही एक पथ है - एक साधक मन रहेगा।।१।।

एक उपवन के सुमन हम एक बिरवे की कली है।
एक माँ की पुत्रियाँ सब, एक संस्कृति में पली है।
एक गौरव-गान शत-शत कण्ठ से मुखरित रहेगा।।२।।

एक पावन भक्ति जागी, हर हृदय हर प्राण तन में
एक राष्ट्रीय भावना ही, है समायी गहन मन में
एक शाश्वत सत्य भारत विश्व में पूजित रहेगा।।३।।

कब बुझी है यज्ञ ज्वाला, वेदवाणी मूक कब है
देश के नारीत्व जागो गूंजता संघर्ष रव है
प्रेम की वर्षा करो अब, देश का जीवन जगेगा।।४।।

वर्तमान संघर्षमय कालमें राष्ट्रव्यापी एवं विश्वव्यापी महिला संगठन का नेतृत्व सशक्तता से करना एक अग्निपरीक्षा के समान है। परंतु एक-एक कार्यकर्ता को जोडकर रखने की कुशलता, उनकी मातृवत स्नेहमयी, शांत, स्निग्ध प्रकृति के कारण ही उत्पन्न है। उसी के कारण गुरुतर दायित्व निभाने में वह सफल हुई है और आगे भी होगी इसमें संदेह नहीं है।

समिति की तीनों प्रमुख संचालिकाएँ उपरोक्त गुणों में ओत प्रोत होना इससे बडा सौभाग्य और क्या हो सकता है।

हे भारतभू मनसप्रेरणा

हे भारत भू मनस् प्रेरणा
विश्वजयी विश्वंभरा
तेरे हित सर्वस्वार्पण की
शाश्वत हिंदु-परंपरा।।धृ.।।

सत्यनिष्ठ श्रीराम यहाँ थे
नीति निपुण घनश्याम यहाँ थे।
ऋषि मुनियों की तपस्थली शुचि
उदात्त-अपनी पुण्यधरा।।१।।

त्याग-समर्पण-स्नेह शक्ति हो।
सब में ईश्वर-भाव-भक्ति हो।
कर्मयोग सिखलाती गीता।
नित्य साधना प्रियंवरा।।२।।

सब का हो कल्याण विचारें
सत् शिव सुंदर ज्ञान प्रचारें
ले संकल्प, ध्येयसाधक-बन
सुखमय कर दें वसुंधरा।।३।।

समिति की प्रार्थना

राष्ट्र सेविका समिति प्रार्थना भारतीय नारी की आशा आकांक्षाओं की नितांत सुन्दर अभिव्यक्ति है। जीवन के प्रारंभसे ही प्रार्थना करने की मानवीय प्रवृत्ती रही है। जिन जीवनमूल्यों के कारण भारत गौरव शिखारका उच्च स्थान सम्मानपूर्वक प्राप्त कर सका उनको सुरक्षित, अबाधित रखने के लिये समुचित शक्ति (शारीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक) प्राप्त करना आवश्यक है। मानवी प्रयत्नके साथ-साथ दैवी कृपा भी हो तो मणिकांचन योग कहा जायेगा। इसलिये अपने से 'श्रेष्ठ' शक्ति के सम्मुख नम्रतापूर्वक अपनी मनोकामना व्यक्त करने में लाचारी नहीं क्यों कि वह श्रेष्ठ दैवी शक्ति हमारी मनीषा पूर्ण करेगी इसका हमें विश्वास है। अपनत्व का यह नाता शब्दों से प्रगट करना (सर्वथा) असम्भव है।

प्रार्थना का उद्देश्य व्यक्ति विशेष के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकता है। कोई केवल तपस्या के लिये, कोई शक्ति की प्राप्ती के लिये, तो कोई सुखशांति के लिये प्रार्थना करता है। भक्तिभाव से की हुई प्रार्थना में समर्पणभाव भी रहता है। ऐसी प्रार्थना से व्यक्तिगत जीवनमें सुप्तशक्तियोंका विकास होकर जीवन तेजस्वी होगा ऐसा विश्वास रहता है। सभी धर्मो और पंथो में प्रार्थना का स्वतंत्र स्थान है। अपने इष्टदेवता के सम्मुख मनसे अथवा भावपूर्ण शब्दों से उच्चारण करना ही प्रार्थना है। ध्येय का ध्रुवतारा सतत दृष्टि के सामने स्थिर रहने के लिये तथा वहाँ तक हमें पहुँचना ही है, इसका ध्यान रखने के लिये प्रार्थना आवश्यक है।

समिती की प्रार्थना सामूहिक होती है। समाज की आशा आकांक्षाए केन्द्रित होनेपर निर्माण होनेवाली प्रचण्ड शक्ति परिस्थिती में आमुलाग्र परिवर्तन ला सकती है। सामुहिक प्रार्थना हमें व्यक्तित्व की संकुचित सीमा से समष्टि के विशाल परिघि तक पहुंचाती है। हम सब एक है ऐसी अनुभूति निर्माण करनेका सामर्थ्य सामूहिक प्रार्थना मे है। मैं से हमतक पहुँचने के लिये सामूहिक प्रार्थना नितान्त आवश्यक है। जो कुछ माँगना है वह सबके लिये, अपने समाज के लिये, अपने राष्ट्र के लिये। व्यक्तित्व की संकुचित सीमा से समष्टि की विशाल परिघि में प्रवेश करना इस कारण सुलभ होता है। ऐसे ही राष्ट्रीय प्रार्थना का उदय हुआ था।

Greatest pleasure of the greatest number यह आधुनिक संकल्पना नही। हमारे पूर्वजोने ऋषि मुनियोंने 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' यही उद्दिष्ट सामने रखकर वैदिक काल में सामूहिक प्रार्थना की थी।

प्रार्थना संस्कृतमें क्यों?

प्रारंभ में समिती शाखाओं में मराठी भाषा में प्रार्थना बोली जाती थी। किन्तु समिति का प्रसार, विस्तार जब महाराष्ट्र से बाहर अन्य प्रांतो मे होने लगा तब सबको समझने वाली, मनमें उत्साह तथा चेतना जगानेवाली पूरे भारत वर्ष में परिचित ऐसी संस्कृत भाषा में प्रार्थना लिखी गई। संस्कृत सुसंस्कारित लोगोंकी भाषा है। वह अन्य भारतीय भाषाओंकी जननी होने के कारण भारत में मान्यताप्राप्त है। वह हमारे ज्ञानका भांडार है। उसको देववाणी या गीर्वाणवाणी भी कहा जाता है। भारत के सभी प्रांतों को एक सूत्र में ग्रथित कर उनमे सामंजस्य, एकात्मता, प्रेमभाव निर्माण करने का संस्कृत भाषा एक श्रेष्ठ माध्यम है। कार्य का अखिल भारतीय स्वरूप ध्यानमें रखते हुए समिति की प्रार्थना संस्कृत भाषा में लिखी गई।

शाखा स्थानपर परम पवित्र भगवे ध्वजके सम्मुख नियमित रूपसे बोली जानेवाली प्रार्थना यह अपना मंत्र है। उससे हमें प्रेरणा मिलती है। मननात् त्रायते इति मन्त्रः। शब्दों को मन्त्र का सामर्थ्य तभी प्राप्त होता है

जब उनके शब्दों का अर्थ का चिंतन, मनन, निदिध्यास के लिये की हुई तपस्या सफल होती है। हर मंत्र का एक विशिष्ट तंत्र होता है। तंत्र याने आचरण के नियम। मंत्र व तंत्र के सामंजस्य से ही मंत्र सफल (सिद्ध) होता है। वह अपना सुरक्षा कवच होता है। इसलिये प्रार्थना के प्रत्येक शब्द का अर्थ समझ लेना, उसपर चिंतन करना, उसके अनुसार आचरण करना सभी सेविकाओं का आद्य कर्तव्य है।

तपःपूत शब्दों का शुद्ध उच्चारण लाभदायी तथा अशुद्ध उच्चारण हानिकारक होता है।

'दुष्टः शब्दो स्वरतो वर्णतो वा। मिथ्या प्रयुक्तः न तमर्थमाह। स वाग्वज्रोयजमानं हिनस्ति। यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात।।' इस प्रसिद्ध उक्ति से यह स्पष्ट होता है की केवल शुद्ध उच्चारण ही पर्याप्त नही है, अर्थ भी समझना चाहिये। बिना अर्थ समझे मंत्र पठन करना बोझ ढोने जैसा है।

'प्रार्थना' शब्द मे दो पद है। प्र-अर्थना। यह एक निवेदन है, परन्तु इसके पीछे तपस्या की शक्ति है। प्रार्थना में भक्ति के साथ-साथ समर्पण भावना होती है। आन्तरिक सुप्तशक्तिओंका विकास होकर जीवन तेजस्वी होता है। दैवी गुणों से युक्त तेजस्वी राष्ट्रशक्ति का निर्माण यह हमारी महती आकांक्षा है। वह प्रार्थना के प्रत्येक शब्द में प्रकट होती है। हम दैवी राष्ट्र के अनुचर है उसीके कारण संपूर्ण विश्व में सुखशान्ति का साम्राज्य आएगा ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रार्थना के अन्त में 'भारत माता की जय' ऐसा बोलते है। 'भारत हमारी माता है' यह संस्कार इससे दृढ होता है। मेरी माँ को कलंक लगेगा ऐसा आचरण तथा व्यवहार नही करना चाहिये। ऐसा नैतिक भाव मनमें निर्माण होगा तब अनिर्बंध आचरण पर रोक लगेगी।

1) अन्वय - हे मातृभूः हे पुण्यभूः त्वया वर्धिताः संस्कृताः वयं त्वत्सुताः त्वाम नमामः। अये वत्सले, मंगले हिंदुभूमे, (वयं सर्वाः) स्वयं जीवितानि त्वाम् अर्पयामः।
अर्थ - हे मातृभूमे, हे पुण्यभूमे भारतमाते, तूने ही पाली हुई संस्कारित की हुई हम तेरी कन्यायें तुझे वन्दन करते है। हे वत्सले, मंगले हिंदूभूमे हम स्वयं अपने जीवन तेरे चरणों में अर्पण करते है।।1।।

2) अन्वय - नमो विश्वशक्त्यै नमः ते नमः ते। त्वया महत् हिन्दुराष्ट्रं निर्मितम्। तव एव प्रसादात् दिव्यमार्गं समालम्बितुं वयं अत्र समेत्य सज्जाः।

अर्थ - हे विश्वशक्ति (आदिशक्ति) तूने ये महान हिन्दुराष्ट्र का निर्माण किया है। तुझे बार-बार प्रणाम। तेरी ही कृपासे हम सब दिव्य मार्ग का अवलंबन करने के लिये तैय्यार होकर यहाँ संघटित हुए है।।2।।

3) अन्वय - येन नः एतत् राष्ट्रं समुन्नामितं यस्य पुरतः समग्रं जगत् नम्रं (भवेत्) हे अम्ब, तद् आदर्शयुक्तं पवित्रं सतीत्वं (तव) प्रियाभ्यः सुताभ्यः प्रयच्छ।

अर्थ - हे माँ जिससे सारा राष्ट्र उन्नत हुआ, जिस के सम्मुख सम्पूर्ण जगत् विनम्र हुआ ऐसा पवित्र सतीत्व तुम अपनी प्रिय कन्याओंको प्रदान करो।।3।।

4) अन्वय - हे मातृभूमे (त्वं) इह सुदिव्यां, दुराचार दुर्वृत्ति विध्वंसिनीम् पिता पुत्र भातृन् भर्तारं च एव सुमार्गं प्रति प्रेरयन्तीम् शक्तिम् अस्मासु समुत्पादय।

अर्थ - हे मातृभूमे, हम सेविकाओं में दुराचार, दुवृत्तिओं का विध्वंस करनेवाली दिव्य शक्ति का आप निर्माण करें जिससे हम पिता, पुत्र, बन्धु तथा पती को सन्मार्गपर चलने की प्रेरणा दें सके।

4) अन्वय - वयं (सर्वाः) सुशीलाः, सुधीराः, समर्थाः (अत्र) समेताः। (अस्मभ्यं) स्वधर्मे, स्वमार्गे, परं श्रद्धया चलन्त्यः (तथाच) भावि तेजस्वी राष्ट्रस्य धन्याः जनन्यः भवेम इति आशिषं देहि।

अर्थ - हे मातृभूमे, हम सुशील, सुधीर, समर्थ (चारित्र्यवती, धैर्यवती, बलवती) सेविकाएँ संगठित होकर भविष्य में इस तेजस्वी राष्ट्र की कृतार्थ माताएँ बने तथा अतीव श्रद्धासे अपने मार्गपर, स्वधर्मपर चलनेवाली बनें ऐसा आशिष आप हमें दें।।5।।

प्रार्थना का आशय इस प्रकार का है -

अपनी प्रार्थना का प्रारंभ मातृभूमि की वन्दना से है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' यह संस्कार

हमें बचपन से ही मिलता था। अतएव हम राष्ट्ररूप में समर्थता से खडे थे। किन्तु आज व्यक्तिशः हम धर्म का पालन करते है परंतु धर्मसंरक्षण के लिये राष्ट्ररूप में खड़ा रहना पडता है यह बात हम अनेक शताब्दियों से भूल गये। इस विस्मृती के कारण हमारा समाज दुर्बल, स्वत्वहीन तथा दास्यवृत्तिवाला बन गया। व्यक्तिगत आदर्श तथा धर्मपालन उच्च, ध्येयवाद के पीछे सशक्त राष्ट्रभाव खड़ा होने पर ही राष्ट्र जीवित रहता है। राष्ट्र जीवित रहे, बलशाली रहे तो धर्म जीवित रहता है, तत्वज्ञान टिकता है। इसीलिये प्रथम मातृभूमि को वन्दन किया है।

मेरी मातृभूमि पुण्यभूमि भी है। जन्मदात्री माँ विशिष्ट समय के पश्चात् शिशु को स्तन्य देना बन्द करती है परंतु यह मातृभूमि जीवन के अन्तिम क्षणतक पोषण करती है। इतनाही नही तो जीवनान्त पर भी अपने आंचल में प्रेम भाव से समा लेती है। जननी के समान वात्सल्य, प्रेम और क्षमा की यह मूर्ति है। वात्सल्य और क्षमा ऊपरी नही है अपितु अंतः प्रेरणा है। उसमें मांगल्य का भाव है। हमारी मातृभूमि का हिन्दुत्व ही एकमात्र स्वत्व है जिसके रक्षणार्थ हम यहाँ रहते है। इस हिन्दुभूमि को केवल हिन्दु ही पवित्र मानता है ऐसा नही तो चौदहवी शताब्दि में भारत में आया हुआ विदेशी प्रवासी लिखता है कि, It's dust is purer than air and its air is purer than purity itself. It's delightful plains resemble the gardens of paradise. If it is asserted that paradise is in India be not surprised, because paradise itself is not comparable to it. यहाँ का व्यक्ति नगाधिराज हिमालय को देवतात्मा मानता है। देवताओंको भी इस भूमि में मोक्षप्राप्ति के लिये जन्म लेना पडता है। 'दुर्लभं भारते जन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभम् ।' इस प्रसिद्ध उक्तिसे सूचित होता है की जीवन के अंतिम सत्य की अनुभूती होने के लिए ऋषिमुनि महात्माओंने यही जन्म लिया है। जो-जो पवित्र, मंगलमय है वह सब यहाँ ही केंन्द्रिभूत हुआ है। योगी अरविन्द कहते है की, यह भूमि केवल माटी नही, भौतिक पदार्थो से बना हुआ पुंज नही, तो वह है दिव्यत्व का साकार रूप।' अपनी मातृभूमि दैवी शक्ति की अभिव्यक्ति है।

हमारे देश का प्रत्येक कण अपने पूर्वजों के त्याग, तपस्या, बलिदान से अनुप्राणित हुआ है। यह महानता, पवित्रता, तपःसाधना हमें पूर्वजों से विरासत से प्राप्त हुई है। हमने वह आत्मसात करनी है। ऐसी मातृभूमी ने हमें संवार्धित संस्कारित किया है। इन्ही संस्कारों से हमारा मन तथा बुद्धि विकसित हुई है। ऐसी तेरी कन्याएं संगठित होकर तुझे अभिवादन करती है।

हमारी मातृभूमि वत्सलता का मूर्तिमंत प्रतिक है। मांगल्य इसके कण-क़ण में प्रकट होता है। 'चरण पावन चल रहे थे, राम प्रभु और जानकी के। धूलिकण इस धरती के माँ, करे पुनीत मलिन तन मन।' यह हमारी आकांक्षा है। यह भूमी हिन्दुओंकी है। हिन्दुभूमि का नाम लेते ही ध्यान आता है।

हिमालयात् समारभ्य यावदिन्दुसरोवरम्।
तं देवनिर्मित देशं हिन्दुस्थानं प्रचक्षते।।

हिन्दु अर्थात् दैवी गुणों के लिए साधना करनेवाला, तेजस्वी, दुर्बलरक्षक, दुष्टनिर्दालक, धर्मनीतितत्व का प्रतिष्ठाता यह उसकी पहचान है। यहाँके मूलनिवासी, राष्ट्रोत्थानार्थ सर्वत्याग करनेवाले, रक्षणार्थ लडनेवाले, उत्कर्ष के लिए प्रयत्नशील हिन्दु ही है।

1) आसिन्धु सिन्धुपर्यता यस्य भारत भूमिका ।
मातृभूः पितृभूश्चैव सवै हिन्दुरितिस्मृतः ।।

हिंदूहृदयसम्राट स्वातंत्र्यवीर वि.दा. सावरकरजीने हिन्दु की यही पहचान दी है।

हे हिन्दुभूमे, हम सेविकाएं तेरे चरणो पर अपना जीवन समर्पित करने का संकल्प प्रतिदिन दोहराते है। यह जीवन तेरे लिये ही है। इसका एक-एक क्षण तेरे ही सुख के लिये समर्पित है। यह समर्पण स्वेच्छापूर्वक, निरपेक्ष प्रेम तथा श्रद्धासे किया है। प्रलोभन या किसी दबावसे नही। इस समर्पण से हमारा जीवन कृतार्थ

होगा ऐसी हमारी श्रद्धा है, यही हमारा परम सौभाग्य है।

2) नमो विश्वशाक्त्यै - .....

अब हम विश्वशक्ति को वंदन करते है। विश्वशक्ति (आदिशक्ति) से पहले मातृभूमि को वंदन क्यों?

वास्तव में यह भूमी विराट विश्व का एक छोटासा भाग है। इस विराट विश्व का नियंत्रण करनेवाली एक शक्ति है वह जगज्जननी आदिशक्ति है जिसने यह विशाल हिन्दुराष्ट्र का निर्माण किया। राष्ट्र का अर्थ केवल भूखंड नही तो इतिहास, परंपरा, संस्कृति आदि का समावेश राष्ट्र संकल्पना में होता है। इस राष्ट्र ने 'कृण्वन्तो विश्वमार्य, का उद्घोष किया। विश्व को मानवता का पाठ पढ़ाया। ऐसे महान राष्ट्र के हम घटक है। उसकी सेवा करने की प्रेरणा हमें प्राप्त हुई यह आदिशक्ति की असीम कृपा है उस शक्ति को हमारा प्रणाम।

जिस विराट दिव्यशक्ति ने इस मातृभूमि का निर्माण किया उस विश्वशक्ति को तो प्रथम वंदन करना हमारा कर्तव्य है। किन्तु मातृभूमि ने ही हमको इस विराट दिव्य आदिशक्ति का परिचय कराया है। मातृभूमि के पुजारी होने के कारण हमारी स्थिती इस प्रकार हो गई।

'गुरु गोविन्द दोनो खडे काके लागू पाव।
बलिहारी गुरू आपकी गोविन्द दियो बताय।।'

वास्तव में गुरु और परमेश्वर दोनो सामने खड़े होते हुए भक्त गुरु को प्रथम वन्दन करता है। क्योंकि परमेश्वर तक पहुँचाने का मार्ग गुरु ही दिखलाता है। इसी लिये गुरु को प्रथम वंदन। ऐसी ही हमारी धारणा है। मातृभूमि ने ही विश्वशक्ति तक जाने का मार्ग दिखाया है। इसीलिए मातृभूमि को प्रथम वंदन। हे विश्वशक्ति तेरी ही कृपा से हम सब संगठित होकर राष्ट्र भक्ति का प्रखर दिव्यमार्ग स्वीकारने को सिद्ध हुए है।

3) समुन्नामितं येन राष्ट्रं न एतत् .....

इस राष्ट्र की एक विशेषता है, जिसके कारण संपूर्ण विश्व उसके सामने नतमस्तक होता है। वह है भारतीय स्त्री का पवित्र शील, विशुद्ध चारित्र्य। शीलवती, चारित्र्यसंपन्न, त्यागी निष्ठावान स्त्री भारत माँ का सबसे विशेष आभूषण ही नहीं अपितु राष्ट्र का मानबिंदू है। आधुनिक भौतिक प्रगति से भी यह आभूषण मूल्यवान है। परंतु पश्चिम विचारधारा का अन्धानुकरण हमे पदभ्रष्ट कर रहा है। हम हमारी तेजस्विता तथा सतीत्व खो रहे है। मन का समाधान हमसे दूर भाग रहा है। छोटे से कारण को लेकर अपने पती को छोडनेवाली स्त्री कहाँ और कसौटी के, संकटो के क्षणों मे भी पति का साथ न छोडनेवाली उसको अच्छे कार्य की प्रेरणा देनेवाली, उसकी माता बनकर रहनेवाली भारतीय स्त्री कहाँ! जगज्जननी के पास हम सेविकाए मांग रही है यही विशुद्ध, पवित्र शील, निष्ठा, त्याग, संयम, स्नेहशील मातृत्व जो हम में, बाधाओं के हिमालय को पार कर सकने की जिद तथा क्षमता निर्माण करे। सती अर्थात् केवल जलना नही। सतीत्व यह एक असिधाराव्रत है। अविवाहित स्त्री भी सती हो सकती है। समाज का प्रपंच संभालने वाली अविवाहित स्त्री भी सती हो सकती है। सतीत्व की शक्ति प्राप्त करना किसी साधारण स्त्री का काम नही। अग्नि धारण करनेवाला पात्र भी उतना ही समर्थ चाहिये, अन्यथा पात्र भी जल जाएगा। मन की यह शक्ति से जीवन विकसित करने का कार्य केवल भारतीय स्त्री ही कर सकती है। वनवास में पति का साथ देनेवाली सीता, पति के हृदय का, तेजस्विता का स्फुल्लिंग सतत प्रज्वलित रखने वाली द्रौपदी, मृत्यु के विकराल मुख से अपने पति को जीवित निकालनेवाली सावित्री हमारा आदर्श है। हे माँ हम तेरी लाडली कन्याएं है ना? सीता का असीम त्याग, द्रौपदी का प्रखर तेज, सावित्री का कठोर निश्चय तथा परम्परागत विरासत तुम हमें प्रदान करोगी यह विश्वास है। सतीत्व का यह आभरण तू तेरी प्रिय

कन्याओं को प्रदान कर जो केवल भारत का नही अपितु अखिल विश्व का तारण करेगा।

4) समुत्पादयास्मासु .....

एक ही स्त्री कन्या, बहन, पत्नी तथा माता की भूमिकाएं निभाती है। इस प्रत्येक भूमिका में अपने परिवार को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा वह देती है। जीवनरथ का सारथ्य कुशलता से करती है। परिवार में कोई दुष्प्रवृत्त, दुराचारी, राष्ट्रद्रोही न बने इसलिये निरंतर सजग रहना उसका सार्वकालिन कर्तव्य है। घर ऐसा स्थान है जहाँ मानव गढ़ता है। उसकी आकांक्षा, कर्तव्यबुद्धि यहाँ पुष्ट होती है। अपने परिवार के घटकों में दुराचार दिखाई पड़ा तो उसे नष्ट करने की हिंमत, हे जगज्जननी हमें दो। क्षणिक सुखों का आकर्षण, उनके पीछे लगने पर घरमें आनेवाला पैसा जिस मार्ग से आ रहा है उसपर नियंत्रण रखने की जागरूकता तथा क्षमता हममें निर्माण करो। इस प्रकार पिता, पुत्र, भाई तथा पति इन सबको सन्मार्गपर चलने की प्रेरणा हम दे सके ऐसी दिव्य शक्ति हमें दो। दुराचार से बचाना, सन्मार्गपर चलनेकी प्रेरणा देना यह ठीक है ही लेकिन दुर्वृत्ति निर्माण ही नही होगी यह प्रयास करने की शक्ति दो। समाज के भयसे शायद दुराचार नही होगा, किन्तु मनमें दुष्ट प्रवृत्ति रहेगी, वह भी नष्ट करनी है।

5) सुशीलाः सुधीराः समर्थाः समेताः ....

शीलवती, धैर्यशालिनी, शरीर और मन से सुदृढ महिलाएं राष्ट्र निष्ठा के सूत्र से संगठित होने पर तेजस्वी राष्ट्र निर्माण कर सकती है। शारीरिक दुर्बलता होने पर भी आत्मिक तथा मानसिक बल से वह अद्‌भूत कार्य कर सकती है। इसीलिये आत्मबल बढ़ाने हेतु नित्य दैनंदिन प्रार्थना करने का समिति का आग्रह है। संगठन की प्रचंड शक्ति राष्ट्र उन्नत कर सकती है। समाज में व्यक्तित्व विलीन करने की प्रवृत्ति निर्माण करने के लिये एकत्रित आना, संगठित होना आवश्यक है। महान ध्येय के लिये व्यक्तिगत भेदभाव, तथा वैषम्य और क्षुद्रभाव पर विजय पाकर ध्येयपथपर हमने चुने हुए दिव्य मार्ग पर स्वमार्ग पर, स्वधर्म पर अर्थात् स्वकर्तव्य पर अविचल श्रद्धा रखकर ही हम हमारा ईप्सित प्राप्त कर सकते है। भविष्य में इस तेजस्वी राष्ट्र की कृतार्थ माताए हम बने ऐसा आशीर्वाद, हे जननी, तुम हमे दो।

हमारी प्रार्थना माँग नही, कृतसंकल्प का उच्चारण और स्वयंप्रयास का निश्चय है।

प्रार्थना के स्वर हमारे प्राण की झंकार जननी
एक रस में हम मिले है, जनहृदय के तार जननी।
हिंदुकुश योगी शिला मिल-ब्रह्मनद जा सिंधु से।
जुट रहे हैं संगठन की भूमि के आधार जननी।।१।।

दर्पमद में झूंझता आत्महंता विश्व है।
शांति का प्यासा मनुज है, शक्ति से लाचार जननी।।२।।

जानते है सब हृदय में निर्बलों की शक्ति तुम।
शीघ्र चरणों में गिरेगा नम्र हो संसार जननी।।३।।

संगठन के हम पाथिक है, वीरकर्मी पुत्री मां
नित्य चढता ही रहे मां साधना का ज्वार जननी।।४।।

भगवा लहर-लहर हिन्दू प्राण

भगवा ध्वज-स्नेह, पावित्र्य तेज बरसाने वाला, भारत के विक्रम एवं वैराग्य का मूर्त रूप, हिन्दु जनमन का प्रेरणास्थान यह भगवा ध्वज। विजयी, वैभवशाली हिन्दुओं के इतिहास का साक्षी यह ध्वज हमारे जीवनादर्शों का एवं राष्ट्र का मानचिन्ह होने के कारण इसके सम्मान की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करने में अनेकों ने जीवित की सफलता मानी है।

समिति भी उसी को अपना प्रेरणास्थान, मार्गदर्शक गुरु मानती है।

'ध्वज' शब्द का अर्थ तथाआद्य स्वरूप

'ध्वजति', गच्छति, उच्छितो, भवति अर्थात् जो ऊपर जाता है, ऊर्ध्वगामी है, ऊंचा फरहता है वह ध्वजः ऐसा व्युत्पत्ति के अनुसार ध्वज शब्द का अर्थ सिद्ध होता है।

ध्वज यह चिन्ह है सम्मान का, यश का तथा आदर्श का। किसी लम्बे दण्ड को विशेष प्रतिमा बांध कर संदेश पहुँचाने, के लिए उसे खडा करना यही शायद प्राचीन काल में ध्वज का आद्य स्वरूप होगा।

प्राचीन भारत के ध्वज - वैश्विक साहित्य में ऋग्वेद का स्थान अनन्यसाधारण है। ऋग्वेद के आधार से यह स्पष्ट होता है कि भारत में भगवा (केशरिया) रंग का ध्वज ईसा पूर्व दो हजार वर्षों से प्रचलित है।

उदाहरण के लिए -

"केतुं अरुणं यजध्वे।" ऋ. 6-49-2 (अरुण-भगवा, केसरिया ध्वज का पूजन करना चाहिये।)

महाभारत, गुप्तकालीन युक्तिकल्पतरु, अपराजितपृच्छा आदि प्राचीन मध्ययुगीन ग्रन्थों में ध्वज का वर्णन प्राप्त होता है। हमारे देवताओं के भी भिन्न-भिन्न ध्वज थे ऐसे संदर्भ प्राप्त होते हैं। उदा

भगवान शिव शंकर का वृषभध्वज, श्री विष्णु का गरुडध्वज, भगवती दुर्गा का सिंहध्वज, श्री गणेश जी का कुम्भध्वज या मूषकध्वज, कामदेव मदन का मकरध्वज आदि। राजसत्ता के विकास के साथ ध्वज राजचिन्ह बन गया। महाभारत में अर्जुन का कपिध्वज, कृपाचार्य का वृषभध्वज, जयचंद्र का वराहध्वज, दुर्योधन का गजध्वज, भीष्माचार्य का ताल ध्वज भीम का सिंहध्वज इस बात को सिद्ध करते है।

प्राचीन ध्वज परंपरा में ध्वज़ का आकार या अंकित चिन्ह भले ही विभिन्न रहें किन्तु ध्वज का रंग प्रारंभ से एक रहा है। भगवा या केशरिया रंग जो भारत की प्रकृति के साथ मेल खाता है। व्युत्पत्ति के अनुसार 'भा याने तेज और 'रत' याने रममाण होना अतः भारत याने तेज में रममाण होने वाला देश। इस हमारी भूमि में अनादि काल से तेज की ज्ञान की पूजा अखंडित रूप से होती रही है। उदीयमान सूर्य का तथा अग्नि की ऊपर उठती हुयी ज्वालाओं का भगवा रंग ही हमारे भारतीय मन को मोहित करता है। ऋग्वेद से लेकर इस बात के संदर्भ मिलते है।

अश्वं अस्य केतवो रश्मयो जनाँ भ्राजन्तो अग्रयो यथा। (ऋ. 1-50-3)

उदीयमान सूर्य की किरणें तेजस्वी अग्नि की ज्वाला समान तथा फहराते ध्वज के समान दिख रही है। यहाँ ध्वज, सूर्य, किरन और प्रज्वलित अग्नि ज्वाला में स्पष्ट रूप से जो समानता दिखाई देती है उसका वर्णन किया है। अग्नि को पावक भी कहा जाता है - तेज ऐसा हो जो दूसरों को पवित्र, शुद्ध बनाता है। भारतीय परंपरा की यही विशेषता है। स्वयं पवित्र रहकर दूसरों को भी पवित्र बनाने का हमारा संकल्प है। अग्नि दाहक भी है। उससे छेडछाड करने पर उसका उग्र रूप प्रकट होता है। भारतीय स्त्री दुर्जनों के लिए दाहक बनी है यह अनेकों बार सिद्ध हुआ है।

अग्नि अर्थात् त्याग-स्वयं जलकर दूसरों का जीवन समृद्ध बनाने वाला अग्नि हिन्दु जीवन परंपरा का प्रतीक है। सात्विकता, शुद्धता, पवित्रता का तेज इतना प्रखर होता है कि उसको हाथ लगाने का साहस नहीं होता है। पवित्रता का तेज हम अधिकाधिक प्राप्त करें तब दुष्टता निष्प्रभ होगी।

अग्निज्वालाएँ वर्धिष्णु जीवनपद्धति का संकेत है अग्निज्वालाओं को अधोगामी बनाने का किसी का भी प्रयत्न आज तक सफल नहीं हुआ है। हिंन्दु तत्वज्ञान भी ऐसा ही है। उसको दबाने की कितनी भी कोशिशें करें वह कभी नष्ट नहीं होगी। इतना ही नहीं तो ऊपर ही उठेगा। यज्ञमय जीवन का दर्शन हमें अग्नि में होता है।

अथर्ववेद में भी अरुण केतु का निर्देश मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि वैदिक युग में भगवे ध्वज प्रयोग होता था। उदाहरण -

"अरुण केतुः।" (अथर्व-11-10-2)

"अरुषः केतु।" (ऋ. 6-49-2)

"अग्निः केतुः।" (ऋ. 1-503)

आगे चलकर रामायण, महाभारत काल में ध्वज भगवा ही था। यवनों को पराजित करने वाला चंद्रगुप्त मौर्य, शकों का नामों निशान मिटाने वाला सातवाहन नृपती, हूणों को भगाने वाले गुप्त सम्राट आदि ने भगवे ध्वज को साक्षी रखकर ही अतुलनीय पराक्रम किया यह तो एक ऐतिहासिक सत्य है।

ईसा की छठवीं शताब्दि में बंगाल के पाल राजा का ध्वज केसरी था। राजस्थान के राजपूत राजा भगवान एकलिंग जी के प्रसाद के रूप में भगवा ध्वज स्वीकार करनेवाले नेपाल के राजा मूल राजपूत माने जाते है। इस आधुनिक युग में स्वयं को 'हिन्दुराष्ट्र' कहनेवाला नेपाल एकमेव हिन्दुराष्ट्र है। वहां तेजस्वी भगवे ध्वज ने अपना प्राचीन तेजस्वी तथा स्वतंत्र रूप अक्षुण्ण रखा है और गतकाल के समान आज भी उत्तुंग और शान के साथ फहर रहा है। इतिहास से स्पष्ट होता है कि देवगिरि के यादव नृपों का ध्वज भगवा था तथा विजयनगर के सम्राटों का ध्वज भी भगवा ही था।

इ.स. 1565 में तालीकोट की लड़ाई हुयी। उस समय तौरिफ अपतबी नामक एक लेखक वहां उपस्थित था। उसने एक ग्रंथ लिखा है 'तबरिफ-इ-हुसेनशाह'। इस ग्रंथ में अनेक चित्र है जिनमें एक चित्र ऐसा है जिसमें राजा रामदेवराय के हाथी पर भगवा ध्वज है।

हिंन्दुपदपातशाही की स्थापना करने वाले श्री शिवाजी महाराज का ध्वज भगवा ही था। इतिहासकार चिं. वि. वैद्य ने स्पष्ट रूप से प्रमाण दिया है कि मालोजी राजा (शिवाजी के दादाजी) के समय अन्य सरदारों के ध्वज लाल, पीले आदि विविध रंग के थे। किंतु भोंसले कुल का ध्वज, भगवा ही था। शहाजी राजा (शिवाजी के पिता) भगवे ध्वज के विषय में गौरव के साथ कहते है 'स्वयं शंभुमहादेव ने गोसाई रूप में सपने में दर्शन दिया।' तब प्रसाद श्रीफल तथा अपना वस्त्र दिया। अतः सेना की ढाल, हाथी की झूल, हाथी पर लगाया निशान और घोड़े की सवारी पर रखा गया डंका निशाण भगवे रंग का किया।

ख्यातनाम अंग्रेजी इतिहासकार मनुची ने शिवाजी महाराज की आग्राभेट का तथा उनके साथ के परिवार-सेवक आदि का वर्णन किया है।

"A large elephant goes before him carrying his flag. His flag is orange and vermilian coloured, with golden decorating stamped on it."

(House of Shivaji - Shri Sarkar page 11x)

तत्पश्चात् पेशवाओं के काल में भी ध्वज भगवा ही था। पेशवाओं ने जो ध्वज अटक पार फहराया वह यही ध्वज था। भगवा ध्वज मराठों का राष्ट्र ध्वज था किन्तु 'जरी पटका' को सेनापताका के रूप में रणभूमि पर ले जाते थे।

(पेशवा दफ्तर भाग 21-163 पृ. 179 तथा भारतीय इतिहास संशोधन मंडल वर्ष 24 अंक 1)

इस प्रकर वेदकाल से अपनी संपूर्ण प्रेरणा सामर्थ्य तथा तेजस्विता से लहराता हुआ यह भगवा ध्वज

अप्रतिहत परम्परा से चलता आया है। इस ध्वज की परम्परा खंडित हुई इ. 1818 में जब पुणे नगर स्थित शनिवार बाडे पर यूनियन जैक ब्रिटन का राष्ट्र ध्वज फहराया गया।

ध्वज का स्वातंत्र्य पूर्वकालीन इतिहास

पराधीत्त भारत को अपना ध्वज नहीं रहा। किन्तु स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए जो प्रयास चल रहे थे, उसके साथ ही स्वाधीन देश का ध्वज कौनसा होगा इस विषय पर विचार मंथन शुरू हुआ। उस विचार मंथन की परिणति है आज का तिरंगा ध्वज।

भगिनी निवेदिता ने ई. 1905 में लाल या भगवे रंग का ध्वज जो पीले रंग के वज्र से अंकित था उसको भारत के राष्ट्रध्वज के रूप में पसंद किया।

मादाम कामा ने बर्लिन परिषद में (22 अगस्त 1907) तिरंगा ध्वज फहराया। हरी केसरी और लाल पट्टियों से बना यह ध्वज आठ कमल पुष्प और वंदे मातरम् अक्षरों से अंकित था। ध्वज पर सूरज और चाँद विराजमान थे।

1916 में लोकमान्य तिलक और ऐनी बेझंट ने पांच लाल तथा चार हरी पट्टियों का ध्वज बनाया। इसके बाएँ कोने में युनियन जैक, दाहिनी तरफ चांद और नीचे सप्तर्षि के सात तारे थे। कारागृह में यह ध्वज फहराया गया। 1917 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में ध्वज समिति गठित की गई। चर्चा होती रही किन्तु 1920 तक कोई निश्चित निर्णय नहीं हुआ। बाद में म. गांधीजी के आग्रह से लाल हरी तथा सफेद रंग की आड़ी पट्टियां और गहरे नीले रंग का चरखा ऐसा तिरंगा ध्वज बनाया गया।

1931 में नियुक्त ध्वज समिति ने सुझाव दिया की ध्वज केसरी रंग का होना चाहिए जिस पर नीले रंग का चरखा चित्रित किया जाए। किन्तु अंत में तिरंगी ध्वज के लाल रंग के स्थान पर केसरी रंग की पट्टी को अनुमति दी गयी। केसरीया ध्वज अस्वीकृत हुआ। इस तिरंगे ध्वज के रंग हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि जाति के सूचक माने गये। बाद में इसका स्पष्टीकरण केसरी रंग - धैर्य, सफेद रंग - सत्य शांति और हरा रंग प्रेम और विश्वास का द्योतक ऐसा किया गया। चरखे का स्थान अशोक चक्र ने लिया।

परंतु ध्वज राष्ट्र की आत्मा की उत्स्फूर्त पहचान होती है। वह किसी, प्रस्ताव से नहीं बनती। हजारो सालों की जीवनपद्धति का प्रकट रूप होती है। वेदकाल से लेकर अंग्रेजों के सत्तासीन होने तक यह भगवा ध्वज ही भारत का प्रतिनिधित्व करता रहा इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता।

राजनीतिक दृष्टि से तिरंगा ध्वज हमने माना है परंतु हमारी संस्कृति का परिचायक भगवा ध्वज ही है।

भारतीय ध्वज का एक-चिन्तनपूर्ण तत्वज्ञान

हजारों सालों के इतिहास से ध्वज के प्रति पूज्य भाव अक्षुण्ण रहा है। उसका मूलाधार है ऋषि मुनियों के सैंकड़ों सालों का तपःपूत चिंतन। "वेत्ति विद्यामविद्यां च यः स वाच्यो भगवानिति।" विद्या और अविद्या को जानने वाला भगवान कहा जाता है। विद्या अर्थात् आत्मविद्या जानने वाला भगवान और उसका ध्वज यह भगवत् ध्वज।

भारत का भगवे रंग से नाता बहुत ही निकट का है। यहां दिन का प्रारंभ होता है, केसरी रंग बिखेरने वाली अरूण रश्मियों के दर्शन से। दिन की कृतार्थता का अनुभव किया जाता है, केसरी रंग की आभा देखकर किये गये संध्यावंदन से। यहां के लोगों के जीवन में जन्म से मृत्यु तक सभी संस्कार, मंगल क्षण मनाये जाते हैं केसरी अग्नि की साक्षी से। "काषायवस्त्रं करदंडधारिणम्" आबालवृद्ध सभी का सिर संन्यासी के सामने नतमस्तक होता है। षड् विकारों पर विजय प्राप्त की, अब अधिक कुछ प्राप्त करने की आकांक्षा ही नहीं रही। ऐसी अवस्था में जीवन बिताने वाले संत कहते हैं - "मैं अब केवल परोपकार के लिये ही जीवित हूं।"

प्रारंभ से ही वैदिक आर्यों का जीवन जैसा यज्ञमय रहा, वैसा रणमय भी। उनकी यज्ञभूमि को असुरों ने सदैव रणभूमि बनायी तथा हमारी रणभूमि भी यज्ञ का ही एक रुप थी। क्योंकि यहां युद्ध होते थे केवल धर्म की रक्षा करने के लिए। राम रावण का युद्ध हो या बांगला देश के स्वातंत्र्य संघर्ष में हमारी सहायता हो, यहां का युद्ध सत्ता प्रस्थापित करने के लिए नहीं अपितु अन्याय के विरोध में किया गया प्रतिकार होता है।

यहां जनसाधारण नव वर्ष का स्वागत ध्वज फहराकर करते हैं। पंचांग में भी इस दिन का निर्देश 'ध्वजारोपणम्' इस शब्द से होता है। इस ध्वज की परम्परा उपरिचर राजा की इंद्र पर प्राप्त विजय में है। इंद्र ने समृद्धिकारक व्रत की जानकारी दी। "चैत्र शुद्ध प्रतिपदा के दिन अपने आंगन में एक वंश (बांस) का आरोपण, करके उस पर विजय ध्वज लगाओ। इंद्र का ध्वज जर्जरम् ध्वज कहलाता था। उसी नाम से मराठी में पेशवेकाल में 'जरीपटका' नाम मिला। इस प्रकार हिन्दुओं के धर्म, राजकारण एवं समाजजीवन के साथ यह ध्वज एकरूप हो गया है। राजनीति की दृष्टि से आज इस ध्वज को महत्व नहीं है। फिर भी धार्मिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में इसकी परम्परा अखंडित है। मंदिरो के शिखर पर भगवा ध्वज ही दिखाई देता है।

ध्वज की खंडित परम्परा पुनः स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, राष्ट्र सेविका समिति, विश्व हिन्दु परिषद आदि स्वयंसेवी संगठन ध्वज से प्रेरणा लेकर अपने ध्येय मार्ग पर चल रहे हैं। रामराज्य परिषद, हिन्दु महासभा, जनसंघ, भाजपा आदि हिन्दुत्ववादी राजनीतिक दल भी करते हैं। "अखिल हिन्दु-विजय-ध्वज यह हम पुनः फहरायेंगे।"

गुरोस्तु मौनं व्याख्यानम्

राष्ट्र सेविका समिति इस अखिल भारतीय स्त्री संगठन ने भगवे ध्वज की खंडित परम्परा पुनः स्थापित की, उसे गुरु मानकर। व्यक्ति कितना भी गुणवान क्यों न हो कभी परिपूर्ण नहीं होता है। अतः जिसमे भारतीय संस्कृति एवं इतिहास समाया है ऐसे इस ध्वज तत्व को ही समिति अपना गुरु मानती है। इस ध्वज का आकार, रंग, गुच्छ ही नही अपितु इसका कण-कण हमारा मार्गदर्शन करता है।

उदीयमान सूर्य तथा प्रदीप्त अग्नि ज्वालाओं जैसा ध्वज का रंग है। युग-युग से विश्व को देने के बावजूद भी किंचित भी कम न होने वाला उसका प्रकाश, दातृत्व, जीवन दृष्टि, चिरंतन वैभव तथा अक्षय ज्ञान का प्रतीक है। सूर्य के तेजोमय प्रकाश की पूर्व सूचना देने वाली ऊषा ने प्रकाशप्रिय आर्यो को मुग्ध किया इसमें क्या आश्चर्य।

अग्नि त्याग, पावित्र्य तेजस्विता, उपकारिता आदि सद्गुणों का प्रतीक है। उसको अर्पित हविर्दव्य देवों को पहुंचाने वाला यह भारत-अग्नि हमें विश्वास सत्य एवं त्याग सिखाता है। अग्नि उसको समर्पित वस्तु की अशुद्धता नष्ट करके उसको विशुद्ध रूप प्रदान करता है। अग्नि दाहक है। उसका यह गुण आर्य सती के विशुद्ध शील-चारित्र्य में दृग्गोचर होता है। ध्वज का आकार प्राचीन विशाल भारत जैसा है। उसका एक छोर ब्रह्मदेश एवं दूसरा छोर कन्या कुमारी सूचित करता है। ध्वज फहराते समय उपरि छोर छोटा तथा नीचे का बड़ा होना चाहिये। वैभवशिखर तक पहुंचने के लिये त्याग की मजबूत नीव अतीव आवश्यक है। ध्वज का नीचे का बडा छोर त्याग का तो उपरि छोटा छोर वैभव का प्रतीक है एसी हमारी धारणा है।

अनेक रेशमी धागों से गूंथे हुए ध्वज के फुंदे संगठन तथा सूर्य किरण एवं अग्नि ज्वाला के प्रतीक है। उससे प्रतीत होता है कि हमारा संगठन अग्निज्वाला समान सदैव उन्नतिसाधक तथा सूर्य किरणों की भांति स्वबांधवों के लिये उपकारक, संजीवक और तेजस्वी होना चाहिए। ध्वज दंड राष्ट्र की अस्मिता एवं स्वाभिमान का मानो प्रतीक है।

विद्याध्ययन समाप्त करने के बाद गुरु को गुरुदक्षिणा अर्पण करने की हमारी परम्परा है। इसी कारण गुरुपौर्णिमा के शुभ पर्व पर भगवे ध्वज के

सामने हम श्रद्धा से जो गुरुदक्षिणा समर्पित करते उसी पर समिति की अर्थव्यवस्था आधारित है।

वर्ष प्रतिपदा के दिन घर-घर पर भगवा ध्वज फहराने का आग्रह समिति करती है। अपने मान बिन्दुओं, श्रद्धा स्थानों पर हुए आघातों का प्रतिकार करने का सामर्थ्य प्राप्त करना आवश्यक है। प्राचीन काल में शक हूणों ने भारत पर आक्रमण कर भारत को परास्त किया। प्रतिवर्ष एक सहस्त्र सुंदर अविवाहित युवतियों की मांग की तथा इस राष्ट्र के मान चिन्ह 'भगवे ध्वज' पर पाबंदी लगाई। ध्वज के बदले स्त्री की साड़ी एवं कंचुकी की गुढी उभारने को बाध्य किया। इन हूणों को पराजित कर भगवा ध्वज सन्मान के साथ फहराया राजा शालिवाहन ने। वही दिन है वर्ष प्रतिपदा।

हमारे अपमान की स्मृति मिटाकर, अपने आत्मगौरव की भावना जगाने के लिए राष्ट्र सेविका समिति कार्य कर रही है।

घर-घर में पूजा घरों में छोटे-छोटे ध्वज रखकर उनकी पूजा करना देश की भावी पीढ़ी तक इस मानबिंदू सन्मान का संस्कार करना, यही इस उपक्रम का उद्देश्य है। किसी अच्छी बात का स्वीकार एक स्त्री करती है तो सारे परिवार तक वह पहुंचती है।

परिवार के सदस्यों के मन पर इस प्राचीन राष्ट्रीय भावचिन्ह की मुद्रा अंकित करना माता के लिये सरल है। रंग भी संस्कार करता है। घर में जो भी आता जाता है उसके मन को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहता।

यह ध्वज है अभिमान हमारा।
तन मन जीवन प्राण हमारा,
अपनी गति मति का ध्रुवतारा
मिट जायें हम, अमिट रहे यह अमरण प्रण ठहरे।

भगवद् ध्वज की जय हो

भारत माँ के मानचित्र, इस भगवद्-ध्वज की जय हो।
पुण्य-प्रसूत शाश्वत-पवित्र इस भगवद्-ध्वज की जय हो।।धृ।।
युग - युग से इससे सीखा है त्याग और बलिदान।
सारी संसृति स्नेह-सिक्त हो ऐसा सुरभित ज्ञान।
मानवता के परम-मित्र इस भगवद्-ध्वज की जय हो।।1।।
जन-सेवा निष्काम यज्ञ की सत्प्रेरणा दिलाता।
शुद्ध - बुद्ध स्वातंत्र्य शिखर पर चढ़ना हमें सिखाता।
चक्रवर्ति चित्रिता चरित्रा, इस भगवद्-ध्वज की जय हो।।2।।
हिमगिरि इसका दण्ड परम-प्रिय भगवा इसकी काया।
द्वैताद्वैत दर्शनों की ही शिक्षा लेकर आया।
सौरभ देता अत्र-तत्र, इस भगवे-ध्वज की जय हो।।3।।
जिसके नीचे ब्रह्म प्रान्त है, ऊपर कन्या-कुमारी
मध्ये विलसित बंग वारिधि जिसकी शोभा न्यारी।
गंगा यमुना नद ब्रह्मपुत्र, इस भगवद्-ध्वज की जय हो।।4।।
इसके नीचे राम-कृष्ण ने दानव दल संहारा।
काली, दुर्गा, लक्ष्मी ने भी दुश्मन को ललकारा।
समिति-कार्य प्रेरक, विचित्र, इस भगवद्-ध्वज की जय हो।5।।

हिन्दुत्व

किसी भी व्यक्ति, समाज की या राष्ट्र की अपनी एक विशेषता होती है जिससे वह पहचाना जाता है। उसका अस्तित्व भी उसीसे जुड़ा हुआ रहता है। भारत की भी अपनी पहचान है हिन्दुत्व। हिन्दुत्व अर्थात् हिन्दु होने का भाव। विश्व में आज कुछ शब्द विवाद्य बने है उसमेंसे एक प्रमुख शब्द है हिन्दु-हिन्दुत्व। कारण इस संकल्पना के बारे में गलत धारणा है। वह अज्ञान के कारण है ऐसा भी नही कह सकते। ऐसी अनुभूति होती है कि यह धारणा जानबूझकर बना ली गयी है वह भी भारत के बाहर के लोगोसे अधिक उनके रंग से रंगे भारतीयों ने बनायी है। इस संकल्पना की कल्पना स्पष्ट होने पर उसके बारे में अभियान जगेगा एक प्रबल शक्ति केन्द्र निर्माण होगा जिसका प्रभाव संपूर्ण विश्व की सोच में विधायक परिवर्तन लायेगा और पश्चिमी भौतिक प्रभाव को चुनौती देगा इस संभावना से इसके प्रति अनास्था उदासीनता तथा हीनता का भाव निर्माण करने के अभियान में पश्चिम के लोग स्वार्थपूर्ति के लिये जाने अनजाने सहयोग दे रहे है। हिन्दु 'धर्म' का अर्थ सम्प्रदाय जैसा ही करने के कारण अनर्थ परम्परा निर्माण हुई है।

हिन्दुत्व प्राणशक्ति

भारत की प्राणशक्ति के रूप में विद्यमान हिन्दुत्व के बारे में अति प्राचीन काल के इतिहास, साहित्य में निर्देश मिलते है कि उन दिनो और भी दूसरा सम्प्रदाय नही था। एक से अनेक होने पर ही, प्रत्येक की पहचान होने के लिये अलग-अलग नाम देना पडता है। इस नाम के साथ उस व्यक्ति के गुण भी जुडते जाते है वही उसकी पहचान बनती है - वही उसका अस्तित्व होता है। जैसे 'श्रीराम' नाम का उच्चारण करते ही कोदंडधारी राम, उसके अनेक गुणों के साथ हमारे सामने साकार होता है वैसे ही 'हिन्दुत्व' शब्द के बारे में है। इसके बारे में जब संभ्रम निर्माण होता है तब संकट खड़ा होता है। आज आवश्यकता है 'हिन्दु' संज्ञा का समुचित अर्थ समझने की समझाने की भी।

भारत में हिन्दु एवं धर्म समानार्थी शब्द बने है। धर्म की संकल्पना पश्चिमी देशों में नहीं है कारण सभी देश भौतिकता को अपने जीवन का आधार मानते है और हम अध्यात्मिकता को। इसलिये अंग्रेजी में अनुवाद करते समय सम्प्रदाय को धर्म के समकक्ष माना गया। सम्प्रदाय का संबंध उपासनापद्धति से है जहां एक ही प्रेषित, एक ही ग्रंथ, एक ही उपासना-पद्धति का एकांतिक आग्रह होता है। धर्म शब्द जीवन मूल्यों से - कर्तव्य भावना से संबद्ध है इसलिये अधिक उदार है। हमारी धारणा है कि सत्य ईश्वर है और उसके अनेक रूप है, अनेक नाम है 'एक सत् विप्राः बहुधा वदन्ति', 'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति' ऐसी हमारी मान्यता है। यह सर्वसमावेशकता ही हिन्दुत्व की विशेषता है।

सहिष्णुता, उदारता यह हिन्दुत्व के [illegible] पहलू है। सहिष्णुता, असहिष्णुता के बारे में एक महानुभाव ने कहा है कि सहिष्णुता का परिचायक अक्षर है 'भी' और असहिष्णुता का 'ही'। हमारा ईश्वर, हमारा तत्वज्ञान, जीवनपद्धति श्रेष्ठ है तुम्हारी भी है, यह सहिष्णुता है और हमारा ही ईश्वर श्रेष्ठ है तत्वज्ञान श्रेष्ठ है, वह नही मानने वालें को जीवित रहने का अधिकार नही, उसको खत्म करना ही पुण्य कार्य है यह है असहिष्णुता। हमारी 'भी' वृत्ति ने यहाँ अनेकों को आश्रय दिया, सम्मान पूर्वक अपना लिया। ज्यू लोगों का अनुभव अनोखा था। इस्रायल बनने के पश्चात् भारत छोड़ते समय उन्होंने कहा कि भारत एकमेव देश था जहाँ

उनका अपमान, शोषण, उपहास नही हुआ। इससे भी पूर्वकाल मे पारसी लोग भारत में आयें और दूध में चीनी घुल जाती है वैसेही यहाँके समाजजीवन में घुल मिल गये। कभी भी हिन्दू-पारसी संघर्ष या ज्यू-हिंदू संघर्ष नही हुआ है। फिर भी आज 'हिन्दु' कहना साम्प्रदायिक, संकीर्ण हो गया। हिन्दु संकीर्ण, असहिष्णु होता तो ज्यू, पारसी के साथ भी झगड़ता। देशविभाजन के पश्चात् एक भी मुस्लिम यहाँ जीवित नही दिखायी देता। पाकिस्तान, बंगलादेश में हिंदुओं का घटता एवं भारत में मुस्लिमों का बढ़ता प्रतिशत चौकाने वाला है। भारत में हिन्दु असहिष्णु होता तो किसी गैर हिन्दु को राष्ट्रपति जैसा सर्वश्रेष्ठ पद दो तीन बार नही देता। 'ही' वाली वृत्ति के कारण सहजीवन संभव नही होता। इसका हम नित्य अनुभव कर रहे है। यहाँ रहना है तो 'भी' वृत्ति के साथ रहना है ऐसा आग्रही हिन्दु बनना आवश्यक है। 'अमृतस्य पुत्राः वयम्' अमृततत्त्व की हम सब संतान, फिर कौन श्रेष्ठ-कौन कनिष्ठ? उस अमृततत्त्व का स्फुरण हमारे में है, हम दीन दुर्बल, स्वत्वविहीन, आत्मविश्वासहीन कैसे होंगे? तेजस्विता, पौरुष की अनुभूति और उसका उपयोग सज्जन शक्ति के संरक्षण के लिये, दुष्टता के विनाश के लिए ही होगा-साधुरक्षण, खलनिर्दालन यह हमारा ब्रीद है।

हिन्दु की परिभाषा

'हीनं' दूत्तयत्येव - (मेरुतंत्र)
हिनास्ति तपसा पापान् - (पारिजात)
हिंसया दूयते यस्मात्
हिनस्ति दुष्टान् दुरितानि
हिमं धुनोति
हिंदुर्दुष्टो न भवति नानार्यो न विदूषकः
सद्धर्मपालको विद्वान् श्रौतधर्मपरायगः।

ऐसे अनेक संस्कृत वचन उपलब्ध है केवल गुणो का, नीति मूल्यों का ही निर्देश है - हीनता नष्ट करने वाला, (किसी का शरीर नष्ट करना केवल यही हिंसा नहीं अपितु स्वार्थ के लिए दुसरों को पीड़ा देना तथा दूसरों को दुख देने मे ही सुख पाना यह भी शास्त्रानुसार हिंसा ही मानी गयी है) दुष्टता, दुष्प्रवृत्ति दूर करने वाला, जड़तारूपी (अज्ञान) हिम को द्रवित या समाप्त करने वाला, हिन्दु कभी दुष्ट अनार्य एवं विदूषक नही हो सकता, सद्धर्म का पालन करने वाला, विद्वान वेदप्रणीत मार्ग से चलने वाला व्यक्ति ही हिन्दु है।

भारत में आने वाले लोग भूमि मार्ग से आने पर प्रायः वायव्य सीमा से आते थे। उनको मार्ग में पहले सिंधु नदी लगती थी। सिंधु नदी के उस पार का देश सिंधुस्थान-हिन्दुस्थान-वहाँ रहने वाला हिन्दु ऐसा कहा जाने लगा, वही नाम रूढ हुआ। परंतु उससे भी यह शब्द साहित्य में कहीं-कहीं दिखाई देता है। भारत में आनेवाला प्रवासी ह्यूएनत्संग लिखता है कि भारत इन्तु नाम सें चीन में जाना-जाता था। इन्तु-इन्दु चंद्र। शीत आल्हाददायक चांदनी बरसाने वाला प्रकाशकुंज। भारत के क्रांतदर्शी ऋषिमुनियों ने जीवन के अंतिम सत्य की खोज की। विश्व को अपने ज्ञान प्रकाश से आलोकित किया। अपने जीवन की एक पद्धति विकसित की। उसी को लोग 'हिन्दु' जीवनपद्धति के रूप में जानने लगे। अपने नित्य चिंतन के कारण उनका स्वरूप प्रवाही रहा। पुराना ही अच्छा है, नया खराब ही है ऐसी एकान्तिक दृष्टि न होने के कारण परिस्थिति से सुसंगत, परंतु स्थायी मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए नये का स्वीकार करने की हमारी मानसिकता है। ग्रहणशीलता यह हिन्दुत्व की एक और विशेषता है।

श्री अरविन्दो कहते है कि 'हिन्दुत्व में भौतिकता पर विजय प्राप्त करने की क्षमता है। हिन्दुत्व ही हिन्दुस्थान की राष्ट्रीयता है। वह नष्ट होने पर भारत अस्तित्व रहित होगा। ऐनी बेझंट ने कहा है कि 'हिंदुत्व भारत की जड है। उसका जैसा-जैसा चिंतन करते जायेंगे उसका अधिकाधिक महत्व ध्यान में आयेगा। भारत से हिन्दुत्व की जड़े उखड़ेगी तो विश्व में इस श्रेष्ठ जीवन पद्धति का आधार ही नष्ट होगा। हिन्दुत्व यहाँ के रोम-राम में बसा है।'

स्वा. वीर सावरकर कहते है, 'हिन्दुत्व ही एक मात्र शब्द था जो हमारे राष्ट्र के मेरुदंड के रूप में अस्तित्वमान था। हिन्दुत्व के इन पुनीत भावनाओं के परिणामस्वरूप ही कश्मीर के ब्राह्मणो की व्यथासे मद्रास के नागर का हृदय भी हाहाःकार कर उठता था। हिन्दुजन हिन्दुत्व के रक्षा के लिये ही प्राण हथेलीयोंपर लेकर लढते थे। हमारी माताएँ हिंदुओंपर होनेवाले अत्याचारोंपर आँसू बहाती थी तो उनकी विजय पर गर्व करती थी। अर्थात् राष्ट्र के रूप में ही हिन्दुत्वभाव प्रकट होता था। हमारी विकसित धारा ने ही हमें सिखाया कि भरण-पोषण माँ करती है। अतः जहाँ-जहाँ से हमारा भरण-पोषण होता है वह हमारी माँ है यह हमारी धारणा बनती गयी। 'माता पृथिवि, पुत्रोऽहं पृथ्विव्याम्ः' अतः धरती हमारे लिए जमीनका टुकडा न रहकर धरतीमाता भारतमाता बनी, गंगाजल केवल पानी नही-तीर्थ बना, गाय केवल चार पैरवाला पशु नहीं, गोमाता बनी। यही कारण था कि धर्मनिरपेक्षताका डिंडिमी बजानेवाले, हिन्दुत्व से कोई रिश्ता नही माननेवाले हमारे पूर्व प्रधान मंत्री राजीव गांधी ने विदेशों में भारत महोत्सव किया तो वृक्षारोपण किया, प्रोक्षण के लिये अन्य जल नहीं गंगाजल का ही उपयोग किया, मंगल स्वर के लिये यहाँ से मंगल वाद्यवादक बुलाये, दीप प्रज्वलन किया। मुख से हिंदुत्वकी आलोचना, निंदा परंतु अंतर्मन का हिन्दु भाव व्यवहार में प्रकट हुआ। अतः भगवान को मानने वाला, नही मानने वाला, मंदिरो में जाने वाला, नही जाने वाला हर कोई हिन्दु है। यह आत्मा का भाव है, इसीलिये पूजा पद्धति उपासना पद्धति से जकड़ा नहीं है। प. पू. चन्द्रशेखर सरस्वती स्वामीजी के मठ में कुछ ईसाई बंधु गये। वहा हिन्दु जीवन पद्धति का अनुभव लिया, उसका साक्षात् स्वरूप देखा तब वे इतने प्रभावित हुए कि हिन्दु धर्म स्वीकारने का मन हुआ। स्वामी जी को अपना मानस बताया तब पूज्यपाद स्वामीजी ने कहा कि इस प्रकार के परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है कारण उन्होंने हिन्दु जीवनमूल्य प्रत्यक्ष व्यवहार में लाएँ है। हिन्दु परम्परा, श्रद्धास्थानों का सम्मान करना स्वीकार किया है अतः ईसा की पूजा करते हुए भी वे हिन्दु है - हिन्दु इसाई यह प्रयोग इसीलिये संभव है कि हिन्दुत्व भौतिक विचार नहीं आध्यात्मिक अवस्था है। केवल जन्म से हिन्दु होना पर्याप्त नहीं, मन से, कर्म से हिन्दु होना महत्व का है।

लोकमान्य तिलक, स्वातंत्र्य वीर सावरकर, स्वामी विवेकानंद आदि आधुनिक महर्षिओं ने भी हिन्दुत्व की अवधारणा स्पष्ट करते हुए उपास्यानां अनियमः (उपासना पद्धति का अनाग्रह) भारत को मातृभू-पितृभू पुण्यभू मानना, उसकी परंपराओं का आदर करना, भारत के गौरव से गौरवान्वित होना, अपमान से अपमानित होना इतनी एकरूपता, साधना आदि बिन्दु रखे है। स्वामीजी ने अपने लाहौर के भाषण में कहा है कि 'हिन्दु शब्द का उच्चारण होते ही बिजली जैसा शक्ति प्रवाह शरीर में संचारित होगा तब ही वह सच्चा हिन्दु होगा। कौनसी भी भाषा बोलने वाला, कौनसे भी देश में रहनेवाले हिन्दु के बारे में ममत्वभाव हो। किसी भी हिन्दु के सुखदुख के साथ समरस होना ही हिन्दुत्व का लक्षण है। महात्मा गांधीजी ने भी माना था, हिन्दुत्व अर्थात् सत्य की सतत खोज। उदासीनता हटाकर यह प्रकिया जारी रहने के कारण तेजस्वी बनकर हिन्दुत्व सारे विश्व में प्रकाशमान होगा। अर्नाल्ड टायनबी जैसे विचारक ने भी स्पष्टता से प्रतिपादन किया है कि बीसवी शताब्दी के अन्त में सारे विश्व में संभ्रमावस्था अव्यवस्था निर्माण होने वाली है। तब उससे संवारने की क्षमता विश्व के एक ही तत्त्वज्ञान मे है वह है हिन्दु। उनके शब्द है-

Shri Ramkrishna's message was unique in being expressed in action. The message itself was the perenial message of Hinduism.

"Today we are still living in this transitional chapter of the worlds history but it is already being clear that a chapter which had a Western beginning will have to have an

Indian ending if it is not to end in, self destruction of human race. In the present age the world has been united on the material plane by Western technology. But this Western skill has not only anhilated distance, it has armed the peoples of the world with weapons of devastating power at a time when they have been brought to point-blank range of each other with yet having learnt to know and love each other. At this supremely dangerous moment in human history, the only way of salvation for mankind is an Indian way.

वसुधैव कुटुम्बकम्

हिन्दुत्व-हिन्दु की अवधारणा में वसुंधैव कुटुम्बकम् वृत्ति का महत्व है। आज यातायात व दूर संचार यंत्रणा के कारण किलोमीटर की दूरी तेजी से कम हो रही है परंतु अनेक भौतिक उपलब्धियों के बावजूद भी कही अपूर्णता का आभास है। पूर्णता केवल भारत से, उसके अध्यात्म से ही प्राप्त हो सकती है यह धारणा बनना प्रारंभ हुआ है। व्यक्तिनिष्ठता के कारण परिवार बिखर रहे है। भारत का 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धांत पुनः अंकुरित हो रहा है। स्नेह, सुरक्षितता परिवार में ही मिल सकती है। सुसंस्कृतता के बिना व्यक्तिगत परिवार भी नहीं बन पाता है तो विश्व कुटुम्ब कैसे बनेगा?

कुटुम्बसंकल्पना के कारण ही अंगांगी भाव, परस्परावलंबिता का भाव पुष्ट होगा तभी 'सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु का संस्कार हो सकेगा। हिन्दुत्व की यही विशेषता समझना, उसके प्रति गौरव की भावना भावी पीढ़ी में संक्रमित करना यह महत्वपूर्ण दायित्व हिन्दुओं को ही निभाना है।

शापादपि-शरादपि

ब्रह्मतेज व क्षात्रतेज का सम्पूर्ण सहयोग राष्ट्रजीवन समृद्ध बनाता है। बुद्धि या बल, जिससे चाहो उससे हम जीत सकते है। शापादपि-शरादपि की भूमिका मायने रखती है। बॅ. जीना की चुनौती भरे आव्हान को स्वा. वीर सावरकरजी ने उत्तर दिया था। जीना ने कहा था, 'हिन्दुओं, हमसे बचके रहो। भारत से हमें बाहर निकाल दिया जायेगा तो हमें आश्रय देनेवाले अनेक देश है, परंतु अगर आपको भारत से हकेल दिया तो दुनिया में आपको अपनाने वाला कोई देश नहीं है और ध्यान में रखो हम शेर और सिंह है।' स्वत्वविस्मृत हिन्दु के मन में घबराहट निर्माण करने वाला यह विधान था। स्वा. वीर सावरकर जैसे तेजोमूर्ति यह कैसे सह पाते? उन्होंने बॅ. जीना को उत्तर दिया - 'जिना-साहब, आपका बहुत-बहुत अभिनंदन। हमारा सिद्धान्त हिन्दुओं का हिन्दुस्थान का आपने पुरजोर समर्थन किया है। दूसरी बात आपके शेर या सिंह होने की। हम एकदम स्वीकार करते है। परंतु याद रखो, हम मनुष्य है - ऐसे मनुष्य कि जिनके हाथ में चाबुक है और चाबुक के इशारों पर शेर, सिंहो को नचाना जानते है।' सहिष्णुता और समर्थता, विक्रम और वैराग्य दोनों से विजयी होनेकी आकांक्षा रगरग में भरना चाहिए। 'रग-रग हिन्दु मेरा परिचय को' हमारा पक्ष धर्म का है - 'यतो धर्म स्ततो जयः' का स्थायी मानस हमारा है। इसीलिये हिंदुत्व की विजय राजनीतिक सत्ताप्राप्ति की लालसा नही रही अपि विश्वशांति हमारा ध्येय रहा है।

हिन्दु एक जीवन पद्धति

राष्ट्र को परिभाषित करनेवाली भौगोलिक (देश) राजनीतिक (राज्य) अवधारणाओं से अलग ऐसी आध्यात्मिक, सांस्कृतिक (राष्ट्र) अवधारणा हमारी है जो उपर्युक्त विवेचनों से प्रकट होती है - इस राष्ट्र की परम्परा को, अस्मिता को, गरिमा को गौरवान्वित रखने वाले अनेक महानुभाव कौन थे? श्रीराम, श्रीकृष्ण से लेकर इस देश के लिये अपना सर्वस्व लुटाने वाले कौन थे? उनके मन में कौन सी विचारधारा के प्रति प्रेम था? बाहर से यहाँ संस्कृति का अध्ययन करने के लिये अनेक लोग आये वह कौन सी संस्कृति है? एकमेव उत्तर है हिन्दु! हिन्दु! हिन्दु! यह एक सम्प्रदाय

नही जीवन पद्धति है। यह हमारी मान्यता अब सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने दि. 11 दिसम्बर 95 के निर्णयपत्रक में मान्य की है। उनके निर्णय के कुछ **प्रमुख बिन्दु** -

1) धर्मपंथी बीज की कसौटिया हिन्दु धर्म को लागू नहीं होंगी।

2) हिन्दुत्व का कोई संकीर्ण अर्थ समझना आवश्यक नहीं है। यह तो भारतीय जन की जीवनशैली है।

3) हिन्दुत्व का प्रयोग-किसी अन्य जातिपंथ के प्रति आक्रमण भाव, वैरभाव या असहिष्णुता का सूचक नहीं है।

हिंदुत्व-सामंजस्य करने वाली योजना

अतः हिंदुत्व को अन्य भौतिकतावादी पंथो के समकक्ष रखना गलत है। राष्ट्रीय भाव जागरण के लिये यह एक सर्व समावेशक, वैश्विक, ग्रहणशीलता युक्त, सामंजस्य करनेवाली योजना है। अतः हम हिन्दु है यह कहने पर संकीर्ण, हठधर्मी या अन्य मतावलंबियो के विरोधी हो नही सकतें। हमारे राष्ट्र की आत्मा, उसकी पहचान हिन्दु ही है। हिन्दु राष्ट्र की घोषणा इसी कारण सर्व आश्वासक सर्व हितकारी सिद्ध होगी। हिन्दुओं का ही दायित्व है कि अपनी गौरवशाली राष्ट्रीयता का, संस्कृति का परिचय अपने व्यवहार से दें। हिन्दुत्व एवं राष्ट्रीयत्व एकरूप है यह उसीसे पुनः उजागर होगा।

हिंदु जगे देश जगे

हिंदु जगे देश जगे स्वाभिमान संकल्प जगे।
सत्यधर्म की विजय सुनिश्चित रोम-रोम हुंकार जगे।।धृ।।

स्वर्णिम युग इतिहास जगे, निजगौरव विश्वास जगे।
शाश्वत जीवन मूल्य प्रतिष्ठित, धरती और आकाश जगे।।1।।

बंधु-बंधु मे प्यार जगे, एक लहु की धार जगे।
एक देश एक संस्कृति, स्वकर्तव्य विचार जगे।।2।।

व्यक्ति-व्यक्ति में राम जगे, नीति, निपुण घनश्याम जगे।
पावन धावन धर्मप्रेरणा, ज्योतिः पुंज अविराम जगे।।3।।

असुर मात्र का काल जगे, रणचण्डी विकराल जगे।
शंकर बन प्रलयंकर नाचे, डमरु तांडव ताल जगे।।4।।

एकचालिकानुवर्तित्व

एकचालिकानुवर्तित्व यह एक विचारविनिमयात्मक पद्धति है। प्रेमभावनापर आधारित अनुशासनपद्धति है। भारतीय संस्कारों के साथ मेल रखनेवाली, व्यक्तिविकास को अवसर देनेवाली, समर्पित जीवन का पाठ सिखानेवाली एक कार्यपद्धति है। यह कुशल नेतृत्व की परंपरा निर्माण करनेवाले संगठनशास्त्र पर आधारित है।

जलचक्र - यह पद्धति चलचक्र के समान है। धरती का पानी सूर्य किरणों के द्वारा बाष्प में परिवर्तित होता है। वह शुद्ध होकर मेघ रूप पाता है और आकाश में समाहित होता है। जहांसे वर्षा का रूप लेकर पुनः धरती पर आता है। इसी प्रकार सेविकाओं के विचार निकटतम अधिकारी द्वारा ऊपर निर्देशित श्रृंखला द्वारा केन्द्र तक पहुंचते है जहां उनका संस्करण, शुद्धिकरण किया जाता है और केन्द्र से आदेश के रूप में प्रत्येक शाखा तक आते है। जलचक्र में शीत वायुमण्डल को स्थान है, वही स्थान इस विचार चक्र में अधिकारियों के स्नेहमय, विवेक प्रेरित, कर्तव्य कठोर मार्गदर्शन का होता है।

जब किसी विषय पर चर्चा होती है तब अपने-अपने विचार प्रकट किये जाते है। परंतु जब विवेकपूर्ण निर्णय लिया जाता है तब उसका पालन अनिवार्य हो जाता है। लोकतंत्र की पद्धति से यह पद्धति मिलती जुलती है। सेविकाओं की सूचनाओं पर हरेक स्तर की पदाधिकारी विचार करती है और अपने सुझाव के साथ अपने ज्येष्ठों को भेजती है। स्वाभाविक ही निर्णयप्रक्रिया विकसित होकर गुणवान, निष्ठावान, निस्वार्थ नेतृत्व निर्माण होता है। समिति में अधिकार पद प्राप्त होने का अर्थ है अधिकाधिक कार्यकरने हेतु प्रस्तुत होना।

इस पद्धति से कार्यशरण व्यक्तित्व निर्माण होता है। ध्येय पर अविचल निष्ठा रखकर कार्य के लिये समर्पण भाव उत्पन्न होता है। सत्ता स्पर्धा तथा कटुता निर्माण होने का संभव ही नही रहता। शीघ्र निर्णय और कर्तव्यतत्परता द्वारा सामंजस्य भाव से आज्ञापालन सहजता से होता है। स्वयंशासित सेविकाओं की संख्या और प्रभाव बढता रहता है। ज्येष्ठ अधिकारी आज्ञापालन स्वयं करती है और यह प्रत्यक्ष व्यवहार सेविकाओं को अनुशासित करता है।

सर्वश्रेष्ठ अधिकारी भी सेविकाओं की कर्तृत्वशक्ति, निष्ठा, सामर्थ्य, क्षमता पर विश्वास रखकर ही निर्णय लेती है। अतः परस्पर स्नेह, विश्वास के साथ कार्य आगे बढता है। समर्थ, सक्षम कार्यकर्ताओं के समर्थ नेतृत्व के मार्गदर्शन से कार्य का विस्तार गुणाकार पद्धतिसे होता है।

निर्णय क्रियान्वयित करते समय उसका उद्देश्य ध्यान में रखते हुए स्थानिक क्षमता, सुविधा का विचार किया जाता है। अतः वह सहजता से होता है। सेविकाओं के विविध कलागुण, नेतृत्वक्षमता, चिंतनशीलता संपर्क कुशलता का विकास स्वाभाविक रूप से दिखाई देता है। इस विकसित क्षमता को ध्यान में लेकर और एक छोटासा लक्ष्य सामने रखा जाता है। वह साध्य करते हुए सेविकाओं के विकास के साथ-साथ कार्य भी बढता रहता है - अपने नेतृत्व पर विश्वास, श्रद्धा, निष्ठा भी बढती जाती है। आवश्यकतावश अपने विचार दृढता से प्रकट करने की कुशलता प्रकट होती है। अनुयायो और नेता में सामंजस्य, स्वयंशासन, अनुयायियों द्वारा तत्परता से आज्ञापालन, कार्यकर्ता, नेता और कार्य का होनेवाला उत्तरोत्तर सुनियोजित विकास यह एकचालिकानुवर्तित्व की विशेषता है।

स्त्री - राष्ट्र की आधार शक्ति

राष्ट्र की प्रतिष्ठा, गरिमा उसकी भौतिक समृद्धि पर नहीं अपितु उस राष्ट्र के नागरिकों की सुसंस्कृतता, सच्चरित्रता पर निर्भर होती है। इसका माध्यम है माता या मातृसदृश स्त्री। अतः राष्ट्र निर्माण में उसका स्थान गौरवपूर्ण -महत्त्वपूर्ण है। भावी जीवन की नीव माँ ही रखती है क्योंकि बालकों को उसका ही सान्निध्य अधिक प्राप्त होता है। किसी भी भवन की मजबूती, स्थिरता उसकी नींव की मजबूती पर निर्भर होती है। परंतु दृष्टिपथ में आता है भवन नींव नहीं। नीव के पत्थरों की वह आकांक्षा भी नहीं होती है परंतु परखकुशल व्यक्ति पहचानता है। यह परखशक्ति अधिकतम लोगों में आनी चाहिए तो ही नीव के पत्थरों की उपेक्षा नहीं होगी। एक पुराना मराठी गीत है 'असू आम्ही सुखाने पत्थर पायातील, मंदिर उभविणे हेय आमुचे शील!' अर्थात् नींव के पत्थर बनने में हमें आनंद है। मंदिर-निर्माण यही हमारा शील है। शील स्थायी भाव है, स्वभाव है। बिना प्रयत्न अपने आप सहज होने वाली क्रिया स्वभाव होता है। माँ का संस्कार देना ऐसा ही सहज स्वभाव है। इसमें कमी आती है तो नींव हिलती है - राष्ट्रमंदिर हिलने लगता है - जैसे भूचाल आया है।

स्त्री चेतना स्तंभ

इसीलिये कहा जाता है कि स्त्री संस्कृति की राष्ट्र भवन की आधारस्तंभ है। चेतना स्तंभ है। हिन्दु स्त्री ने अपने प्राणों की ऊर्जा से संस्कृति के लोकपावन प्रवाह को अमर और अक्षुण्ण बनाये रखा है। उसका अस्तित्व उज्वल बनाकर उसे स्थायित्व प्रदान करने में उसका अनमोल योगदान है। संस्कृति के पौधे को अपने प्राणों के रस से सींचा है और समय आने पर उसके लिये अपने प्राण भी न्यौछावर किये है।

माँ संस्कारों का भंडार

माता से बालक अनजाने में ही बहुत कुछ सिखता है। सीखने वाला और सिखाने वाला दोनों को ही सीखने- सिखाने की प्रक्रिया की कल्पना नहीं है। माँ बालक के साथ बात करती है। बालक उसे देखकर भूतदया सीखता है। मृदुता से वह कुत्ता, बिल्ली, गाय को प्यार से खिलाती है। बालक को भोजन खिलाते समय वह कौर कव्वे का, चिड़िया का, बिल्ली मौसी का ऐसी बात बताती है। श्याम को तुलसी के सामने दीप जलाकर 'दुष्ट बुद्धि विनाशाय, दीपज्योति नमोऽस्तुते' कहती है। कभी चंद्रमा को दिखाकर 'चंदा मामा' है ऐसा बताती है। कभी संतों की वीर पुरुषों की कहानियां बताती है और उसके मन में पशुदया, पेड़पौधों के प्रति निसर्ग के प्रति आत्मीयता, शौर्य, त्याग आदि के संस्कार देती है। उस आयु में बालक का भाव विश्व माँ में ही व्याप्त है। भगवान से भी अधिक श्रद्धा माँ के प्रति रहती है। उसके द्वारा इस आयु में दिये गये संस्कार शाश्वत होते है। इसी आयु में उसको ज्ञान, बुद्धि और शक्ति मिलती है। कारण माँ अज्ञान का पटल अत्यंत कोमलता से हटाती है। भगवान श्रीकृष्ण-अर्जुन का चित्र देखकर प्रश्न पूछता है बालक। देवी भुवनेश्वरी जैसी माँ - "तुम्हें सारथी बनना है तो ऐसे सारथी बनो।" यह संस्कार देती है। 'प्रसाद बांटना है। बॉटकर खाओ' का भाव जगा सकती है। भातृप्रेम, देशप्रेम, सृष्टिप्रेम, परमेष्टिप्रेम की सीढ़िया बालक माँ के ही मार्गदर्शन से चढना सीखता है।

संस्कृति की अभिरक्षिका

माता केवल अपने घर की नहीं अपितु अपने सम्पूर्ण समाज की संस्कृति की अभिरक्षिका एवं सर्वश्रेष्ठ सुरक्षा केन्द्र है। मानवीय जीवनमूल्यों की वह पौधशाला

है। व्यक्ति और परिवार की धात्री है। आदर्श माता ही आदर्श संतान निर्माण कर सकती है। माँ या माँ जैसी कोई स्त्री इसीलिए संस्कारित होना आवश्यक है। वह स्त्री कन्या, भगिनी, पत्नी भी हो सकती है जिनका सहवास मातृभाव से परिवारजनों को प्राप्त होता है। कौन सी भी अवस्था हो स्त्री का स्थायी भाव मातृत्व ही है। माँ के माध्यम से ही उसे बाह्य विश्व का परिचय होता है। हम अपने कमरे की खिड़की से बाहर देखते है। खिडकी जितनी बड़ी है उतना बड़ा बाहर का दृश्य दिखाई देगा। उसकी काच अगर धुंधली-मैली है तो हमे वैसी ही दिखेगा। सृष्टि का स्पष्ट, एकात्म मनोरम रूप का दर्शन खिड़की पर निर्भर है इसीलिए उसका महत्व है। माँ की सोच की उदारता, निष्ठा, स्पष्टता जितनी होगी उतने ही बालक को संस्कार होगा यह बात निश्चित।

गृहिणी अपने रसोई घर में अनेक डिब्बों में से मनचाही चीज निकाल कर योग्य मात्रा में खाद्य पदार्थों में डालती है वह स्वाद बनता है। वैसे ही बालक का जीवन सुंदर सुघड़ बनाने के लिए उसके मन में क्या कब डालना है यह भी वह जानती है - जानना चाहिए। अपना भाई, पिता, बालक, पति के चेहरे की एक-एक रेखा वह पहचानती है। जूते उतारना, बस्ता रखना, दरवाजा खोलना-बंद करना, प्रवेश करते समय घंटी बजाना ऐसी छोटी-छोटी कृतियों से वह उनका मनोभाव भाप लेती है, अपनी ममता से वत्सलता से स्नेह से बिगड़ी दशा को संवारती है। अनावश्यक गुब्बार निकल जाता है, फिर वह व्यक्ति पुनः स्वस्थ मानसिकता, प्रसन्नता खिल उठती है। छोटों को नहलाते हुए, कपड़े पहनाते हुए, बाल संवारते हुए उनसे जो सहज बातें होती है, स्नेहसिक्त स्पर्श होता है, उससे व्यक्तित्व निर्माण होता है - 'सृष्टि का, परमेष्टि का मैं एक अंश, उससे प्रेम करुं, उसका शोषण न करुं' यह भाव जागृत होता है। त्याग, सेवा, पौरुष मितव्ययता की परते चढ़ती जाती है।

सुमार्ग प्रेरणादायी

वीर माताओं में ऐसी शक्ति होती है कि अपने होनहार पुत्र को भीषण युद्ध प्रसंग में विजय माला पहनाकर विजय तिलक करती है, आशीर्वाद देकर विदा करते समय कहती है - 'आओ बेटा' - अपनी माँ के गौरव की लाज बचाओ। जिजामाता ने भी शिवबा को निराशा के क्षणों में प्रोत्साहित करते हुए कहा था - 'हार से दुखी होकर अपना जीवन समाप्त करना चाहते हो?' मरना तो एक दिन है ही, परंतु कायर की तरह नहीं, वीर मृत्यु को स्वीकार करो शत्रु के साथ लड़ते-लड़ते शहीद हो जाओ और मेरे मातृत्व को गौरवान्वित करो। 'अपने पति को चेतना, प्रेरणा देने वाली' वीर पत्नियों के अनेकों उदाहरण भारतीय इतिहास के पन्ने-पन्ने पर अंकित है। खंडो बल्लाळ की बहन ने अपनी सारी सम्पत्ति शिर्के को देकर स्वराज्य के अनुकूल बनाने की प्रेरणा दी थी।

उज्जैन के कवि श्रीकृष्ण सरलजी ने भगतसिंह की जीवनी लिखी परंतु वह प्रकाशित करने की किसी प्रकाशक की हिम्मत नहीं हो रही थी। उनके मन की बेचैनी उनकी पत्नी समझ गयी। साधक जैसे व्रतस्थ रहकर अपने पति ने यह निर्मिति की है वह सभी तक पहुंचना कितना महत्व का है यह भी वह जानती थी। उसके पास सोने चांदी के जो भी थोड़े आभूषण थे वे अपने पति को दे दिये। उनके दो छोटे पुत्रों ने यह देखा - उनको लगा हम भी तो भगत सिंह के कोई है। शरीर पर कपड़े थे उनके अतिरिक्त सब सूती, ऊनी कपडे कबाड़ियों को बेच कर वह धन अपने पिताजी को दिया। पुस्तक छप गयी। विमोचन के लिए माता विद्यावती की अध्यक्षता में विशाल कार्यक्रम का आयोजन किया। जराजर्जर परंतु तेजस्वी माता को श्रीकृष्ण जी ने पुस्तकविमोचन के लिए देने हेतु हाथ बढ़ाये, परंतु विद्यावती जी ने अपने हाथ खींच लिये - पुस्तक हाथ में लेने को उन्होंने मना किया। श्रीकृष्ण जी असमंजस में पड़े। 'क्या भूल हो गयी कोई?' उन्होंने पूछा। विद्यावती

ने कहा - 'हाँ! बड़ी भारी भूल हो गयी। भगतसिंह के पहले चंद्रशेखर आजाद हुआ, उसकी जीवनी पहले लिखी जानी चाहिए। मैं कैसे यह पुस्तक स्वीकार करुं?' कुछ बातचीत के बाद उन्होंने कहा कि 'इतने लोगों के सामने आश्वासन दो कि तुरंत उसकी चरित्र की रचना करुंगा तब मैं यह पुस्तक स्वीकार करुंगी।' श्रीकृष्ण जी ने भी चाकू से अपनी उंगली काटकर उस रक्त से विद्यावती माता का तिलक किया और एक वर्ष के अंदर चंद्रशेखर आजाद की जीवनी लिखूंगा ऐसा वचन दिया।

कार सेवा के पश्चात् अयोध्या से लौटे कारसेवकों को उनकी नाती पोतियों ने पूछा - 'मंदिर बनाये बिना कैसे वापस आये?' जाओं मंदिर बनाकर आओ। आपात्काल में कारागृह में बंद हुए अपने घर के पुरुषों को कितनी कन्या, बहन, पत्नी, माँ ने पत्र लिख कर, स्वयं मिल कर बताया कि माफी मांगकर आओगे तो, तुम्हारे लिये घर का दरवाजा कभी नहीं खुलेगा। अत्यंत आतंकित क्षेत्रों में अपने पुत्रपुत्रियों को पूर्णकालिक कार्य करने के लिए भेजने वाली आधुनिक माता बहनों की नसों में उन्हीं वीर माता बहनों का खून खेल रहा है। इसीलिए पिता की मृत्यु होने से परिवार का मन बदलता है तब भी अपनी बेटियों को न रोकने वाली माताएं राष्ट्र की परम शक्ति है। सचेत माताओं की संख्या कम होने के कारण ही मुंबई में सैकड़ों क्विंटल विस्फोटक उतर सकता है, पुरुलिया में शस्त्र उतारे जाते है, शत्रु का हवाई जहाज इतने अंदर तक आ सकता हैं, विलासिता के कारण पैसे को ही सर्वस्व माना जा रहा है। बच्चों को माँ का स्नेह नहीं मिलने के कारण वे आतंकवादी, क्रूर उपभोगवादी बन रहे है, पशुवृत्ति, दानवीवृत्ति प्रबल हो रही है - प्रचार माध्यम उसमें अग्रेसर हो रहे है। इस अपप्रवृत्ति को रोकने हेतु स्त्री को अपने दायित्व का बोध हो इसी कारण से भारतीय संस्कृति में महिलाओं का कितना सम्मान है उसको उजागर करने हेतु राष्ट्र सेविका समिति ने अपने उद्देश्यों को एक सूत्र जोड़ा है - 'स्त्री, राष्ट्र की आधार शक्ति है। इस प्रबल आत्मशक्ति को जागृत कर 'जागे नारी जागे देश' का संकेत देना आवश्यक है। 'मैं एक सामान्य गृहिणी माता क्या कर सकती हूं' ऐसा सोचकर निराश होने से बात बनेगी नहीं। 'मैं तो शक्ति स्वरूपिणी दुर्गा की कन्या हूं। परिस्थिति का सामना कर सकती हूं' ऐसा संकल्प करना है। केवल अपने समाज का, राष्ट्र का नहीं अपितु संपूर्ण विश्व के मानव समाज का भविष्य पिता के मस्तिष्क से भी माताओं के हृदय में अधिक सुरक्षित रह सकता है यह पहचान कर अपनी दिव्यत्व की चिनगारी को प्रज्वलित रखना यह हमारी परम्परा युगों से है परंतु जिन देशों में स्त्री की ऐसा आदर नहीं था, उसे एक भोग्य वस्तु माना जाता है उनकी भी अपनी तूफानी परिस्थिति देख कर भारतीय विचारधारा के अनुसार सोचना पड़ रहा है। अमेरिका जैसे सम्पन्न देश के राष्ट्रपति की पत्नी को यह कहना पड़ा है कि पिछले कुछ दशकों से हम ने एक ही पाठ पढ़ा है कि जहाँ महिलाओं का सम्मान है, उनकी प्रगति होती है वे ही देश प्रतिष्ठा प्राप्त कर आगे बढ़ सकते है।

नटेश्वर की शक्ति

नारी हूँ मैं और जगत हूँ मै आदि शक्ति।
चेतना मैं जीवात्मा की, नटेश्वर की हूं शक्ति।।धृ.।।

चराचर की सगुण माया, यह सब तो है मेरी किमया।
प्रवर्तिनी मैं सब कार्यों की, मैं हूँ जीवन ज्योति।।1।।

मैं हूँ चारुता, मैं हूँ मधुरता, मैं हि दिव्यता और भव्यता।
मैं मंगलता स्नेह शीलता, सृजनता की मूर्ति।।2।।

मैं कन्या हूँ स्नेहल, भगिनी, मैं पत्नी मैं गृहस्वामिनी।
मैं माता हूँ अभय दायिनी, मूर्तिमंत मैं स्फूर्ति ।।3।।

मैं सृष्टी भूमिमय सरिता कामधेनु मैं कल्पना।
तेजशलाका कांतिमति मैं ये धृतिमेधा भक्ति।।4।।

मैं विद्या मैं कला कामिनी मैं लक्ष्मी मैं विभवदायिनी।
मैं दुर्गा मैं शौर्यशालिनी, त्रिगुणात्मक अभिव्यक्ति।।5।।

कर्तृत्व के स्फुलिंग

डॉ. आदिती पंत (१९४३)

अंटार्क्टिका मुहिम में संमीलित होनेवाली प्रथम भारतीय महिला। विज्ञान संशोधन का क्षेत्र अब महिलाओं के लिए भी अछूता नहीं रहा है। बुद्धिमत्ता, सृजनशीलता या लगन किसी भी गुणोंमें महिलाएँ पुरुषों से कम नहीं है। दक्षिण ध्रुवपर उपलब्ध जीवसृष्टी की खोज के क्षेत्र में महिलाओं को प्रवेश देना इस बातके लिए नकारा जा रहा था। सभी गुणों से युक्त होकर भी केवल महिला होने के नाते वहाँ प्रवेश मिलने से वंचित न रखा जाय इसलिए आदिति पंत को इंदिरा गांधीजी के पास जाना पडा था।

मरीन बायॉलॉजी के अध्ययन के लिए आदिती पंत को ढाई सालकी स्कॉलरशिप (छात्रवृत्ती) मिली और अमरिका जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। साथ ही साथ आपने नॉर्वेजियन भाषा भी सीख ली। अमरिका से लौटने के बाद अंटार्क्टिकापर जीवसृष्टी की शोधकार्य के लिए गयी दो मुहिमों में उन्होंने भाग लिया। इस तरह से सागरी जीवन सृष्टी पर शोध और अंटार्क्टिका की मुहिम में शामिल होकर आपने भारतवर्ष की महिलाओं के सामने एक मिसाल रख दी है।

सौ. स्वाती अरविंद दांडेकर

1973 में विवाहोपरान्त स्वाती अमेरिका में गयी तब उसे अकेलापन महसूस होने लगा। अतः उन्होने समाजकार्य प्रारंभ किया। परिणामस्वरूप वे लोकप्रिय हुई। अमरिका के डेमॉक्रेटिक दल ने चुनाव में अपनी उम्मीदवारी दी। अपने प्रतिस्पर्धी कॅरेन बॉल्डर स्टोन को उन्होंने धमाकेबाज पराभव किया। चुनाव में कॅरेन ने भारतीयत्व का बिंदु उपस्थित किया। परंतु चतुर अमरिकन मतदाताओं ने भारतीयत्व का बिंदु उपस्थित किया। परंतु चतुर अमेरिकन मतदाताओं ने अपनी दिशाभूल न होनी दि और स्वातीताई को भव्य यश दिलाया। स्वातीताई ने इस समय 6 मास में 12 सहस्त्र घरों से संपर्क किया। उनका प्रचार सकारात्मक थ। अमेरिकन जनता को आर्थिक सुरक्षितता मिलें, उनका आर्थिक विकास हो, श्रेष्ठ शैक्षिक वातावरण मिले संपत्तिकर कम हो इसका आग्रह रखा। अमेरिका में अपना समय कैसे जायेगा इसकी चिंता करनेवाली स्वातीताई अमेरिकन जनता की समस्याए हल करने का बीडा उठाया। समर्थ वचनानुसार करने से होता है यह सिद्ध किया। अमेरिका के आयोवा राज्य की विधानसभा को एक भारतीय स्त्री का चुनकर जाना यह हमारे लिये गौरवास्पद है।

अंजनीबाई मालपेकर

(संगीत नाटक अकादमी की प्रथम फेलो)

अंजनीबाई मालपेकर अर्थात् गाने के क्षेत्र का एक चमत्कार ही था। जन्मसे प्राप्त सुरेल आवाज पर कडी मेहनत से संस्कार किये। गानक्षेत्र में उन्होंने बेजोड स्थान प्राप्त किया। जिसके फलस्वरूप आपको संगीत नाटक अकादमी की फेलोशिप स्व. राष्ट्रपती राजेंद्रप्रसाद के हाथों देकर सम्मानित किया गया। इस प्रकार से सम्मानित होनेवाली यह प्रथम महिला के रूप में वह सामने आयी। आपने अपने शिष्यों को खुले हाथ से गान संपत्तिका दान किया। वह अलौकिक प्रतिभावाली असामान्य गायिका थी।

फ्लाईंग ऑफिसर गुंजन सक्सेन (१९७५)

कमर्शियल पायलट, मरीन इंजिनीयर इस जैसे पदोंपर कार्यरत महिलाओं ने अपनी क्षमता स्पष्ट किया ही है और इससे भी आगे जाकर गुंजुन सक्सेना (संगीता) ने भारतीय वायुसेना में फायटर पायलट का पद प्राप्त करके महिलाएँ पुरूषों से जादा शक्तिमान तथा सफल होती है यह सिद्ध कर दिखाया है।

आपके वायुसेना में पायलट पदपर दाखिल होते ही कारगिल की लढाई पर जानेकी आज्ञा प्राप्त हुई। 'चीता' जैसे वेगवान और शक्तिशाली हेलिकॉप्टर में से शत्रु सैन्य का पता लगाना और उसको लक्ष्य बनाना, अपने घायल जवानों को उठाकर लाना, हमला करना,

निगरानी करना आदि कठिन-कठिन काम उन्होंने कुशलतापूर्वक निभाये। निकट से ही तोपों से बरसते हुए बारुद के गोलें, अग्निबाण आदि की बौछार में भी प्राणों की बाजी लगाकर यह कर्तव्य आपने कुशलता से निभाये। आपने शत्रु सेना पर कारगिलमें 70 बार हमले किये।

बचपन से ही फायटर पायलट बननेका सपना आपने देखा था और उसे पूरा करने के लिए वायुसेना का कठिनतम प्रशिक्षण उन्होंने परिश्रमपूर्वक और लगन के साथ पूर्ण किया। जहाँ स्त्री-पुरुष का भेद नहीं देखा जाता है। गुंजुन सक्सेना कहती है कि "हम महिला है इसलिए स्वयं को पीछे मत रखो, यह स्त्रीत्व स्त्री होना ही हमारा सामर्थ्य है ऐसा मानकर आगे बढो।"

सोनाली बानर्जी (१९७७)

(प्रथम महिला मरीन इंजिनिअर)

शिक्षक, इंजिनियर, आर्किटेक्ट, डॉक्टर तथा लष्करी सेवा में भी महिलाओं ने अपना कर्तृत्व दिखाया है। कई क्षेत्रों में शारीरिक सामर्थ्य, कडी मेहनत की आवश्यकता होती है। ये सब कठिनाईया झेलकर सोनाली बानर्जी ने हालही में 'मेरी' नामक संस्था में से मरीन इंजिनीयर का पाठ्यक्रम पूर्ण करके स्त्रियों के लिए कर्तृत्व का एक नया आयाम सिद्ध कर दिखाया है। वहाँ अकेली लडकी होने के कारण होस्टल की सुविधा नहीं थी अतः कर्मचारी निवास में रहना पडा। बचपन से ही अपने मरीन इंजिनीअर चाचा से उस क्षेत्र की रोमांचकारी घटनाए सुनती आयी सोनाली को मरीन इंजिनीयरींग के प्रति रुचि निर्माण हुई। एक जिद उत्पन्न हुई और उसने मरीन इंजिनीयर बननेकी ठान ली। चार वर्षोंका कष्टकारी प्रशिक्षण पूरा करके पहली महिला मरीन इंजिनीयर बननेका सम्मान सोनालीने प्राप्त किया है। अंतिम परीक्षा देने से पहले ही मोबिल शिपिंग कंपनी ने उस को जहाजपर इंजिनीयर के पद के लिए चुना।

बच्छेन्द्री पाल

गौरीशंकर चोटी पर चढकर आनेवाली प्रथम भारतीय महिला।

पर्वतारोहण करना यह कोई आसान बात नहीं है। बर्फों से आच्छादित चोटीयोंपर चढना, साथमें कमाल जाडे की साथ, तूफानी हवा, पैरोंतले का बर्फ कभी भी पिघलने का डर ऐसी स्थिति को झेलते हुए यह कष्टसाध्य काम करने में कुशलता और धीरज व साहस की हर समय आवश्यकता रहती है। अभी-अभी तक इसीलिए यह कार्य केवल पुरूषोंतक ही सीमित था। ऐसे समय गौरीशंकर पर पहुँचनेवाली प्रथम भारतीय महिला बच्छेन्द्रीपाल का गौरव करना चाहिए।

इस कार्य के लिए बचपन से ही उन्होंने पर्वतारोहण की उच्च शिक्षा पूरी की। गौरीशंकर जानेवाली पहली दो मुहिमों में वह लक्ष्य के निकट पहुंची परंतु प्रत्यक्ष चोटीपर नहीं पहुँच सकी। आखिर 23 मई, 1984 को वह गौरी शंकरपर जा पहुँचे। वहाँ पहुचने पर निसर्ग का वह भव्य दिव्य रूप देखकर वह नम्र हुई। वहाँ गौरी की पूजा की और यहाँ पहुंचना भगवान की कृपा है ऐसा उनको लगा।

इसके बाद भी आप स्वित्झर्लंड, न्यूझीलंड के पर्वत शिखर हिमालय के कैलाश तथा कामेट जैसे दुर्गम चोटि पर पहुंची है। आपको 'पद्मश्री' उपाधि से गौरवान्वित किया गया है।

इस तरह बच्छेन्द्री पाल के उदाहरण से प्रभावित होकर अनेक भारतीय युवतियाँ इस कार्य की ओर प्रवृत्त हो जाये यही उनके कार्य का सही गौरव है।

पी. टी. उषा - भारत की सुवर्णकन्या

बीसवीं सदीतक भारत को हॉकी तथा बिलीयर्डस इन खेलों के अतिरिक्त किसी भी खेल में जागतिक स्तरपर सफलता नहीं मिल पा रही थी। पी.टी. उषाने दौड में स्वर्ण पदक जीतकर इस क्षेत्र में अपनी अलग पहचान सिद्ध करके देश का नाज ऊँचा किया।

100 मी., 200 मी., 400 मी., की दौड, रिले और हर्डल्स की स्पर्धा में उन्होंने अपना यश सिद्ध कर दिखाया है। नौवी एशियन गेम में आपने 100 मी. और 200 मी. की दौड में जीत प्राप्त करके स्वर्ण पदक प्राप्त किये। 1985 में जकार्ता की दौड में पांच स्वर्णपदक प्राप्त किये। ऑलिम्पिक खेलों में भी प्रवेश किया।

इस तरह पी. टी. उषाने ॲथलेटिक्समें भारत को जीतवाकर महिला खिलाडी की शारीरिक क्षमता पर संदेह करनेवालों को चूप कर दिया है। इन सब के लिए नियमित प्रशिक्षण, शास्त्रशुद्ध आहार, विशिष्ट जूते आदि की आवश्यकता होती है।

देवी अष्टभुजा

देवी अष्टभुजा स्तोत्र

नमो अष्टभुजे देवि लक्ष्मि पार्वति शारदे।
बुद्धि वैभव दो मातर् हमें दो शक्ति सर्वदे।।1।।

शील रूपवती नारी तेरी ही प्रतिमा बने।
धर्म संस्कृति रक्षा से धन्य भारत को करें।।2।।

सुगंधित सुवर्णाभ सुकोमल सरोज जो।
हस्त में धृत देता है पाठ निर्लेप तुम बनो।।3।।

गीता प्रदीप जो देता विश्व को ज्ञानचेतना।
कर में स्थित है तेरे स्नेहले अम्ब मंगले।।4।।

शील चारित्र्य की होवे आभा प्रसृत पावनी।
अग्निकुण्ड इसीसे है प्रदीप्त धृत हाथ में।।5।।

त्रिशूल है लिया मातर् दुष्ट संहार हेतु से।
खड्ग देवि लिया है जो सज्जनत्राण बुद्धि से।।6।।

विरागविक्रमों की जो फहराये नभ में प्रभा।
भगवा ध्वज है तूने हाथ में पकडा महा।।7।।

ध्येय का ध्यान ना भूले कार्य में रत हो सदा।
स्मरणी हाथ की देती हमें सन्देश सर्वदा।।8।।

घण्टानाद हमें देता नित्य जागृति वत्सले।
निद्रा आलस्य में खोवें अमोल क्षण ना कदा।।9।।

सिंहवाहिनी अम्बे तू जगाती जनसिंह को।
सटाओं से उठे सेना शक्तिसामर्थ्यदायिके।।10।।

सती तू पद्मजा तू है तू है देवी सरस्वती।
परित्राणाय साधूनां काली माँ तू यशोमती ।।11।।

विनम्र भाव से देवि प्रणिपात सहस्रदा।
सेविकाएँ करें आशीष देहि देवि सुमंगले।।12।।

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यंबके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते।।13।।

।।देवी अष्टभुजा की जय।।

सर्वसामान्य व्यक्ति अमूर्त कल्पना समझने में सक्षम नहीं होते है। अतः ऐसा अमूर्त भाव मूर्त स्वरूप में साकार कर, सबकी विचारशक्ति की पहूच में लाकर सबके सामने प्रतिक स्वरूप में रखना यह भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है। राष्ट्र सेविका समिति ने स्त्री के आवश्यक गुण, उसकी क्षमता, उसकी सुप्त शक्ति, कार्यान्वित हो इस दृष्टि से 1950 में अष्टभुजा देवी का प्रतिक सेविकाओं के सामने रखा। स्त्री में त्रिविध शक्तियाँ होती है-प्रेरक, तारक, मारक। कन्या, बहन, पत्नी, माता ऐसी जीवन की इन चार अवस्थाओं में समाज को प्रेरणा देनेवालें कई स्त्री चरित्र हमारे इतिहास के पन्नों पर अंकित है। जैसे की राणा प्रताप की कन्या चंपा, खंडो बल्लाळ की बहन संतुमाई हाडा रानी, जिजामाता उसकी प्रेरक शक्ति को दर्शाते है। अपने पुत्र को बनबीर के खडग को बलिं देकर राजवंश को सुरक्षित रखनेवाली पन्नाधाय, राजादाहर की - मृत्यु बाद शत्रु को परास्त करने का प्रयास करनेवाली दाहरपत्नी जैसी कहानियाँ उसकी तारक शक्ति की परिचायक है तो महिषासुरमर्दिनी देवी, राणी लक्ष्मी, सत्यभामा जैसे चरित्र उसकी मारक शक्ति का दर्शन कराते है। देवी के हाथ के कमल, गीता स्मरणी से प्रेरणा शक्ति, वरदहस्त से तारक

शक्ति तथा त्रिशूल खड्ग धारण कर मारक शक्ति का समुच्चय हम देवी अष्टभुजा में देखते है।

श्री बंकिमचंद्र ने भारत माँ को, ज्ञानदायिनी सरस्वती, वैभवदायिनी लक्ष्मी और दुष्टविनाशिनी दुर्गा तीनोंके समन्वित रूप में देखा। देवी अष्टभुजा की आराधना भी उसी दृष्टि से ही करते है। देवी महात्म्य में देवी की उत्पत्ति का कारण और कथा बतायी है। आसुरी वृत्ति का प्रतिरोध करने देवगण असमर्थ सिद्ध हुए। तब उन्होंने आदिशक्ति - मातृशक्ति का आवाहन किया। उसको अपने अच्छे शस्त्र अस्त्र प्रदान किये और इस संगठित सामर्थ्य से युक्त हो कर यह महाशक्ति दुष्टता के विनाश का संकल्प लेकर सिद्ध हुई और देवों को भी असंभवसा लगनेवाला कार्य उसने कर दिखाया। आज भी जीवनमूल्यों को नैतिकता के पैरोंतले कुचलने वाली अहंमन्य दानवी शक्ति को, जीवन के श्रेष्ठ अक्षय तत्त्वज्ञान को दुर्लक्षित कर क्षणिक भौतिक सुख को शिरोधार्य माननेवाली मानसिकता को तथा श्रद्धा को उखाडनेवाली बुद्धि को हमें हटाना है, तो फिर मातृशक्ति को ललकारना होगा, उसे संगठित करना होगा। अतः ऐसी अष्टभुजा का प्रतीक हमेशा हमारे सामने रहे जो हमें अपने कर्तव्य शक्ति का, संगठन का बोध कराते रहेगा। विशाल वटवृक्ष, पावन मंदिर और अक्षुण्ण बहनेवाला जलस्रोत इस पृष्ठभूमिपर सिंहारूढ, विविध आयुधों से युक्त, आत्मविश्वासपरिपूर्ण यह देवी हमें प्रसन्नता के साथ हमारे कुछ गुणों का, भावों का, शक्तियों का उन्नयन करने का संदेश प्रदान करती है।

एक सूक्ष्म से बीज से उत्पन्न होकर भी विशालता प्राप्त करनेवाला वटवृक्ष, अपनी टहनियों से नया वृक्ष निर्माण करने की क्षमता रखता है। सहस्त्रों पक्षियों का निवासस्थान और प्रवासियों का विश्रामस्थान बनता है। अन्यान्य पंथों को जन्म देनेवाले, अन्यान्य पंथों का अपने में समा लेनेवाले अतिप्राचीन हिंदू धर्म का प्रतीक है। भारतीयों का अध्यात्मिक भाव और ज्ञान वटवृक्ष तथा मानवी शक्ति से श्रेष्ठ, सामर्थ्यवान जो अगम्य अचिंत्य विराट शक्ति है उसका परिचायक पावन मंदिर, हमारी नम्रता, श्रद्धा तथा असीम निष्ठा वृद्धिंगत करता है। बिना भेदभाव के सभी को समान लाभ देनेवाली, अपने दोनों तट सुजलां-सुफलां बनानेवाली नदी, उसको आकर मिलनेवाले विभिन्न जलप्रवाहों को आत्मसात कर अखंड सातत्य से बहती है और अंत में सागर में, अपना सारा जलसंचय, सारा वैभव मानों 'स्व' का भाव ही, समर्पित कर देती है।

सदियों से लगातार चलती आयी और वर्धिष्णु होनेवाली विशाल तथा उदार, अनेकानेक शरणार्थियों को आश्रय देनेवाली, अनेकानेक विचारधाराओं को जन्म देनेवाली तथा अन्य योग्य विचारों को संमिलित कर लेनेवाली ज्ञान, विज्ञान, अध्यात्म, नीति, विविध शास्त्र, सभीमें अत्युच्च कुशलता पाकर वह विश्वकल्याण हेतु समूचे विश्व में उदारता से उंडेल देनेवाली भारतीय संस्कृति के निदर्शक इस पृष्ठभूमीपर अष्टभुजा सिंहपर विराजमान है। बलवान, स्वाभिमानी, स्वातंत्र्यप्रिय, वनराज सिंह को अपने अधीन रखने की क्षमता उसमें है। उसकी सिंहपर बैठक इतनी दृढ है कि वह जरा भी विचलित या डाँवाडोल नही होती है। स्वसामर्थ्य पर कितना अटूट विश्वास है! ऐसी अपराजिता शक्ति हमारा आदर्श है। हम भी ऐसी शारीरिक मानसिक शक्ति प्राप्त करेगी। सिंह की सावधानता चापल्य, स्वाभिमान, नेतृत्वक्षमता भी हमें मार्गदर्शक है।

अष्टभुजा याने आठ हाथोंवाली। फिर भी उसका मस्तक एक है। चिंतन एक, कृति में लाने आठ हाथ। एक चिंतन, कार्यकर्ता अनेक। एक मेंदू, मस्तिष्क अंग अनेक और सभी में अंगांगी भाव। स्वतंत्र अस्तित्व, स्वतंत्र कार्य किंतु एक उपांग बन कर। एक का कार्य दूसरे को पूरक। हम सब एक है यह एकात्म अनुभूति। हरेक का एक उद्देश्य से किया जानेवाला सामूहिक काम।

स्थान और कार्य महत्त्वपूर्ण किन्तु तब तक ही जबतक वह सबसे जुडा रहता है। किसीका भी फूटकर अलग होने का भाव उसको स्वयं को तथा समूह को भी हानि पहुँचाता है। अपनी कार्यशक्ति माँ के चरणों में समर्पित होनी चाहिये। सामूहिक कार्यसंकल्प हितहारक सिद्ध होता है। एकात्मभाव से स्पर्धा, मत्सर,

अहंकार तथा विनाशकता नष्ट होते हैं और दिव्य शक्ति का निर्माण होता है।

स्त्री का अष्टावधांनी होना भी इस आठ हाथों से सूचित होता है। एक ही समय अनेक कामों में वह ध्यान रखती है - सजग रहती है। परिवार के सभी जनों का ध्यान रखती है। ईर्दगीर्द घटनेवाली घटनाओं का कार्यकारण भाव समझ सकती है। मानों एक सजग प्रहरी है। हरेक हाथ में विभिन्न आयुध धारण करनेवाली।

बायें हाथमें त्रिशूल पर लहरता हुआ ध्वज और दाहिने हाथ में मानों वार करने सिद्ध खड्ग हमारा ध्यान आकर्षित करता है। शस्त्रधारी देवी। 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' हेतु से दक्ष है। भारतवर्ष में अनेक राजनैतिक प्रयोग हुए। बिना शासक शासन का भी प्रयोग हुआ। बिना शस्त्र समाज का भी हुआ। परमोच्च अहिंसा का भी हुआ। किन्तु वे असफल रहें। समाज में शतप्रतिशत लोग सत्कर्मप्रेरक, सच्चरित्र, सद्हेतुधारी होना असंभव सा है। दुष्प्रवृत्ति हमेशा आक्रमक होती है। उससे बच पाने के लिये स्वसंरक्षणक्षम बनना अनिवार्य होता है। इस आक्रमकता की पहली शिकार होती है दुर्बलता। शस्त्रधारण उस दुष्ट प्रवृत्ति को रोकता है। उसके मन में चिंता और भय निर्माण करता है। उसी समय शस्त्रधारक निर्भय और आत्मविश्वासपूर्ण बनता है। सभी का कल्याण हो, उनको सुखशांति प्राप्त हो इसके लिये शस्त्रसज्जता अत्यावश्यक है।

त्रिशूल

दूरसे ही द्रुतगति से शत्रु को चीरने वाला। तीन शिर होने के कारण अधिक पीडादायक। त्रिगुणात्मक प्रवृत्तियाँ, त्रिताप, तीन गुण, सब मानवकल्याण वृत्ति के डंडे को जुडे हुएं। यही कारण है कि वह ध्वजदंड बन गया है। उसपर फहरनेवाला ध्वज है भगवा - त्यागाधारित तेजस्वी संस्कृति का निदर्शक। विक्रम और वैराग्य, वैभव और त्याग जैसे दो छोर है इसके। उदयमान सूर्य, प्रज्वलित अग्नि की ज्वालाओं के समान रंग है। हिंदु मानस में इसके प्रति प्रगाढ श्रद्धा है, अतीव आदर है, अगाध निष्ठा है। भारत के विजयी इतिहास का, श्रेष्ठ वैभव का, विश्वकल्याण हेतु विश्वसंचार का, कृण्वन्तो विश्वमार्यम् भाव का, मानवधर्म के आचरण का यह साक्षी है। वह हमारा श्रद्धास्थान है, प्रेरणाकेंद्र है, मानबिंदु है। हमने उसको गुरु माना है। उसकी रक्षा हमारा आद्य कर्तव्य है।

खड्ग

शस्त्रधारी हाथ की निपुणता के साथ-साथ दृढ मन जुडा हो तो विजय निश्चित होती है। हमारी माँ के हाथ के खड्ग के पीछे दुष्टदमनार्थ संकल्पित उसका मन है अतः यशप्राप्ति निश्चित है। दृढ संकल्पिता, निश्चयात्मक बुद्धि, समर्थ वाणी और निष्काम कर्तव्यभाव खड्ग को तेज बनाते हैं। यह तीक्ष्ण खड्ग हमेशा कोश में बंद रहता है। किन्तु आवश्यकता के समय उसे झट से खींच वार करने के लिये अभ्यास आवश्यक है।

वरदहस्त

शस्त्रधारी हाथों के साथ ही हमारे ध्यान में आता है वरदहस्त। कहा जाता है कि सिंहनी के तीक्ष्ण नाखून उसके बच्चों को कभी घायल नहीं करते हैं। उन तीक्ष्ण नाखून के भरोसे ही बच्चे आश्वस्तता और सुरक्षितता का अनुभव करते है। हमारी माँ के वरदहस्त से हमें प्रतीत होती है उसकी क्षमाशीलता, उसकी ममता। हमसे कुछ गलती हुई तो भी माँ क्षमा करेगी यह आश्वासक भाव मन में निर्माण होता है। उसका वरदहस्त भूले भटकों को क्षमा कर शक्ति प्रदान करता है। समाजकार्य में व्यस्त लोगों को संगठकों को यह भाव अपनाना ही चाहिये। शस्त्रधारण के साथ विवेकी क्षमाभाव। यह अभयहस्त हमें आत्मविश्वास से परिपूर्ण हो आगे बढने की प्रेरणा देता है।

अग्निकुंड

धधकती हुई ज्वालाओं की संहारक शक्ति नियंत्रित करनेवाला अग्निकुंड। विनाशक, शक्तिको, उपयोगिता में, विधायकता में बदलनेवाला। यही है मानवी बुद्धि की कुशलता। नियंत्रित स्वतंत्रता। संहारक शक्ति का तारक शक्ति में परिवर्तन। दोषों को मिटाकर गुणों का उपयोग।

अग्नि तेजस्वी है, स्वयं पवित्र है ही दूसरों की भी अशुद्धि नष्ट कर उन्हेंभी शुद्ध पवित्र बनाता है। 'समुन्नामितं येन राष्ट्र न एतद् पुरो यस्य नम्रं समग्रं जगत्' भारतीय स्त्री के ऐसे सच्चरित्र का, शुद्धशील का, पवित्रता, पातिव्रत्य का, सतीत्व का ही मानों प्रतिक है। अग्नि की उर्ध्वगामिता 'नाधः शिखा यान्ति कदाचिदेव' सदैव विकास, उन्नति, उत्कर्ष की ओर ध्यान। यह गुण उपजाया है भारतीय संस्कृति ने। ऐसी प्रगतिशील संस्कृति का रक्षण भारतीय स्त्री ने ही किया है - कर रही है और करती रहेगी। किन्तु इस अग्नि को जलाना पडता है - घर्षण से हो, दियासलाई से, लायटर से या बटन दबाकर। जलाने के बाद यह तुरंत जलता है किन्तु उसका प्रज्वलन प्रयत्नसाध्य ही है। हमें यह ध्यान में रखना है। अग्नि को सातत्य से प्रज्वलित रखने उसमें आहुतिया भी देना है। और वह भी 'इदं न मम' भाव से। समर्पण एक बार नहीं बार बार। शक्ति, बुद्धि, धन, मन सब कुछ समर्पित हो। इस समर्पण से ही भारत का इतिहास तेजस्वी बना है और भविष्य में भी इसी के आधार पर भारत तेजस्वी राष्ट्र बनेगा। अग्नि की और एक विशेषता है - गतिशीलता। बीच में जो जो कुछ आता है उसे आत्मसात करते हुए वह चारों तरफ फैलता जाता है।

अग्नि के विविध गुण, उसकी विनाशकता शक्ति पर नियंत्रणक्षमता, अग्नि की उष्णता से तप्त अग्निकुंड हाथ में धारण करने की क्षमता हमे अपनानी है। उसको कृति में परिवर्तित करना है निरहंकार वृत्ति से। यह संदेश है गीता का।

श्रीमद्भगवद्गीता

ज्ञान, कर्म, भक्ति का मधुर संगम। कर्म ज्ञानाधिष्ठित हो और भक्तिपूर्ण भी। साथ-साथ निष्काम भी। निराशा सें पलायनवान नहीं, यश के अहंकार से भी ऊपर ऊठकर। गीता हमें यह कर्मयोग सिखाती है। स्वामी विवेकानंदजी ने अपने गुरु को तरह तरह से परखा। एक बार कसौटी पर उतरने बाद उनपर अविचल श्रद्धा, निष्ठा से उनके अनुगामी बने। अपना ध्येय प्राप्त करने हमने दिव्य मार्ग का स्वीकार किया है। अविचल निष्ठा से, बाधाओं पर विजय पाते हुए हम आगे बढेंगे। परन्तु उसके लिये हमें अपने ध्येय का सदैव स्मरण रहें अतः है ।

स्मरणी

जापमाला। प्रतिपल स्मरण। इसके लिये साधन है 108 माणियों को एकत्रित गूंथकर बनायी हुई माला। 108 बार जप किन्तु गिनती है 100। मोह के क्षण कर्तव्य ध्यान भुला सकते है। कहा जाता है खरगोश की शिकार करनी हो तो भी तैयारी करनी है सिंह के शिकार की। कार्यकर्ता ने यह हमेशा ध्यान में रखना है। कभी-कभी माला फेरना यह एक शरीर की प्रतिक्षिप्त क्रिया बन जाती है फिर भी माला का शीर्ष मणी आते तक वह नीचे नही रखी जाती। हाथ से कृति होती है, मन चिंतन करता है।

माला का हरेक मणि महत्त्वपूर्ण है फिर भी माला का एक अंश है। व्यक्ति कितनी भी श्रेष्ठ, विद्वान, कुशल हो उसने 'मै अपने इस समाज का राष्ट्र का एक छोटा घटक हूं' यह भूलना नहीं चाहिये। एकेक मणि अलग होता जायेगा तो माला रहेगी ही नही और मणि भी कटी पतंग के समान झोके खाता रहेगा और गिर जायेगा।

ध्येय का स्मरण और पुनः पुनः प्रयत्न से ही हम ध्येय प्राप्त कर सकेंगे।

मणि अनेक किन्तु धागा एक - संगठित रखने की क्षमता - भावी तेजस्वी राष्ट्र निर्माण का हेतु यह धागा है जो हमें कर्तव्य से बद्धरखता है।

क्षण-क्षण से ही हमारा जीवन बनता है। जो क्षण जाता है वह फिरसे वापस नही आता। अतः हमे हरेक क्षण अपने जीवितकार्य में, राष्ट्रसेवा में व्यतीत करना है। माँ के हाथों की स्मरणी हमें इसलिये प्रेरित करती है। यह सब होगा हम सजग रहेंगे तो। घंटानाद हमें जगाता रहे।

घंटा

घंटा मंदिर की हो, पाठशाला की हो, दरवाजे पर लगायी हुई हो या घड़ी की हो - वह अपने नाद से हमें जगाती है। जागृतावस्था अर्थात् क्रियाशीलता। घंटा का मधुर नाद हमें प्रसन्न करता है। 'आगमार्थं तु

देवानां' यह उपयुक्त है। किन्तु जब हम उसका फल 'निर्गमनार्थं तु रक्षसाम्' चाहते है, शत्रुहृदय को भयकंपित करना चाहते है तब उसका उपयोग शस्त्रसमान कठोरता से और तेजी से ही करना पड़ेगा। देवी महात्म्य में देवी के हाथ के घंटानाद से दैत्यों का हृदय कंपित हुआ ऐसा वर्णन है। गीता में भी वर्णित है 'शंखं दध्मौ पृथक् पृथक्। शांतता के समय मंगलप्रद तो युद्ध के समय भयप्रद घंटारव।

कमल

देवी को नमन करते हुएं हम बोलते है 'सर्व मंगल मांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। शरण्ये त्र्यंबके गौरी। नारायणी नमोस्तुते।' यह मंगल और शिव भाव व्यक्त होता है कमल से। अपनी सुंदरता से सभी को आकर्षित करता, लुभांता है। खास कर कवियों को बहुत प्यारा लगता है। मुखकमल, नयन कमल, चरणकमल, हस्तकमल, जैसे कई शब्दों का उपयोग उन्होंने किया है। केवल सुंदरता नही साथ में सुगंध भी है। अतः ईश्वरचरणों पर चढाने योग्य है। जितना सुंदर, सुगंधित उतना कोमल भी है। उसकी पंखुडियों की कोमलता हमारे मन को कोमल बनाती है और उनको हम अतीव कोमलता से स्पर्श करते है। यही कारण है कि उसमें रात्रि के समय बंदिस्त हुआ भ्रमर, बड़े-बड़े लकड़ीयों को खोखला बनाने की क्षमता होते हुए भी, पंखुडियों को जरा भी हानि नहीं पहुंचाता है। हम जानते है कि राक्षसियों के बीच रहते हुए भी सीता सुरक्षित रही। वास्तव में कमल का जन्म कीचड़ में होता है फिर भी उसकी डंठल कीचड से तथा पानी से भी ऊपर ऊठती है और अपने माथे पर कमल को धारण करती है। महारथी कर्ण के वचन ध्यान में आते है, 'मदायत्तं तु पौरुषम्।' जन्म के अनुसार नहीं कर्म के अनुसार चातुर्वर्ण्य। प्रतिकूल परिस्थितिओं पर निश्चय से विजय पाना।

प्राचीन काल में कमल पत्रों का उपयोग पत्र लिखने हेतु किया जाता था। इतने बड़े-बड़े पत्ते पानी के ऊपर तैरते रहते है। गोल आकार और सुंदर हरा रंग। दिनरात पानी में रहते हुए भी गीले नही होते है। यह निर्लेपता हमे भारतीय ऋषिमुनि, संतों की याद दिलाती है। हम जब किसी तालाब में कमल देखते है तब मुंहसे 'वाह' निकल जाती है किन्तु कमलफूल और कमलपत्र ही दिखाई देते है। डंठल का कही दर्शन भी नही हो पाता। जीवनरस देनेवाला तो वही है। अदृश्य रहते हुए भी सबकुछ। 'ईश्वर को हम कहते है 'करुनि अकर्ता, जग निर्मयता।' संतानों के कार्यकर्तृत्व से माँ का बडप्पन ध्यान में आता है। एक कुशल माँ के समान ही यह डंठल पंखुडियाँ भारी संख्या में होते हुए भी उनको इधर-उधर भटकने नहीं देता है, तितरबितर नहीं होने देता है। मानो, वह संगठन का बोधक है। विविधता में एकता का दर्शन कराता है।

सुंदरता, सुगंधितता, कोमलता, निर्लेपता, विषम परिस्थिति से भी ऊपर उठने की क्षमता, संगठन कुशलता, इतने सारे गुणों से युक्त होते हुए भी उसकी चाह क्या है? श्रीहरी को अर्पण करने गजेंद्र ने जो कमल तोड़ा था वह अमर बन गया है जैसी ही अमरता उसे अपेक्षित है। एक कवि ने पुष्प की अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहा है, 'चाह है देशभक्तों के पैरों तले कुचले जाने की।'

राष्ट्र सेविका समिति का केवल ऊपरी दृश्य रूप देखनेवाली महिलाओं के मन में प्रश्न उठता है 'यह मूर्तिपूजा क्यों'? यह मूर्तिपूजा है ही नही। हम तो पूजा के समान उसको गंध फूल अक्षत चढाते भी नही है। केवल पुष्पमाला और मनोभाव से किया हुआ प्रणाम। क्योंकि हम गुणपूजक है। सद्गुणों का, सत्कर्मका, तेज का सन्मान करनेवाले हम भारतीय है। भारत है। अष्टभुजा के गुण अपनाने का अधिकतम प्रयास करनेवाली सेविकाओं का यह संगठन है।

जिन्होंने चिंतनपूर्वक यह प्रतिक कुशल चित्रकार से बनवा कर हेतुतः सेविकाओं के सामने रखा उनको वं. मौसीजी के उस चिंतन को, उस प्रतिभा को शत शत प्रणाम।

कार्यपद्धति

कोई संस्था या संगठन कार्य सुचारु रूप से चलाने हेतु एक विशिष्ट कार्यपद्धति का होना आवश्यक है। कार्यपद्धति ऐसी हो जिसमें उस संस्था या संगठन की विचार प्रणाली का दर्शन होता हो। राष्ट्रसेविका समिति 'राष्ट्रोत्थान' इस विशिष्ट ध्येय से प्रेरित होकर कार्य करती है। ध्येय को जीवन में उतारने के लिए अनुशासन की आवश्यकता है। इतिहास से यह सिद्ध हुआ है कि उद्देश्य कितने भी श्रेष्ठ हो, अनुशासन के अभाव में सफलता नही मिलती है। परंतु अनुशासन कैसा हो? केवल फौजी अनुशासन से राष्ट्रोत्थान जैसा ध्येय प्राप्त होना संभव नही होगा। तो स्वयंप्रेरणा के साथ देश के प्रति श्रद्धा और समर्पण भाव।

शाखा पद्धति -

संगठन के कार्य में अनुशासन के साथ-साथ व्यक्ति के मन में निःस्वार्थ भाव, दूसरों के प्रति आत्मीयता निर्माण करने के लिए होना आवश्यक है। ऐसे गुणों का निर्माण संस्कारो द्वारा तथा संस्कार नियमित अभ्यास से होते है। आवश्यकता है बार-बार एकत्रित आने की तथा नित्य सान्निध्य, सहवास प्राप्त होने की। कुछ संस्कार ऐसे होते है कि जो अकेले रह कर प्राप्त नहीं किये जा सकते। जो समूहमें ही प्राप्त होते है और वह स्थान है हमारी दैनिक शाखा। यहां ध्येय, निष्ठा, अनुशासन, परस्पर स्नेह, समर्पण भाव, कर्तव्य के प्रति सजगता ऐसे अनेक संस्कार विविध कार्यक्रमों द्वारा, सेविकाओं के परस्पर व्यवहार से निर्माण होते है। ऐसा हमारा स्वभाव बन जाता है। सामूहिक जीवन की आदत, विचारों का आदानप्रदान व्यवहार, क्रिया प्रतिक्रियाओं में समानता आती है। 'जन अनेक मन एक' की अनुभूति से मन में उत्साह निर्माण होता है। अतः दैनंदिन शाखा हमारी कार्य पद्धति की विशेषता है।

हरेक व्यक्ति में सुप्त नेतृत्वगुण होते है। शाखा में इन गुणों को विकसित किया जाता है। शाखा की मुख्यशिक्षिका वह छोटे आयु की भी हो सकती है, आदेश देती है। उसका पालन सभी सेविकाएं करती है। महत्व व्यक्ति का नही स्थान का, पद का होता है। सेविका सब प्रकार का काम करने में सक्षम होती है, बनायी जाती है। किसी का भी एकाधिकार नही होता है। अपने जैसे अनेक निर्माण करो का संस्कार दृढ होता है। सामूहिक मानसिकता का निर्माण होता है।

समिति एक परिवारिक संगठन

संत नामदेव ने कहां है कि अगर कोई व्यक्ति मन में भक्तिभाव न होते हुए भी यदि भगवान का नाम लेता रहता है तो उसका मन भगवान से जुड जाता है। उसका मानसिक उन्नयन होता है। वैसे ही निरंतर शाखा में आने से व्यक्ति में धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगता है। परंतु इसका उसे स्वयं को पता नही चलता। समिति कार्य की विभिन्न जिम्मेदारियां निभाते निभाते सेविका के मन में एक पारिवारिक आत्मीयता का भाव निर्माण हो जाता है। इसी भाव के कारण समिति एक पारिवारिक संगठन है।

संपूर्ण हिन्दु समाज एक एकात्म परिवार है ऐसी हमारी मान्यता है। वं. ताईजी हमेशा कहती थी की घर एक छोटा परिवार तो समाज और राष्ट्र हमारा बडा परिवार है। परिवार में सभी सदस्यों के बीच अपनेपन का, प्यार का नाता होता है, जिससे एक दूसरें के प्रति विश्वास, आत्मीयता, कर्तव्य, दायित्व जैसे अनेक बन्धन होते है। इन बन्धनों के कारण ही स्वार्थत्याग, समर्पण का भाव निर्माण होता है। इस पारिवारिक कार्यपद्धति में स्नेह भी है, स्वयं अनुशासन भी है। यह कोई प्रशासन प्रणाली नही है, यह है परिवार के लिये

आदरभाव, उसके प्रगति की आकांक्षा, सम्मानकी रक्षा निर्माण करनेवाली जीवन प्रणाली है।

परिवार में आयु और अनुभव से व्यक्ति ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ होता है। उसके मन में सभी परिवार जनों के बारे में अपार स्नेह एवं कल्याण की चिंता होती है। वह अपना जीवन परिवार के लिये त्यागपूर्ण व्यतीत करता है। सभी के सुख में अपना सुख मानता है और परिवार गौरव के केन्द्र बिन्दु के साथ सामंजस्य से सब को जोडकर रखता है। अतः सभी के मन में ऐसे परिवार प्रमुख के प्रति आदर और सम्मान की भावना निर्माण होती है। उनका आदेश परिवार के हित में ही है ऐसा विश्वास सभी के मन में होत है। इसीलिए उसकी हर इच्छा को तत्परता से पूरी की जाती है। यह कानून का नही, स्वयं प्रेरणा से स्वीकारा हुआ बन्धन होने के कारण मनःपूर्वक काम होता है। अतः वह श्रेष्ठ स्तर का काम होता है।

संगठन का कार्य किसी एक व्यक्ति के नेतृत्व में ही चलता है। तभी वह लक्ष्य तक पहुंच सकता है। केवल संकटो के समय नही तो हर समय, कोई भी निर्णय लेते समय कार्यकर्ताओं से चर्चाकरना आवश्यक होता है और नेता का कर्तव्य भी है। हमारे संगठन में भी हमारी वंदनीय प्रमुख संचालिका हमारे समिति परिवार की प्रमुख है। हर समय सभी कार्यकर्ताओं को साथ लेकर कार्य करने वाली हमारी प्रमुख संचालिका का आदेश संगठन तथा देश के हित को ध्यान में ले होता है ऐसा विश्वास हम सभी के मन में है। अतः उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिए श्रद्धा से सभी सेविकाएं तत्पर होती है। घर, परिवार जैसे परस्पर विश्वास और शुद्ध सात्विक प्रेम हमारे कार्य का आधार है।

संगठन प्रमुख के आदेश का हम पालन करते है। हमारे संगठन में प्रमुख अधिकार और कार्यकर्ताओं के सम्बन्ध नेता और अनुयायी के नही परंतु मां और बेटी के समान होते है। नेता और अनुयायी का उत्तम उदाहरण श्रीकृष्ण और अर्जुन से मिलता है। अर्जुन पराक्रमी, बुद्धिमान है परंतु शंकाओं से ग्रस्त है। अपनी शंका का समाधान केवल श्रीकृष्ण ही कर सकते है इस विश्वास से अर्जुन नम्रतासे उन्हें प्रश्न पूछता है। श्रीकृष्ण भी उसके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देते है तथा शंका का समाधान करते है। अर्जुन की सभी शंकाओंका निरसन करने पर युद्ध करने का अपना निर्णय उसपर लादते नही है, 'यथेच्छसि तथा कुरु', यह श्रीकृष्ण की भूमिका है। अर्जुन को विश्वास है कि श्रीकृष्ण जो भी बताएंगे वह उसके हित का ही होगा और श्रीकृष्ण चाहते है सभी कुछ समझ लेने के पश्चात् निर्णय अर्जुन को ही लेना है। वह जो भी निर्णय लेगा उचित ही लेगा। इसी प्रकार का विश्वास हमारे कार्य का आधार है। यहां नेता अनुयायी नही, कार्यकर्ता, सहकार्यकर्ता है।

श्रृंखला पद्धति - सामूहिक निर्णय

अपने संगठन में प्रमुख संचालिका किसी भी प्रश्न या योजना पर अपने मन से अकेली निर्णय नही लेती है। उस प्रश्न पर खुली चर्चा होती है। वं. प्रमुख संचालिका, केन्द्रीय कार्यकारिणी, अंचल, प्रदेश, विभाग, जिल्हा, तहसील, महानगर, नगर, ग्राम के शाखा अधिकारी तथा प्रत्येक स्तर की कार्यकारिणी में आपस में संपर्क, समन्वय तथा सामंजस्य होता है। केन्द्र से ग्राम तक तथा ग्राम से केन्द्र तक विचारों का आदान प्रदान होता है। हमारे शरीर में रक्ताभिसरण जैसी यह भी प्रक्रिया है। वह जितनी चेतना युक्त रहेगी उतना ही अपना कार्य प्रभावी रहेगा। यह श्रृंखला पद्धति अपनी कार्यपद्धति की विशेषता है। इस पद्धति की तुलना जलचक्र से भी की जा सकती है। धरती का पानी सूर्य किरणों द्वारा वाष्प में परिवर्तित होता है, वह शुद्ध होकर मेघ रूप पाता है तथा आकाश में समाहित होता है। वहां से वर्षा का रूप लेकर पुनः धरती पर आता है। इसी प्रकार सेविकाओं के विचार निकटतम अधिकारी द्वारा उपर निर्देशित श्रृंखला के माध्यम से केन्द्रतक पहुंचते है। जहां उनका संस्करण, शुद्धिकरण किया जाता है तथा केन्द्र से योजना रूपी आदेश के रूप में प्रत्येक शाखा तक पहुंचता है। श्रृंखला में

प्रत्येक कडी का महत्व होता है। एककडी टूटने से श्रृंखला टूट जाती है। अतः हरेक शाखा बलवान हो प्रभावी हो, जिससे हमारा संगठन शक्तिशली एवं प्रभावी बन सके।

विचार स्वातंत्र्य

समिति कार्य पद्धति में प्रत्येक सेविका को अपने-अपने स्तर पर विचार रखने का, चर्चा करने का पूर्ण अवसर दिया जाता है। सभी के विचार सुने जाते है। संगठन में अतिसामान्य वहां जाने तथा प्रतिभावान व्यक्ति का भी योगदान होता है। 'अयोग्यो पुरूषो नास्ति' इस पर हमारा विश्वास है। योजकता आवश्यक है। हमारी कार्यपद्धति जोडने की है, तोडने की नही। अपने व्यापक और सघन संपर्क से हम न केवल अपने संगठन का विस्तार करते है, परंतु सशक्त तथा प्रभावी बनाते है। आवश्यकता है संगठन में विश्वास और श्रद्धा की।

बैठकें

संगठन में हर स्तर पर कार्यकर्ता का निरंतर एकत्रित आकर विचार विमर्श करना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए बैठक का आयोजन होता है। अ. भा. स्तर से लेकर एक छोटी शाखा तक हरेक की अपनी स्वतंत्र कार्यकारिणी है। जिसमें शाखा कार्यवाहिका, बौद्धिक, शारीरिक, निधि, गीत कार्यवाहिका एवं मुख्य शिक्षिका होती है। कार्यकर्ताओं का निर्माण और कार्ययोजना ठीक प्रकार से कार्यन्वित हो इसलिए वारंवार बैठके होना आवश्यक है। सहवास से कार्यकर्ता में आत्मीयता और विश्वास होता है।

केन्द्र का एक वर्ष में दो बार बैठके होती है। इन बैठकों में अ.भा. स्तर पर मनाये जानेवाले कार्यक्रम, प्रस्ताव तथा अनेक सामाजिक, राष्ट्रीय समस्याओंपर विचार किया जाता है। कार्य की दिशा तय की जाती है। अनेक दृष्टिकोण सामने आते है परंतु सभी पर विचार कर सर्वसहमति से एक निर्णय की घोषणा बैठक के समापन में वं. प्रमुख संचालिका द्वारा की जाती है। यह निर्णय प्रान्त, विभाग एवं जिला बैठक में रखे जाते है। तथा सभी शाखाओंतक पहुंचाए जाते है। शाखाओं द्वारा कार्यक्रम लिए जाते है तथा योजनाओं को कार्यान्वित किया जाता है।

वर्ग एवं शिबिर

संगठन में कार्यकर्ता का विशेष महत्व है। संगठन का आधार है कार्यकर्ता। कार्यकर्ता निर्माण के लिए दैनंदिन शाखाएं महत्वपूर्ण होती है, वैसे ही आवश्यक है वर्गएवं शिबिर। वे विभिन्न प्रकार के है। बौद्धिक अभ्यासवर्ग शारीरिक अभ्यास वर्ग, एकत्रीकरण शिबिर आदि। दो दिन से दस दिन तक के आवासीय शिबिर होते है तथा दस से पंधरा, बीस दिन के वर्ग होते है। हमारा कार्य सर्वस्पर्शी है अतः शिबिर या वर्गों में समाज के सभी वर्गों की बहनों का समावेश होता है। साथ-साथ रहने से समरसता का भाव इन में सहजतासे निर्माण होता है। तत्वप्रवालो तथा अन्य अनेक विषयों पर बौद्धिक के माध्यमसे मार्गदर्शन मिलता है। व्यायाम, योगासन तथा शस्त्रों का अभ्यास भी शारीरिक कार्यक्रमों के माध्यमसे प्राप्त होता है।

गट पद्धति

कार्य विस्तार के लिए निरंतर संपर्क हमारे कार्य की विशेषता है। एक-एक घर से संपर्क, व्यक्तिशः संपर्क तथा हृदय से हृदय तक के संपर्क से ही व्यक्ति निर्माण होता है। हमें संपूर्ण हिन्दु समाज को संगठित करना है। समाज के सभी वर्गो से बहने हमारे कार्य में सक्रीय रहे इस दृष्टि से लोक संपर्क, लोक संग्रह, लोक संस्कार करना हमारी कार्य पद्धति है। लोकसंपर्क का उत्तम मार्ग गट पद्धति है।

शाखामें शहर या ग्राम के भागों के अनुसार अनेक गट होते है। प्रत्येक गट की एक गटनायिका होती है। सभी गटनायिकाएँ अपने-अपने गट की प्रत्येक सेविका के घर से संपर्क बनाये रखती है। परिवार से परिचय, सहवास तथा निरंतर संपर्क से गटनायिका के सेविकाओं के मन में विश्वास तथा आत्मीयता निर्माण होती है। इसी आत्मीयता के कारण ये परिवार समिति से जुडते है। उनके मन में भी राष्ट्र प्रेम, राष्ट्रीय भाव निर्माण होते है।

विशेषताएं

राष्ट्र सेविका समिति यह अखिल भारतीय संगठन है। हम सब सेविकाएं संगठन की कार्यकर्ता है। सशुल्क सदस्य तो नही श्रद्धा से गुरुदक्षिणा समर्पण है। सदस्य रहित संविधान रखने वाली इस राष्ट्र सेविका समिति की कुछ विशेषताएं -

1) स्वावलंबी संगठन - शासन तथा अनुदान इन दोनों पर निर्भर नही।

2) व्यक्ति केन्द्रित नही, विचार केन्द्रित है। तत्व निष्ठा है। हमारे गुरु कोई व्यक्ति नही तो परम पवित्र भगवद्ध्वज है।

3) परिवर्तनशील कार्यपद्धति - संगठन के हितार्थ कार्यक्रम पद्धति में परिवर्तन किया जा सकता है। यह विकसनशील जिवंत कार्य पद्धति है।

4) सामूहिक चिंतन शैली - चिंतन प्रक्रिया अत्यंत लोकतांत्रिक के निर्णय पूर्व अलग अलग मत प्रकट हो सकते है। परंतु अन्त में लिए जानेवाले निर्णय को सभी स्वीकार करते हैं तथा कार्यान्वित करते हैं।

5) गुरूदक्षिणा पद्धति - अहंकार नही समर्पण भाव से समाज में कार्य करना। इसका प्रतीक गुरू दक्षिणा। समाज के लिए देने की प्रवृत्ति।

6) प्रसिद्धि पराङमुखता

इस कार्यपद्धति ने हमारे संगठन की नींव दृढ बनायी है और कार्य दिनप्रतिदिन बढ़ ही रहा है।

संगठन की पद्धति

संगठन करने निकले है तो मधुर एवं आदरयुक्त वाणी का प्रयोग करना आवश्यक है। दूसरों की बातें शांति पूर्वक सुनने का व्रत लेना पडेगा। आज्ञापालन का आदर्श स्वयं प्रस्तुत करना पडेगा आदर की दृष्टि से सभी की ओर देखने का अभ्यास करना होगा। विनय की उपासना करनी होगी, संशय, कठोर वाणी, निरुत्साह निंदा को त्यागना होगा।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः

सभी सुखी हो, सभी निरोगी, सबमें हो सद्भावना।
निशिदिन प्रतिपल हिन्दू करते, सबकी मंगल कामना।।धृ.।।

सत्य एक शाश्वत ईश्वर है, सबमें उसकी छाया।
जीव, जगत् जड़ चेतन भू-नभ, फैली उसकी माया।
हम सब उसके सत्व अंश है, नहीं किसी को ताड़ना।
निशिदिन....।।१।।

शस्य-श्यामला भारत अवनि, देती है सद्-मंत्र यहाँ।
ऋषि-मुनियों सी तपस्विता ले, जीवन जीते लोग जहाँ।
ब्रह्मचर्य, संयम, व्रत, सेवा, संकल्पित हो साधना।
निशिदिन... ।।२।।

ज्ञान और विज्ञान यहाँका, मानव-हित कर रहा सदा।
धन्वन्तरि का आयुर्वेद, आयुष् का वर्धन करे सदा।।
दिव्य चरक, सुश्रुत की विद्या, विकसित करके बाँटना।
निशिदिन.... ।।३।।

शुचिमय जीवन, माँ की ममता, ले कल्याणी नारी बने।
उसके संस्कारों से पोषित, भावी पीढ़ी पुष्ट बने।।
सुखी विश्व जीवन तब होगा, यही धर्म, आराधना।।
निशिदिन.... ।।४।।

अपनी उत्सव

भारत यह खंडप्राय देश है। इसमें प्रांत, भाषा, वेष की विविधता है, वैसी उत्सवों की भी। इनमें से राष्ट्रीय महत्त्व के पांच पर्व समिति में विशेष रूप से मनाये जाते हैं। पर्वो से जुड़ी विशेष प्रेरक ऐतिहासिक घटनाओं का पुनः पुनः स्मरण हमारे जीवन में सामाजिक, राष्ट्रीय सांस्कृतिक नैतिक मूल्यों के प्रति श्रद्धा निर्माण करता है - स्फूर्ति देता है।

वर्ष प्रतिपदा

नववर्ष का यह प्रारंभदिन इसे ही युगादि कहते है। हिन्दुओं का नव वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से प्रारंभ होता है। प्रतिपदा - नये वर्ष की ओर हमने कदम उठाया है यह 'प्रतिपदा' शब्द से ध्वनित होता है। फाल्गुन अमावास्या के दिन सिंहावलोकन करना और वर्ष प्रतिपदा के दिन प्रातः काल सूर्योदय के समय राष्ट्रीय इतिहास का साक्षी हमारा प्रेरक भगवा ध्वज लहराकर मांगल्य के लिये प्रार्थना करना -

ब्रह्मध्वज नमस्तेऽस्तु सर्वाभिष्टफलप्रद
प्राप्तेऽस्मिन् वत्सरे नित्यं मद्गेहे मंगलं कुरु।

यह लगभग हमारी 6000 वर्षो की परम्परा है। कुरु वंश का पूर्वज राजा उपरिचर ने इंद्र की सहायता की। इंद्र ने उसे प्रसन्न हो कर ध्वज दिया और उपरोक्त श्लोकबद्ध प्रार्थना करने का आग्रह किया। अतः हमारे पंचांगों में इस दिन के सामने वर्षप्रतिपदा के साथ लिखा रहता है ध्वजारोपण। प्राचीनकाल में विजयोत्सव आनंदोत्सव मं ध्वजारोहण की पद्धति थी।

वर्ष प्रतिपदा हमारा राष्ट्रीय विजय दिन है। शकारि विक्रमादित्य ने अत्यंत प्रतिकूल परिस्थिति में अपने अद्भुत पराक्रम से आक्रमणकारियों का नृशंस शासन उखाडकर फेंक दिया। जनजन में स्वाभिमान और राष्ट्रप्रेम की ज्योति प्रखर की। कहते है कि शालिवाहन ने मिट्टी के पुतलों में अर्थात् मृतवत् जनसमाज में राष्ट्र भावना के प्राण फूंक कर विजय प्राप्त की। शक अत्यंत क्रूर थे। उनके कार्यकाल में उनको तरुण, सुंदर, कुमारी युवतियां प्रतिवर्ष भेंट देनी पड़ती थी। कुछ स्थानों पर गुलामी के प्रतीक रूप में वर्ष प्रतिपदा के दिन ध्वज के स्थान पर उनके आसुरी विजय का प्रतीक -महिला के वस्त्र फहराने का आदेश दिया गया था। शक जानते थें कि जब तक भगवा ध्वज हमारे सम्मुख है तब तक हम हमारा उज्वल राष्ट्रेतिहास भूलेंगे नहीं। विजय की इच्छा अदम्य ही होगी। अतः उसे नष्ट करना होगा। उनके दबाव के कारण वर्ष प्रतिपदा के दिन साड़ी फहराने की प्रथा रूढ़ हुई। शकारि विक्रमादित्य ने शकों पर विजय पायी। महिलाओं का सम्मान बढ़ाया और फिर एक बार भगवा ध्वज वर्ष प्रतिपदा के दिन घर-घर पर लहराने लगा। सूर्योदय के समय ध्वजारोहण करना और सूर्यास्त के पहले ध्वजावतरण करना ऐसी पद्धति है। उदीयमान सूर्य जैसा वर्धिष्णु तेज, वैभव हमारा ध्वज प्राप्त करे। गुलामी का अंधकार उसे स्पर्श न करे यह भाव है।

राष्ट्र सेविका समिति का उद्देश्य 'स्व' संरक्षण है। स्वाभिमान जागरण है। अतः वर्ष प्रतिपदा का पर्व समझ कर अपना सांस्कृतिक ध्वज घर-घर फहराया जाने का आग्रह है।

इस दिन कड़वा नीम प्राशन करने की भी पद्धति है। कडवे नीम के नये पत्ते-पुष्प सहित लेकर उसमें नमक, हींग, जीरा, इमली, मिश्री आदि पीसकर चटनी बनाकर प्रातः काल प्रसाद रूप में खाती जाती है। कड़वा नीम औषधि गुणयुक्त है। उसे नव वर्ष के प्रारंभ में खाना औचित्यपूर्ण है। वर्ष प्रतिपदा के पश्चात् धूप प्रतिदिन बढ़ती जाती है। नींबू प्राशन से धूप के विकार दूर होते है। अनेक कड़वी बातें निगलने के पश्चात् ही मधुर सुख का अनुभव आता है, यह भी संदेश है।

इस दिन का और भी एक महत्त्व है। ऐतिहासिक काल में हिन्दुओं की चेतना जगा कर उनमें विजिगीषु भावना भरने का कार्य शकारि विक्रमादित्य ने किया, वैसा ही युग प्रवर्तक हिंदु संगठन खड़ा करने का कार्य करने वाले प. पू. डॉक्टर हेडगेवारजी का यह जन्म दिन है। राष्ट्र सेविका समिति ने संगठन तंत्र के संबंध में उन्हींसे इस मार्गदर्शन लिया है अतः उनके प्रति अपना आदर कृतज्ञता का भाव प्रकट करने हेतु हम उनका स्मरण करते है। समिति का उत्सव में ही पू. डॉक्टरजी की प्रतिमा रखते है। अन्य सभी उत्सवों में जगज्जननी माँ अष्टभुजा एवं वं. मौसीजी के चित्र रखे जाते हैं।

इसी दिन से श्रीरामवरदायिनी देवी, राष्ट्रपुरुष श्रीराम का नवरात्रि तथा राष्ट्र संत समर्थ रामदास का जन्मोत्सव प्रारंभ होता है।

नवीन प्राण चाहिये

नवीन पर्व के लिये, नवीन प्राण चाहिये।।धृ।।
स्वतन्त्र देश हो गया
प्रभुत्वमय दिशा भयी
निशां कराल टल चली
स्वतन्त्र माँ विभामयी
मुक्त मातृभूमि को, नवीन मान चाहिये।।1।।

चढ़ रहा निकेत है कि
स्वर्ग छू गया सरल
दिशा-दिशा पुकारती कि
साधना करो सफल
मुक्त गीत हो रहा, नवीन राग चाहिये।।2।।

युवक कमर कसो कि
कष्ट-कष्टकों की राह है
प्राण दान का समय
उमंग है उछाह है
पगों में आँधियाँ भरे प्रयाण भान चाहिये।।3।।

गुरुपौर्णिमा

भारतीय जीवन पद्धति में गुरु का अतीव महत्व है। यदि गुरु और गोविंद दोनों खड़े है और किसको प्रणाम पहले करना है यह प्रश्न निर्माण होने पर गुरु को ही प्रथम वंदन करना है कारण उनके ही कारण गोविन्द मिले है। गुरु गोविंद दोहू खड़े का लागू पाय वालिघरि गुरु आप की जिनों गोविंद दियो बताय। भारतीय विचारधारा के अनुसार ही जीवनरचना करने का कार्य करने वाली राष्ट्र सेविका समिति ने भी अपने संगठन के लिए गुरु का महत्व माना है। परंतु किसी व्यक्ति को नहीं अपितु अपनी संस्कृति का चिरप्रतीक अखंड प्रेरणास्रोत भगवद्ध्वज को अपना गुरु माना है। व्यक्ति कितना भी श्रेष्ठ हो, अपूर्ण है, स्खलनशील है उसमें अहंकार, व्यक्तिनिष्ठा निर्माण हो सकती है, समिति का कार्य तत्त्वप्रधान है व्यक्तिप्रधान नहीं है इसी कारण भगवद्ध्वज को ही गुरु का स्थान दिया है।

गुरु शब्द का अर्थ है अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने वाला। जीवनदृष्टि तभी मिल सकती है जब जीवन का वास्तविक उद्देश्य समझ में आयेगा। गुरु के साहचर्य में रहते रहते यह दृष्टि मिलती है। गुरु के प्रभावी व्यक्तित्व के कारण होने वाली यह सहज प्रक्रिया है। हम भी अपने गुरु के सान्निध्य में नियमित रूप से रहते है। इसको देखकर ही अपने तेजस्वी भूतकाल की स्मृतियां जागृत होती है। उन्हीं पराक्रमी पूर्वजों का रक्त हमारी नसों में है यह प्रतीत होने पर विजिगिषु वृत्ति निर्माण होती है। पौरुष को आधार चाहिए प्रेम का, विक्रम को आधार चाहिए वैराग्य का, भौतिकता को आधार चाहिये अध्यात्म का, बुद्धि को आधार चाहिए भावना का। यह सब इस ध्वज में साकार हुआ हैं। अतः उसको देखकर मन में ये भावनाएं पुष्ट होती हैं। केवल उपभोग के लिए नहीं-त्याग और सेवा-समर्पण के लिए हमारा जीवन है यह प्रेरणा स्वाभाविक रूप से मिलती है।

भगवा राष्ट्र निशान

यह भगवा राष्ट्र निशान, फहरता प्यारा
बरसता तेज पावित्र्य स्नेह की धारा
श्री विष्णूका ध्वजदंड
दानवता जो उद्दंड
कर उसका खंडखंड
गरुडके साथ जो नभ में विहरा प्यारा।।१।।
रक्तीमा अरुण संध्या का
दीप्तवर्ण अग्नीशिखा का
यह तिलक भरतभूमि का .
रिपु रुधिर-रंग से रंजित है यह न्यारा।।२।।
यह असुरों का अंतक है
यह सुजनों का पालक है
यह विनतों का तारक है
श्रीरामकृष्ण रणचण्डी दुर्गा काली का फिर न्यारा।।३।।
विक्रम ने इसे चढाया
चंद्रगुप्त ने भी बढाया
श्री अशोक ने फहराया
शक हूण ग्रीक और म्लेंच्छ हटाकर
भरत भूमि को तारा।।४।।
सम्मान समर्थ शिवा का
रजपूत जैन शीखों का
अभिमान यह मराठों का
दिल्ली के तख्तपर घणाघात कर अटक
नदी तक लहरा।।५।।
चारित्र्य हमें सिखलाता
त्याग का मार्ग दिखलाता
संदेश शौर्य का देता
प्राण के बाजि से लढना रण में मोह त्याग कर सारा।।६।।

जीवन सफल बनाने की स्फूर्ति देने वाले गुरु के प्रति अपने मन में कृतज्ञता ओतप्रोत होती है। कृतज्ञता जहां है वहां कुछ देने की इच्छा अपने आप जगती है। अधिक से अधिक देने में, श्रेष्ठ आनंद, समाधान मिलता है। समाज हमें देता है सब कुछ। हम भी तो कुछ देना सीखें। हम भी गुरु को हम अधिक से अधिक दे यह भावना प्रबल होती जाती है। तन से, मन से, धन से, तन-मन-धन-जीवन से गुरु की सेवा, उसका कार्य करने में ही धन्यता लगती है। हमारे गुरु की तन से सेवा करना अर्थात् अपने कार्य हेतु अधिकतम शारीरिक परिश्रम करना, कार्य में प्रत्यक्ष सहभागी होना, अपने कार्य से नये-नये लोगों को जोड़ने हेतु व्यापक सम्पर्क करना। मन से गुरु की सेवा करना अर्थात् इसी कार्य का सतत चिंतन करना। मनुष्य के कर्तव्य के पीछे उसका मन, उस मन का संकल्प, उसका बल होता है। मनुष्य के व्यवहार के पीछे उसके मन की प्रेरणा है। ऐसे आकर्षण शक्तियुक्त मन को इसी कार्य में लगाना यही हमारी साधना है। जहाँ मन लगता है वहाँ तन और धन भी दौड़ते हैं। किसी कार्य के लिये अपना मन देना अत्यंत आवश्यक है - वही साध्य करना है। मन में किसी कार्य की श्रेष्ठता, अनन्यता, आदर, श्रद्धा निर्माण होने पर ही मन वहां रमता है। मन का समर्पण श्रेष्ठ है, तदनंतर धन का परंतु धन के समर्पण का भी अलग महत्त्व है। गुरुदक्षिणा हम इतनी अधिक दें कि उसके पश्चात् चार-छः माह तक हमें अपने निजी खर्चे व्यय में कुछ न कुछ कटौती करनी पडेगी। वे खर्चे करना असंभव होगा। यह धन उत्तम व्यवहार से प्राप्त किया धन हो। हमें एक समय में अधिक राशि देना कठिन होता है, अतः गंगाजली की भी पद्धति है। गंगाजली अर्थात् प्रत्येक माह में थोडी-थोडी राशि गुरुदक्षिणा हेतु एकत्रित करना। प्रत्येक कार्य संचालन के लिए धन की आवश्यकता समझकर अधिकतम धन समर्पण करना है। अपने कार्य में गुरुदक्षिणा का महत्व है। आषाढ़ पौर्णिमा के दिन भारत भर में गुरुपौर्णिमा मनायी जाती है। हम भी शाखा-शाखा में गुरुपूजन करते है। हर सेविका श्रद्धा से भगवद् ध्वज की पूजा करती है और अपनी गुरुदक्षिणा समर्पित करती है। यह समर्पण है, दान नहीं। दान से अहंकार निर्माण हो सकता है, समर्पण में निरपेक्षता, निर्लेपता, एकरूपता का भाव है। दान में पावती, नामफलक, प्रसिद्धि, गौरव की अपेक्षा है। समर्पण में यह कुछ नहीं है इसीलिये तो समर्पण-भक्तिसोपान की अंतिम सीढ़ी है। श्रद्धा से समर्पित धन का एक-एक पैसा उसी कार्य के लिए उपयोग में लाया जाता है यह

संकेत है, विश्वास है। स्नेह और विश्वास अपने कार्य के मूलाधार है।

गुरुपौर्णिमा को व्यास पौर्णिमा भी कहा जाता है। वेदों में जो ज्ञान सूत्रबद्ध था उसका महर्षि व्यास ने 108 पुराणों में विस्तार किया। इसीलिए वे जगद्गुरु बने-ऐसा एक भी विषय नहीं जिसको उन्होंने स्पर्श नही किया। ज्ञान का विस्तार करना यही हमारी जीवनवृत्ति है। समाज के हर एक स्तर तक, जीवन तेजस्वी, अर्थपूर्ण बनाने वाला यह ज्ञान पहुंचना चाहिए। यह कार्य करने वाले व्यास महर्षि का स्मरण करना हमारा कर्तव्य है। हमारे कार्य के माध्यम से हर व्यक्ति का जीवन आलोकित होगा यही उद्देश्य है।

रक्षाबंधन

सामाजिक तथा राष्ट्रीय महत्त्व का उत्सव...

प्राचीन काल से 'रक्षाबंधन' यह हमारी अपनी विशेषता है। देवराज इंद्र वीरवेष पहनकर युद्धभूमि की ओर प्रस्थान करते समय उनकी पत्नी शची ने आरती उतारकर उनकी कलाई में राखी बांधी थी। 'मेरा सतीत्व, मेरा स्नेह एवं सदिच्छा के प्रतीक कोमल किन्तु मजबूत रेशमी धागे युद्धभूमि पर अपने पति की, देवेन्द्र की सुरक्षा करेंगे' ऐसा उसका विश्वास था।

स्त्री-पुरुष संबंधों का इतना उदात्त स्वरूप विश्व में कहीं भी नहीं है। केवल सगी बहन ही भाई को राखी बांधती है ऐसा नहीं तो किसी भी युवक को राखी बांधकर उसको हम भाई बना सकते हैं। मंगल पवित्र नाता निर्माण कर सकते है यह अद्भुत हैं।

कालांतर से भाई बहन का पवित्र नाता प्रकट करने वाला यह पर्व बन गया। सुदूर बसे हुए भाई बहन एकत्र आते है। भाई बहन का रिश्ता मंगल है, पवित्र, निःस्वार्थ है। उसकी सदिच्छा, सतीत्व, स्नेह से गूंथे हुए धागों की राखी बहन-भाई को बांधती है। दोनों परस्पर रक्षा के लिए सिद्ध होते है। बहन आपत्ति में हो तो भाई उसका साथ देता है और भाई धर्मपथ छोड़ता है तो बहन उसे सन्मार्ग पर लाने का प्रयास करती है। जो बह जाती नहीं वह बहन ऐसा कहा जाता है। राखी अनेक धागों से बनती है। वे है परस्परक्षा की तैय्यारी, एकता, स्वाभिमान, त्याग, सेवा, प्रेम, कर्तव्य, निष्ठा, शील, चारित्र्य आदि।

समाज में समरसता एवं भ्रातृभाव निर्माण करने का यह पर्व संगठन के लिए श्रेष्ठ आधार है।

समिति में हम ध्वज को राखी बांधते हैं क्यों कि वह हमारा रक्षक और हमसे रक्षणीय है। उसके अर्थात् भारत माँ के गौरव-सन्मान के लिए कटिबद्ध होते हैं। माँ के सम्मान की रक्षा का बंधन हमने स्व-प्रेरणा से स्वीकार किया है। जब हम ध्वज की सुरक्षा करते हैं तो वह भी हमें कार्य की प्रेरणा देकर हमारी सुरक्षा करता है। 'धर्मो रक्षति रक्षितः'।

रक्षाबंधन के दिन सेविकाएं भी एक दूसरे को राखी बांधकर अपना प्रेम भाव प्रकट करती है। रक्षा बंधन संदेश भी प्रतिवर्ष केन्द्र कार्यालय से सबको भेजा जाता है।

अपनी द्वितीय प्रमुख संचालिका वं. ताईजी- अपने हाथ से राखियां बनाती थी, सेविकाओं को बांधती थी। अडोस पड़ोस में रिक्शा चालक अस्पताल कात्यायनी अर्थात् मतिमंद बालकों का विद्यालय आदि सार्वजनिक स्थानों पर जाकर आप उनसे राखी बांधकर स्नेह भाव रखती थी।

इस दिन की और एक विशेषता है सागर पूजन की। हमारी भारत माँ का वर्णन "सागरवसना पावन देवी" किया जाता है। तीनों ओर से वह सागर से वेष्टित है। इसी जल मार्ग से हम दूर-दूर तक व्यापार के लिए जाते रहते है। जलदेवता की पूजा व प्रार्थना सुरक्षितता के लिए की जाती है। अब तक उछालता सागर धीरे-धीरे शांत होने लगता है। प्रवास के लिये अनुकूल बनता है। प्रथम पूजन, स्वागत बाद में उपयोग यह हमारी भारतीय संस्कृति है। पूजन कृतज्ञताभाव व्यक्त करता है। जो सागर हमें व्यापार के लिये दूर-दूर तक जाने में मदद करता है उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने प्रथम उसका पूजन कर उसे नारियल समर्पित करते हैं। अतः उसको नारळी पौर्णिमा भी

कहते हैं। कृतज्ञता अभिव्यक्ति के साथ-साथ भारतीयों ने सागर पर अधिपत्य भी जमाया है।

इसको श्रावणी पौर्णिमा भी कहते है। जनेऊ बदलना गायत्री मंत्र का जप करना यह इस दिन की विशेषता है। अतः इसे ब्राह्मवृत्ति का पर्व माना जाता है। समाज के अलग-अलग वर्णों के लिये अलग प्रकार से गायत्री मंत्र का जाप किया जाता है।

इस उत्सव की विशेषता स्नेह बंध की है। भाई-बहन, पति-पत्नी, सेवक वर्ग-मालिक-परस्पर राखी बांधते है तो परस्पर विश्वास, स्नेह, सामंजस्य भाव बढ़ता है। अपनत्व की भावना बढ़ाने हेतु यह संपर्क का उदात्त माध्यम है। हरेक शाखा ने एकेक उपक्रम हमेशा के लिए स्वीकारना चाहिए जैसे कि अपंग, अंध विद्यालयों में, शासकीय कार्यालयों में, कारागृह में जा कर राखी बांधना। उनसे संपर्क रखना। महिला छात्रावास में भी हम संपर्क कर सकते है।

शतरंगी रंगों से रंजित

शतरंगी रंगों से रंजित राखी के ये धागे
प्रेरित करते हर पल रहना बढ़ते आगे-आगे
प्रेरित करते ..... ।।धृ.।।
स्नेह रज्जू से बाँध दिये कर मानवता के
आशा-निराशा मे उलझी उर की समता के
कर्म प्राण प्रिय ध्येय बने मन है अनुरागे
प्रेरित करते ..... ।।१।।
राष्ट्र सेवक्य हित युग विवेक ने ली अंगड़ाई
हो स्नेह सामीप्य जगी सारी तरुणाई।
सत्य वीर संकल्पों के सपने है जागे
प्रेरित करते .... ।।२।।
तुम्हें शपथ है भानु-रश्मि से विगलित बलिदानों की
धरती में सोये संचित चिर आनों की मानों की
लो पतवार राष्ट्र नौका की निबिड़ अन्ध तम भागे
प्रेरित करते ....।।३।।
झंझाओं के वातायन में खोकर नहीं उलझना
चक्रव्यूह सी गूढ़ गतिमें सदा संभलना
हिन्दु-हिन्दु सब एक हैं भक्ति उर पागे
प्रेरित करते .... ।।४।।

विजयादशमी

आश्विन शुक्ल दशमी-माँ दुर्गा ने इसी दिन 'महिषासुर' पर विजय पायी थी। दुर्गा यह संगठित मातृशक्ति का प्रतीक है। महिषासुर उन्मत्त हुआ, उसने सुरशक्ति को भी त्राहि भगवान किया। (सुर) देव शूर थे, वीर थे, शस्त्रास्त्रसम्पन्न थे, परंतु विघटित थे। अतः पराभूत होते रहे, अंततः वे एकत्रित आये, उनके संगठित तेज ने माँ दुर्गा का निर्माण किया और हरेक ने अपने पास जो-जो उत्तम था जीवन भर की जो साधना थी, पुंजी थी वह देवी को प्रदान की। माँ दुर्गा सिंह पर आरूढ़ है। सिंह जनशक्ति का प्रतीक है। सब शस्त्रों से माँ दुर्गा ने दुष्टों का संहार किया। वह विजयी हुई। संगठित शक्ति हमेशा अपराजिता शक्ति होती है। व्यक्ति-व्यक्ति ने साधना कर कुछ उत्कटता, विशेषता, निपुणता प्राप्त करनी है और वह राष्ट्रदेवता को अर्पण करनी है। इसी से राष्ट्र बलशाली, विजयशाली बनता है। विजयादशमी यह दैवी प्रवृत्तियों की दानवी प्रवृत्ति पर विजय है। यह हमारी प्रकृति है जीवितध्येय है।

आश्विन प्रतिपदा से माँ दुर्गा की आराधना प्रारंभ होती है। नवमी को शस्त्रपूजन किया जाता है। हमारी लगभग सभी देवताएं शस्त्रधारी हैं। परंतु शस्त्र, आतंक के लिए या निर्बलों पर चलाने के लिए नहीं है। अपितु खल-निर्दालन और साधुरक्षण के लिये हैं। आज के युग में वाणी भी महत्त्वपूर्ण शस्त्र है जो दुधारी है। दुर्गा के पास अनुग्रह तथा निग्रह शक्तियाँ है। सज्जनों का अनुग्रह और दुर्जनों का निग्रह उसका जीवनसूत्र है। वहीं हिंन्दुओं ने अपनाया हैं।

प्राचीन काल में कुछ नियम थे। उनके अनुसार वर्षा ऋतु में युद्ध बंद रहता था। सब अपनी-अपनी खेती पर ध्यान देते थे। आश्विन माह तक फसल तैयार होने के बाद, खेती का काम पूर्ण हो जाता था। वर्षा ऋतु समाप्त होने के कारण रास्ते भी सेना के आवागमन योग्य बनते थे। अतः नवमी को शस्त्र पूजन कर विजयादशमी को युद्ध के लिये प्रस्थान किया जाता था। शूर वीर राज्य की सीमाएं लाँघते थे। आज भी

हमे सीमाएं लांघनी है - स्वार्थ की व्यक्तिवाद की। इन सीमाओं को लाँघने के पश्चात् राष्ट्रीय दृष्टिकोण निर्माण होगा, जीवन का निश्चित उद्देश्य सामने दिखेगा तब सही रूप से सीमोल्लंघन होगा और एकेक व्यक्ति जब इसी संकल्प से प्रेरित होकर स्वार्थ भाव की सीमा लाँघकर आगे बढ़ेगा तब विजया दशमी यथार्थ होगी।

माँ दुर्गा शत्रुओं का संहार करती है। हमने भी अपने आतंरिक शत्रुओं का - काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर का दमन करना है। अहंकार पर नियंत्रण करने से ही जीवन विजयी होता है।

विजयादशमी राष्ट्र सेविका समिति का स्थापना दिन है। 25 अक्टूबर 1936 को वं. मौसीजी ने इसी दिन समिति कार्य प्रारंभ किया। अतः समिति के लिये इस दिन का अनन्य महत्व है। इस दिन प्रभात शाखा में ध्वजारोहण के पश्चात् प्रार्थना की जाती है। इस समय शस्त्रपूजन और पथसंचलन का भी आयोजन होता है।

इस पर्व के साथ इतिहास की एक सुंदर घटना जुड़ी हुई है। कौत्स वरतन्तु ऋषि के एक शिष्य ने शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् गुरु को दक्षिणा देने की इच्छा व्यक्त की। कौत्स को वह मान्य नहीं था। वे निस्पृह थे। उन्होंने कहा 'बेटा तुम्हे दिये गये ज्ञान का उचित उपयोग करो, बस!' परंतु कौत्स अपने निश्चय पर अडिग था। अंत में उन्होंने कहा 100 कोटि स्वर्ण मुद्रा गुरुदक्षिणा में ला दो। भाव था कि यह हार कर चुप बैठेगा। वरतंतु आज्ञा शिरसावंद्य मानकर रघु राजा के पास पहुंचा। स्वर्ण मुद्रा की मांग की। रघु राजा सोचने लगे। 'क्या किया जाए क्योंकि कुछ दिन पहले ही उन्होंने अपनी पूरी सम्पत्ति दान की थी।' उन्होने कहा, 'वत्स, कल आ जाओ।' आपको स्वर्ण मुद्रा मिलेगी। अब राजा सोचने लगा पूरी सम्पत्ति मैंने दान की है, अब इंद्र से युद्ध करके ही स्वर्ण मुद्रा लानी पड़ेगी। इंद्र तक यह विचार पहुंचा। उन्होंने रात को झोपड़ी के पास स्वर्ण मुद्राओं की वर्षा की। दूसरे दिन रघु राजा ने कौत्स को बताया 'मुनिवर ये रही आपकी स्वर्ण मुद्राएं।' वरतंतु ने उसे चाहिए थी उतनी ही मुद्राए ली। अधिक ले जाने के लिए वो तैयार नहीं था। हर व्यक्ति निरपेक्ष निर्मोही, अपरिग्रहव्रती था। अतः उन मुद्राओं का रघुराजा ने दान किया। जिस वृक्ष के पास मुद्राओं की वर्षा हुई थी उसे वृक्ष का नाम है 'आपटे'। उसके पत्ते सोने के प्रतीक समझकर विजयादशमी के दिन घर के बड़े लोगों को दिये जाते हैं। यह सुवर्ण देने से हम निर्मोही रहें यह आदत पड़ जाती है। अज्ञातवास के एक साल के बाद पांडवों ने शमी वृक्ष मे छिपाये शस्त्र निकालकर युद्ध में कौरवोंपर विजय प्राप्त की। शमीपत्र भगवान को चढ़ाये जाते है।

पूर्ण विजय संकल्प हमारा

पूर्ण विजय संकल्प हमारा अथक अंकित साधना
निश दिन, प्रति पल चलती आई राष्ट्र धर्म, आराधना
वंदे मातृभूमी वंदे, वंदे, जग जननी वंदे।।धृ.।।
पुण्य पुरातन देश हमारा, मानवता आदर्श रहा
संस्कृती का पावन मंगल स्वर कोटि कंठ से नित्य बहा
सकल विश्व का मंगल करने सर्वस्विार्पण प्रेरणा।।१।।
सबल लेकर हिंदू चेतना, समरसता का मंत्र महान
अतित की गौरव गाथा का पथदेयक प्रेरक
भविष्य पथ उज्जवल करने शक्ति संचयन साधना।।२।।
मातृभूमि आराध्य हमारी, राष्ट्र शक्ति प्रेरणा
ईश्वरीय है कार्य हमारा जिवन की संकल्पना
देश शक्ति के श्रेष्ठ मार्ग पर चरैवेति की कामना।।३।।

मकर संक्रमण

सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है, अतः इस पर्व को मकर संक्रमण कहते है। संक्रमण अर्थात् सम्यक् क्रमण, योग्य मार्गक्रमण, परिवर्तन। सूर्य का अब उत्तर गोलार्ध की ओर प्रवास प्रारंभ हो जाता है। उसको उत्तरायण कहा जाता है। हिन्दु पंचांग के अनुसार सूर्य 12 राशियों से मार्गक्रमण के बाद दिन प्रति पलपल से बड़ा होने लगता है और ठंड कम होती है। यह पर्व दक्षिण के प्रांतों में पोंगल नाम से मनाया जाता है।

यह मौसम ठंडा रहता है। अतः शरीर के लिये अधिक उष्मांकों की आवश्यकता होती है। खेतों में भी

गन्ना, गाजर, बैंगन आदि होते हैं। अतः उनका उपयोग सभी समाज को देना। हरेक के आवश्यकतानुरूप उसको मिलें इसलिये राशी से जिसको चाहे उतना वह ले जाय यह पद्धति थी इसे 'लूटना' कहा जाता था।

इस पर्व पर विशेष महत्त्व होता है तिलगुड़ का। तिलगुड़ हमें संगठन शास्त्र के कुछ पाठ पढ़ाता है। तिलगुड़ दे कर हम कहते हैं, 'तिलगुड़ लो और मीठी बाते करो।' तिल में स्नेह है और गुड में मिठास। संगठन के लिए ये दोनों बातें अत्यावश्यक हैं। परंतु इन गुणों से परिपूर्ण होने के लिए उन्हे एक लम्बी प्रक्रिया से जाना पड़ता है। तिल धोये जाते हैं। सुखाये जाते हैं। पश्चात् उनको भूंजते है। कूटते है तब तेल निकलता है। संस्कृत में तेल को स्नेह कहा जाता है। सहज स्नेह एवं मृदु वाणी लोगों को आकृष्ट करती है। संगठन कार्य में अन्य-अन्य लोगों को जोड़ने के लिए यह आवश्यक हैं। गुड़ को भी कूटा जाता है। दो भिन्न गुणधर्मी वस्तुओं का संयोग होकर, उत्तम स्वाद निर्माण के लिए प्रक्रिया की आवश्यकता है। समाज में द्वैतभाव नष्ट हो यह सूचित करता है। वैसा ही संगठन में अलग-अलग स्वभाव के लोग आते हैं - उनपर भी एक प्रक्रिया की आवश्यकता है - वाणी की मलिनता, दुर्गुण के कंकड पत्थर दूर फेकने होंगे। वं. ताईजी कहती थी वैसे मुंह में मिश्री रखकर बोलना होगा।

संक्रमण पर्व पर दान किया जाता है। अपने पास है या जो हमने प्राप्त किया है उस पर केवल हमारा अधिकार नहीं है, समाज का भी है - समाज को देने के पश्चात् ही उसका हम उपयोग कर सकते है। ईशावास्योपनिषद् हमें यही सिखाता है कि जो कुछ भी इस विश्व में निर्माण हुआ वह ईश्वर का है। त्याग-भावना से उसका उपभोग करो। किसी के भी धन की अभिलाषा मत करो। उपभोगप्रवण वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन लाना है तो निर्मोही, निर्लेप, निरभिलाषी बनना आवश्यक है।

अंग यथा शरीरस्य करोत्युपकृतिं यते
तथोपकारं संघस्य कुर्वन् जयति सांघिकः।

प्रगति के पथ जाना है

प्रगति पथ की राह लिये। आगे ही तो बढना है।
दैन्य आपदा अपनी मिटाकर। फिर से वैभव पाना है।
प्रगति के पथ जाना है। प्रगति के पथ जाना है।
जयजय भारत जय हे देश। संक्रमण का नवसंदेश।।धृ.।।

हृदय कमल का भाव जिसे। मधुवचनों की गन्ध जिसे
स्नेहमयी रज्जू से गूंथी। सकता की जयमाला है।।१।।

युद्धमेघ नभ में आये। कडाड बिजली थरर्राये।
धुआंधार यदि विपदा बरसे। संगठित हो डटना है।।२।।

स्वार्थ की लहरे टकराती। जीवन नौका बलखाती।
नेता के प्रति निष्ठा रख कर। पर ले तट पर जाना है।।३।।

प्रांतियता का वृथाभिमान। भाषा की है जिद्द महान
अखंड भारत का ही चिन्तन। नित्य हृदय में करना है।।४।।

स्वार्थभाव का त्याग करें। सकत्रित हो बल पायें।
तभी फिर से हम देख सकेंगे। भारत भाग उजाला है।।५।।

इन पांच उत्सवों के अतिरिक्त तीन आदर्श महिलाओं के जन्मदिन स्मृतिदिन मनाना है। प्रांतीय स्तर पर विशेष महत्व होने वाले महिला पुरुषों का भी अंतर्भाव करना है। श्रीराम, श्रीकृष्ण जन्मोत्सव तथा अन्य विविध लोकपर्वो को सामाजिक संस्कार का अधिष्ठान दिया जाना चाहिए। वं. मौसीजी का जन्म दिन आषाढ़ शु. 10 संकल्प दिन, स्मृतिदिन मार्गशीर्ष कृष्ण 12 संपर्क संग्रह-संस्कार के लिये इन विविध उत्सवों का कल्पकता एवं कुशलतापूर्वक उपयोग किया जावे। वं. ताईजी का स्मृतिदिन 'सेवा दिन' के रुप में मनाया जाता है। शाखाओं में दि. 14 अगस्त को अखंड भारत दिन भी मनाया जाता है।

स्वमनः शुद्धये शांतिश्शक्तिस्संघस्य वृद्धये।
शक्त्या संघं विधायोच्चैश्शांतिं संस्थापयेत्ततः ।।

शांति अपने मन की शुद्धि के लिये, शक्ति समाज की उन्नति के लिये है। शक्ति से समाज का उत्तम प्रकार से उन्नति कर शांति की स्थापना करना चाहिये।

मातृत्व का आदर्श - जिजामाता

सूर्य से पहले अभिवादन करें पूर्व दिशा को
शिवबा से पहले अभिवादन जिजामाता को

ऐसा कहा गया है। सूर्य प्रत्यक्ष प्रकाश देता है। शिवबा ने स्वयं पराक्रम से हिंदवी साम्राज्य निर्माण किया। परंतु जिसकी कोख से यह तेजस्वी वीर ने जनम लिया उसको प्रणाम करना अत्यंत आवश्यक है।

शिवाजी महाराज के जन्म से पूर्व 8 शतकों तक मुस्लिमों के सतत आक्रमणों के कारण हिन्दु समाज दुर्बल, स्वत्वहीन बन गया था। उसकी प्रतिकार शक्ति लुप्त हो गई थी। गुलामी की चूभन भी मिटती जा रही थी। 'यही हमारी नियती है। 'भगवान रखेगा वैसा रहना है' यह मानसिकता बन गयी थी। हम 'स्वामी' है की भावना समाप्त होकर किसी ना किसी मुस्लिम राजा की नौकरी करना और उनका पक्ष ले कर दुसरे मुस्लिम राजाओं से लड़ना अर्थात् हिन्दुओं से ही लड़ना उनको काटना, मारना। मुस्लिम राजा की विजय में अपनी विजय मानना यही मानसिकता बनी थी। हम हिन्दु है यह कहलाने मे भी हीनता का भाव अनुभव होता था। राजा अर्थात् वह मुसलमान ही होगा हम राजा नही बन सकते ऐसा क्षुद्रता का भाव हिन्दु समाज में भरा था। हिन्दुओं की उदासीनता के कारण विस्मृति में खोयी अस्मिता को जगाने वाली, हिन्दु राष्ट्र का चाणक्य नीति के अनुसार पुननिर्माण करने वाली, हिंदुस्थान को यवन भूमि बनने से रोकने वाली, एक दृढ़ संकल्पित महिला 17 वी शताब्दी में सिंदखेड के राजा लखुजी जाधव के कुल में जन्मी- नाम था जिजा।

बाल्यकाल से ही हिन्दु देवालयों, श्रद्धास्थानों का मुस्लिमों द्वारा अपमान, महिलाओं का अपहरण ये घटनाएं वह नित्य देखती थी। यह देखकर उसका मन व्याकुल हो उठता-किसकी विजय के लिए हिन्दु मर रहे है? यह शौर्य वे अपनी स्वतंत्रता के लिए क्यों नहीं दिखा सकते? उनको कौन प्रेरित करेगा? उसके इन प्रश्नों का उत्तर देने में कोई भी समर्थ नहीं था। बाल जिजा के मन पर एक-एक खरोंच उठ रहा था।

लखुजी राजे जाधव के घर प्रति वर्ष रंग पंचमी का पर्व धूमधाम से मनाया जाता था। 1605 की रंगपंचमी महत्वपूर्ण थी। उस दिन मालोजी भोंसले अपने पुत्र शहाजी को लेकर उपस्थित थे। शहाजी और जिजा परस्पर गुलाल खेलने लगे। मालोजी ने मजाक में कहा - 'बहुत ही योग्य जोड़ी है दोनो की। मालोजी समतुल्य न होने के कारण मालोजी के साथ यह रिश्ता करने की जाधवराव की इच्छा नहीं थी। जाधव जैसे देवगिरी के यादवों के वंशज थे वैसे भोंसले भी सिसोदिया राजपूत वंश के थे। शौर्य में वे जरा भी कम न थे। अपनी सांपत्तिक स्थिति की बात मालोजी को खलती रही। कहा जाता है कि एक दिन उसको सपना आया कि खेत में विशिष्ट स्थान पर खोदने से उसको विपुल धन मिलेगा, वैसा ही हुआ। निजामशहा ने भी मालोजी का दर्जा बढ़ाया। निजामशहा का यह अप्रत्यक्ष आदेश है यह मान कर जिजा-शहाजी का विवाह ठाठ बाट से सम्पन्न हुआ।

वीररमणी तपस्विनी

शहाजी-जिजा का सहजीवन प्रारंभ हुआ। शहाजी राजा के मन में महत्वाकांक्षा जगी कि दक्षिण में मुस्लिम राज्यों पर रोक लगा कर हिन्दु सत्ताधीश बने। उत्तर दक्षिण के मुस्लिम एक होने पर हिंदुओं का जीना दुर्भर होगा इस उद्देश्य से दोनों में मित्रता नही हो ऐसा

शहाजी का प्रयत्न चल रहा था। हिन्दुओं का स्वतंत्र राज्य निर्माण करने की भी शहाजी की कल्पना थी। शहाजी राजा को परिवार की ओर देखने को समय ही नही मिलता था। परंतु जिजाबाई ने ससुराल के सभी लोगों का मन अपने शालीन व्यवहार से जीत लिया।

फिर भी एक शल्य उसके मन में था। शहाजी राजे निजामशाही के आधार स्तंभ तो लखुजी जाधव निजामशहा के - शत्रु की सेवा में। मायके ससुराल संबंधो में दरार बढ़ रही थी। ऐसी अवस्था में जिजा को पुत्र हुआ उसका नाम संभाजी रखा। निजामशहा ने लखुजी राजा को छलकपट से मारा। चीढकर दोनों कुल एक हो गये परंतु मुस्लिमों की विश्वासघाती वृत्ति से जीजा दुखी हुई। यवनविरोधी हिन्दु शक्ति खड़ी करने की अनिवार्यता बार-बार उसके मन में प्रतीत होने लगी। गर्भस्थ शिशु पर भी उसके संस्कार होते रहे। ऐसी अवस्था में शिवनेरी पर शिवबा का जन्म हुआ। दिन था - 19/2/1630 फाल्गुन कृष्ण तृतीया शके 1551।

शहाजी राजा का सहवास बाल शिवबा को कम ही मिलता था। मुस्लिम अत्याचारों से व्यथित होकर जिजाबाई ने शिवबा के मन में स्वतंत्रता की आकांक्षा निर्माण की। यवन हमारे देश के शत्रु है यह धीरे-धीरे उसके मन में बैठने लगा। विजापुर के दरबार में बादशाह को उसने प्रणाम नहीं किया। बंगलोर में शहाजी राजा के साथ कुछ दिन रहते बाद जिजाबाई के ध्यान में आया कि विलासिता पूर्ण वातावरण में रहने से वह शिवबा को अपनी चाह के अनुसार संस्कार नही दे सकेगी। अतः बंगलोर से पुणे में दादोजी कोंडदेव के संरक्षण में शिवबा के साथ जाकर रहने का निर्णय लिया। जिजाबाई की दृढ़ धारणा थी कि हिन्दुओं की दैन्यावस्था-गुलामी दूर करने के लिये मुझे अपने पुत्र को ही तैयार करना है। गर्भावस्था से लेकर यही विचार प्रबल था - वैसे ही संस्कार बाल शिवाजी को देने हेतु पुणे जैसा और कोई स्थान नहीं था। पति को छोड़कर इतने दूर रहना लोकापवाद था परंतु यह एक महान योजना का अंश है ऐसी स्पष्ट कल्पना होने के कारण वह लोकपवाद सहन करती रही।

प्रभावी गृहस्थी

मुझे ही परिस्थिति बदलने वाला पुत्र निर्माण करना है। यह ध्यान में रखते हुए जिजाबाई ने दादोजी कोडंदेव की सहायता से शिवबा को युद्धकला के साथ-साथ रामायण, महाभारत के माध्यम से जीवन दृष्टि भी प्रदान की। दृढ़ धर्मनिष्ठा, महापुरुषों के प्रति श्रद्धा, सादगी, शुद्ध चारित्र्य, स्वाभिमान आदि गुणों का बीजारोपण भी दोनोनें अपने प्रत्यक्ष व्यवहार से किया। स्त्री माँ के समान है, उसका अपमान राष्ट्र का अपमान है - यह महत्वपूर्ण संस्कार दिया। पद्मिनी की कथा बताते हुए यवनों के राज्य में स्त्री कितनी असुरक्षित है यह बताकर स्त्री का सम्मान तुम्हें ही पुनः प्रस्थापित करना है यह आकांक्षा जगायी।

कसबा पेठ के पुराने गणेश मंदिर का जीर्णोद्धार करके विघ्ननाशक देवता का आशीर्वाद प्राप्त किया और रहने के लिए लाल महल बनवाया। अपराधियों को दंड दे कर धाक निर्माण किया। मालव क्षेत्र में चलने वाले आपसी झगडे न्याय देने हेतु बाल शिवबा और जिजाबाई के सामने लाने की पद्धति दादोजी कोंडदेव ने निर्माण की। प्रत्यक्ष न्यायदान का ही यह प्रशिक्षण था। रांझा के पाटील ने एक महिला का विनयभंग किया। अपराधी को शिवबा के सामने लाया गया। वह क्या न्याय देता है? सबकी आँखें उस ओर लगी थी। उस पाटील की प्रतिष्ठा का विचार न करते हुए शिवबा ने उसके हाथ पैर तोडने का दंड दिया। जिजा के संस्कार प्रभावी रहें। न्यायदान में किसी का पद, प्रतिष्ठा या रिश्तों का दबाव नहीं होना चाहिए। उस क्षेत्र में रहने वाले मावल बालकों को योजनापूर्वक शिवबा के साथ जिजाबाई ने युद्ध का प्रशिक्षण दिया। जिजामाता उनको भी संस्कारक्षम कथाएँ बताती थी। उनके गुणों का, शक्तिबुद्धि का उपयोग देश के शत्रु के

साथ लडने के लिए सामूहिक रुप से करने की प्रेरणा उनके मन में जगायी। यह करते करते सामाजिक समरसता की घूँटी भी पिलायी। भविष्य में प्राणों की बाजी लगाने वाले साहसी सहकारी भी शिवबा को इसी प्रक्रिया से प्राप्त हुए।

स्वराज्य संस्थापना की शपथ

स्वराज्य संस्थापना की कल्पना मन में साकार करते करते ही एक दिन शिवबा अपने साथियों को रायरेश्वर स्वयंभू शिव मंदिर में ले गया और अपने रक्त का अभिषेक करते हुए स्वराज्य स्थापना की प्रतिज्ञा ली। यह देखकर सभी साथियों ने भी शिवबा का अनुकरण किया। स्वतंत्र, 'सार्वभौम हिन्दु साम्राज्य हो यह ईश्वर की इच्छा है' यह भाव स्वयं के और सभी के मन में जगाया। जिजामाता को इसका पता चला तब उसने उनको शाबासी दी। इससे प्रोत्साहित होकर शिवाजी ने तोरणा किला जीतकर स्वराज्य का श्रीगणेश किया।

एक बार शिवबा और जिजामाता चौसर पट खेल रहे थे। शिवबा ने पूछा, 'क्या शर्त रखना है विजय मिलने पर?' जिजामाता के सामने वाली खिड़की से कोंड़ाणा किले पर लहराने वाला हरा झंडा दिख रहा था। विधर्मीयों की अन्यायी सत्ता की वह निशानी थी। जिजामाता ने तुरंत कहा 'मेरी विजय होने पर वहाँ मुझे भगवा निशान चाहियें।' कितनी सूचक व प्रेरक शर्त। आज बेट द्वारका जाते समय श्रीकृष्ण मंदिर से पहले ही जो आँखों को चूभता है वह भी अतिक्रमणकारियों का हरा झंडा। परंतु आज कोई जिजामाता नहीं जिसकी आँखों मे वह चूभेगा।

सौभाग्य या स्वराज्य

शिवबा का प्रताप विजापुर दरबार तक पहुंचा तब उसको रोक लगाने हेतु बादशहा ने शहाजी राजे को अकस्मात् बंदी बनाया और पैरों में बेड़ियाँ डालकर विजापुर के रास्ते पर घुमाया। शिवाजी शरण आयेगा, शहाजी के प्राणों की भीख मांगेगा, ऐसी उसकी अपेक्षा थी। स्वराज्य या सौभाग्य ऐसा प्रश्न खड़ा हुआ तब जिजामाता ने स्वराज्य को अग्रक्रम दिया और कांटें से कांटा निकलने की नीति अपनायी। दिल्ली के बादशाह से संधान बांध कर उनको दोस्ती का आश्वासन देकर उनका दबाव विजापुर के बादशाह पर डाला।

शहाजी राजे का ज्येष्ठ पुत्र संभाजी भी विजापुर दरबार में था। अफझल खान के साथ 1655 में युद्ध पर गया था। ऐसा कहा जाता है कि अफझल खान ने कपट से उसकी हत्या की। जिजाबाई वह भूल नहीं पायी अतः अफझल खान को मिलने जाते समय शिवबा को याद दिलायी। यही वह अफझल खान है जिसने संभाजी को कपट से मारा है। अफझल खान इतना पराक्रमी है कि तुम उसके साथ संधि करो-मिलने मत जाओ ऐसा कायरता का संदेश नहीं दिया।

शुद्धिकरण की नींव रखी

अफझल खान के मन में शहाजी राजा के बारें में द्वेषभाव था। शिवबा को तंग करने के लिए उसने बजाजी निंबालकर को अचानक बंदी बनाया। गले में संखल बांधकर हाथी के पैरों तले कुचलने की सजा दी। नाईक राजे पांढरे ने मध्यस्थी करके वह सजा रद्द करने के लिए यशस्वी प्रयत्न किये। परंतु खान ने एक शर्त रखी। बजाजी को मुसलमान बनना पड़ेगा। बजाजी ने भी बादशाह अपनी बेटी से उसका विवाह करायेगा यह शर्त लगायी। बादशाह ने वह तुरंत मान्य की। यह घटना फलटन का निंबालकर परिवार व शिवबा को बहुत ही अपमानास्पद लगी। परंतु हिंदु धर्म में पुनः उसको लानेका कोई रास्ता नहीं था। एक बार नित्यक्रमानुसार जिजामाता शिखर शिंगणापुर में दर्शन करने गयी तब वहां बजाजी को बुलाया और जैसे ही उसने जिजामाता को देखा, उनके पैर पकड़कर रोने लगा। तब जिजामाता ने उसको पुनः हिन्दु धर्म स्वीकारने के लिये कहा। बजाजी तो आने के लिए उत्सुक था ही। जिजामाता ने मंत्री मंडल को बुलाया-धर्मान्तरण कैसे गलत-जबरदस्ती से था और अब तक यह मामला एक तरफा रहने के कारण हिन्दु समाज का कितना-

संख्यात्मक-राष्ट्रात्मक नुकसान हुआ है, इसलिए इच्छा होने पर शुद्धिकरण नीति कैसी आवश्यक है यह समझाया-बजाजी पुनः हिन्दु बना। उसको समाज में प्रतिष्ठा दिलाने के लिए शिवबा की पुत्री सखुबाई का विवाह बजाजी के पुत्र के साथ करवाया। शुद्धिकरण की प्रक्रिया को प्रतिष्ठा देने के लिए जिजामाता ने यह एक अति साहसी, क्रांति कारी कदम उठाया था।

इसका परिणाम बहुत ही दूरगामी हुआ। मुस्लिमों को भी धक्का लगा। हिन्दु समाज की मानसिकता बदली परंतु बाद के काल में शासनकर्ताओं को, समाज नेताओं को यह भान नहीं रहा और मस्तानी का पुत्र समशेर बहादूर को मुस्लिम ही रहना पड़ा। जिजामाता का अभिनंदन इसलिए अधिक करना चाहिए की एक स्त्री ने यह राष्ट्र हित के लिए सामाजिक क्रांति करायी। स्वराज्य के मंत्री मंडल के कामों में शुद्धीकरण का एक स्वतंत्र विभाग बनाया। मेघातिथी तथा देवल ऋषि के 500 साल बाद स्वधर्म में लौटने का मार्ग खुला करने वाली, अलौकिक दृष्टि वाली एक महिला थी यह अभिमानास्पद है। नेताजी पालकर, पिलाजी तथा बाजी देशपांडे का घर वापसी उदाहरण प्रसिद्ध है। केवल हिन्दु धर्म में वापस लाने तक बात सीमित नहीं थी। परंतु धार्मिक अत्याचार करके धर्मान्तरण करने वालों को कठोर दंड शिव छत्रपति देते थे। गोवा के पोर्तुगीज लोगों ने धर्मांतरित हिन्दुओं को वापस देने को नकारने पर पोर्तुगीजों का शिरच्छेद किया। गवर्नर को घबड़ाकर अपना आज्ञापत्र वापस लेना पड़ा। आज भारत के अनेक भागों में जबरदस्ती से धर्मांतरण और उत्पीड़न हो रहा है। काश! स्वतंत्र भारत के सत्ताधारिओं ने शिवचरित्र पढ़ा होता। स्वा. वीर सावरकर 'छःस्वर्णिम' पृष्ठों में लिखते है -

मुस्लिम धर्म में गये हिन्दुओं को वापस लाना धर्म विरुद्ध है, इस हिंदुधर्मीयों की धारणा के कारण मुस्लिमों को इस्लामी धर्मसत्ता के संरक्षण के लिये कुछ भी चिंता करने का कारण नहीं रहा। उनकी एकमेव चिंता थी की अपना धार्मिक आक्रमण लगातार बढ़ाकर हिन्दुओं के पास राजसत्ता आयी तो भी इस्लामी धर्म सत्ता की कक्षा भारत भर फैलाने के भगीरथ प्रयत्न चलाना है।

जिजामाता के कार्य को और एक प्रशस्तीपत्र

अफझलखान अतुलित बलशाली, हिन्दुद्वेष्टा सरदार था। उसको मारकर शिवाजी, जिजामाता को मिलने राजगढ़ गये, तब उन्होंने कहा - 'संभाजी का बदला लिया - पराक्रम की शर्थ की।' मेरी आँखे तृप्त हुई। भगवान की कृपा से यह स्वर्ण दिन आया है। अफझल खान वध से हिन्दुओं की शक्ति और मुस्लिम भयव्याप्त हुए।

सिद्दी जौहर ने पन्हालगढ़ को घेर लिया था। दूसरी ओर से शाहिस्तेखान आक्रमण कर रहा था। कोई समर्थ सेनापति नहीं था। फिर भी मराठी सेना ने वृकयुद्ध के सहारे छापे मारें। पन्हालगढ़ का घेरा इतना पक्का था कि चीटी भी घुस नहीं सकती थी। सिद्दीजौहर पर बाहर से आक्रमण करने से ठीक होगा ऐसा शिव छत्रपती सोच रहे थे। अपना पुत्र इस प्रकार फंस गया है यह देखकर जिजामाता स्वयं हाथ में शस्त्र लेकर सिद्ध हुई। नेताजी पालकर ने उनको रोका। शिवबा बहुत चतुराई से पन्हालगढ़ से निकल गये। माँ बेटे की भेंट हुई उसका शब्दों में वर्णन करना असंभव है।

1642 से शहाजी राजे, जिजामाता की भेंट नहीं हुई थी। स्वयं को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए पति विरह के दावानल में झोंक कर उनकी तपस्या चल रही थी। 1661 में शहाजी राजे महाराष्ट्र में आये। स्वराज्य प्राप्ति का जिजाबाई को सौंपा हुआ कार्य पुत्र के द्वारा सफल हुआ देखकर उनको बहुत आनंद हुआ। परंतु वापस जाने के लिए वे मजबूर थे। तीन वर्ष बाद उनकी अपघाती मृत्यु हुई। जिजाबाई सती जाना चाहती थी परंतु शिवबा ने उनको रोका। स्वराज्य स्थापना के कार्य में उन्होनें अपरंपार संकट झेले थे। परंतु शहाजी राजा की मृत्यु का दुःख जबरदस्त था। फिर भी खवास खान के आक्रमण का समाचार मिलते ही

मंगलोर की ओर नौदल मोर्चे में व्यस्त शिवबा को उन्होने पत्र लिख कर सचेत किया और उसका पराभव करने की सूचना दी। 'हमारी मनोकामना पूर्ण करने वाले सुपुत्र आप हैं' ऐसी आशा भी प्रकट की। विश्वासघातकी बाजी घोरपडे व सावंत उनको भी छोड़ना नही था। राज्यकर्ता में कितना स्वाभिमान व चतुरस्त्रता चाहिए इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। 1665 में अपनी दिव्यचरिता मातोश्री की सुवर्णतुला शिवबा ने सूर्यग्रहण के समय की और वह सारा सुवर्ण दान कर दिया।

शिवाजी हर संकट के बाद अधिक बलशाली होता है यह देखकर औरंगजेब ने और एक चाल चली। जयसिंह और दिलेरखान को संयुक्त मोर्चे की आज्ञा दी। जयसिंह एक नैष्ठिक हिन्दु कहलाता था। वह दुसरे एक हिन्दु को-जो हिंदवी स्वराज्य स्थापना के लिए कृतसंकल्प था उसको नामोहरम करने में के लिये तैय्यार हुआ। शिवबाको तह करना पड़ा। जब वह औरंगजेब मिलने आग्रा गया तब उसको औरंगजेबने कैद किया। औरंगजेब की कैद से शिवबा कैसे बाहर निकले सब जानते है परंतु वे जब वापस आ कर माँ को मिले तब जिजामाता को कितना आनंद हुआ होगा। आगरा में शेर की गुफा में जाना, प्राण बचाकर आना यह योजना अद्‌भुत थी। उसमें जिजामाता भी सहभागी थी।

प्रथम विवाह कोंडाणा का

जिजामाता ने स्वराज्य की प्रेरणा सभी में कितनी बलिष्ठ निर्माण की थी यह तानाजी मालुसरे कोंडाणा लेने के लिए अपने पुत्र का विवाह छोडकर जाते है इससे सिद्ध होता है। परंतु धीरे-धीरे जिजामाता ने अपना निवास पाचाड में किया। राज्यव्यवस्था से अपना मन हटाकर वे ईश्वरभक्ति में समय व्यतीत करने लगी। अब उनका पुत्र सक्षमता से राज्य संभाल रहा था, स्वप्न साकार हुआ था।

स्वप्न हुआ साकार

अब एक ही इच्छा थी। ऐसे दिग्विजयी पुत्र का राज्याभिषेक देखने की। वह भी समारोह अत्यंत गरिमामय रीति से संपन्न हुआ। जिजामाता का जीवन कृतार्थ हुआ। इसी दिन के लिये जीवन भर उन्होंने प्रयास किये थे। वह उनके बेटे का राज्याभिषेक नहीं था अपितु हिन्दु अस्मिता सिंहासनाधिष्ठित हो रही थी। हिन्दु शब्द उच्चारने के लिए थर्राने वाले हिन्दु का स्वत्व, स्वाभिमान आज गर्व से सिंहासन पर अभिषिक्त होने वाला था। यह हो ऐसी ईश्वर की इच्छा थी - क्योंकि यह ईश्वरीय देश है। ईश्वरी इच्छापूर्ति का साधन बनने की कृतकृत्यता उसमें थी। यह समारोह देखने के बाद अपना जीवित कार्य पूर्ण हो गया है, यह शरीर छोड़ना चाहिए ऐसा उन्होंने सोचा और केवल दो सप्ताह के अंदर सचमुच वह चल बसी। इतने वर्ष अत्यंत ममता से लालन पालन किया हुआ अपना पुत्र तथा स्वराज्य जनता को सौपकर उन्होंने शरीर का मोह छोड़ दिया।

पुस्तक - जिजाऊ-मातृत्व का महान मंगल आदर्श-सेविका प्रकाशन

धन्य जिजाई

स्वयं झुका है जिसके आगे हर क्षण भाग्य विधाता।
धन्य-धन्य है धन्य जिजाई, जगत वंद्य माता ।।धृ।।

जाधव कन्या स्वाभिमानिनी क्षत्रिय कुल वनिता।
शाह पुत्र शिवराज जननी तू अतुलनीय माता।
माँ भवानी आराध्य शक्ति से तुझको बल मिलता।।1।।

राज्य हिंदवी स्वप्न युगों का
अश्व टाप शिव सैन्य, काँपती मुगल सलतनत मन मे।
अमर हो गई तव वचनों हित सिंहगढ़ की गाथा।।2।।

हर हर, हर-हर महादेव हर घोष गगन गुंजा।
महापाप तरु अफझलखां पर प्रलंयकर टूटा।
मूर्तिभंजन अरिशोणित से मातृचरण धुलता।।3।।

छत्रपति का छत्र देखकर तृप्त हुआ तनमन।
दिव्य देह के स्पर्श मात्र से सार्थ हुआ चंदन।
प्रेरक शक्ति बनी हर मन की जीवन जनसरिता।।4।।

देवी अहल्याबाई होलकर

कर्तृत्व का महामेरु

राष्ट्र सेविका समिति ने प्रारंभकाल से ही देवी अहल्याबाई को कर्तृत्व के आदर्श रूप में माना है। गंगाजल के समान शुद्ध, पुण्यश्लोक, देवी, मातोश्री आदि श्रेष्ठ उपाधियों से गौरवान्वित देवी अहल्याबाई अपने इतिहास का एक सुवर्ण पृष्ठ है। देवी अहल्याबाई के प्रति अपने जनसामान्यों की श्रद्धा, आदर तथा अपनेपन की भावनाओं को प्रतिबिंबित करने वाली एक लोककथा बतायी जाती है।

लोकमाता अहल्याबाई

वर्षा ऋतु में नर्मदा उफनती हुई बह रही थी। उसकी लहरें होलकर जी के राजगृह की दीवारो से टकरा रही थी। गांजा के नशे में धुत कुछ लोग आपस में बाते कर रहे थे। अचानक उन लोगों में से एक उठकर अपने हाथों से दीवार को सहारा देता हुआ खड़ा हो गया। अन्य साथी भी उसके बुलाने पर हाथों से दीवार को सहारा देने लगे। वहां खड़े अन्य लोगों ने जब पूछा कि वे इस प्रकार क्यों खड़े है, तब उत्तर आया "क्या, इतना भी नहीं समझते हो? अरे, अपनी माताश्री अंदर है। आओ, तुम लोग भी आ कर माँ को बचाने के काम में जुट जाओ।"

नशे में बेहोश व्यक्ति भी अहल्याबाई की सुरक्षा के बारे में कितना सजग है यह देखकर ऐतिहासिक सत्यासत्यता के अतिरिक्त जनमानस की भावना का दर्शन होता है।

व्यक्तिगत जीवन

देवी अहल्याबाई का जन्म इ. 1725 में वर्तमान अहमदनगर जिले के जामखेड तहसील के चौड़ी नामक छोटे से ग्राम में हुआ। माणकोजी शिंदे की यह कन्या 12 साल की हुई। एक बार पेशवे महाराज ने शिव मंदिर में शिबजी की पूजा में लीन अहल्या को देखा। उन्होंने मल्हारराव से इस बालिका को अपनी पुत्रवधू बनाने को कहा और 20 मे 1737 इस शुभ दिन अहल्याबाई का विवाह खंडेराव के साथ संपन्न हुआ। वैभवसम्पन्न होलकर कुल में गुणसम्पन्न अहल्याबाई ने पदार्पण किया। पति के प्रथम दर्शन होने पर ही अहल्याबाई समझ चुकी कि वह जितनी विरक्त और सात्विक है उतना वह सुखलोलुप और रंगीन प्रकृति का है। ऐसी ही मानसिक अवस्था में वह सन् 1745 में पुत्र मालेराव एवं सन् 1748 में कन्या मुक्ताबाई की माता बनी। पुत्र की दुराचारी वृत्ति से व्यथित सुभेदार मल्हारराव ने अहल्याबाई की योग्यता को परखते हुए उन पर कारोबार का अधिकाधिक दायित्व सौपना शुरू किया।

अग्निपरीक्षा के क्षण

दि. 24 मार्च 1754 कुंभेरी की लड़ाई में खंडेराव की मृत्यु हुई। मल्हारराव के आग्रह पर अहल्याबाई ने सती होने का निश्चय बदलकर प्रजाजनों की माता बनाना श्रेष्ठ माना। अहल्याबाई राजनीति का एक-एक पाठ मल्हार राव से ग्रहण कर पति के चिरवियोग का दुःख कम करने का प्रयास कर रही थी, तभी सन् 1761 में उनको माँ की ममता देनेवाली उनकी सास गौतमाबाई का स्वर्गवास हुआ और तीन साल के अंदर ही सन् 1764 में उनके गुरु, मार्गदर्शक, पितृसदृश्य आधारस्थान मल्हारराव की मृत्यु हुई।

अब शासन का संपूर्ण दायित्व अहल्याबाई पर आया। उनका पुत्र मालेराव अपने दादाजी जैसा दूरदर्शी राजनीति कुशल नहीं था। राजकार्य से भी उसे अधिक रुचि थी जंगली जानवरों का शिकार खेलने में। पूजापाठ के लिए आनेवाले पंडितों के जूतों में तथा दान पात्रों में बिच्छू इ. रखना और उनके दंश से पीड़ित पंडितों की

चीखें सुनने में उसे आसुरी आनंद मिलता था। इन हरकतों को देखकर तथा एक दर्जी के दुर्वर्तन से आशंकित मालेराव ने उसकी क्रूरता से की हुई हत्या से व्यथित अहल्याबाई ने अपने पुत्र को महेश्वर में स्थानबद्ध किया। वहाँ पर ही उसकी मृत्यु हुई।

देवी अहल्याबाई की कन्या मुक्ताबाई का पति यशवंत फणसे, एक होनहार युवक था। मुक्ताबाई का पुत्र जो जन्म से ही कुछ दुर्बल था, उसकी मृत्यु हुई। उनकी उत्तराधिकारी बनाने का देवी अहल्याबाई का सपना भी टूट गया। यशवंतराव इस सदमे को सह नहीं सका, उससे वे बीमार हो गये। तीन साल के अंदर ही वह भी अपने पुत्र के रास्ते चल पड़े। मुक्ताबाई ने पति के साथ सती होने का निश्चय किया। अहल्याबाई अपनी कन्या को इस निश्चय से परावृत्त नहीं कर पायी। देवी तीन दिनों तक अपने कक्ष से बाहर नहीं आयी। नियति को अपनी विजय का आभास हुआ। परंतु लोकमाता अपनी भूमिका नहीं भूल सकी। अहल्याबाई राजकर्तव्य का कठोरतापूर्वक पालन करते हुए मनः शांति एवं आत्मिक बल के लिए धर्मकृत्य मे समय बिताती रही।

सदैव प्रतिकूल परिस्थितियों और दुर्भाग्य से संघर्ष करने के कारण शरीर क्षीण होता गया। दि. 13 अगस्त 1795 श्रावण (भाद्रपद) कृष्ण चतुर्दशी का दिन। गंगाजल सम निर्मल जीवन प्रवाह, अखंड शिवनाम-स्मरण करते हुए शिवप्रवाह में विलीन हुआ।

श्रेष्ठ प्रशासक

देवी अहल्याबाई ने संस्थान का कार्यभार संभाला। तब अनेक संकट उनके सामने थे। राज्य का पुराना अधिकारी गंगाधर चंद्रचूड राघोबादादा के सहयोग से बड़ी सेना लेकर इंदौर आ धमके। अहल्याबाई ने अपनी सेना के महिला पथ को सतर्क किया और राघोबा को कहा, "मेरे पुरखों ने अपने परिश्रम और पराक्रम से यह राज्य प्राप्त किया है। आक्रमण करने वालों को मूंह तोड़ उत्तर दिया जायेगा।" अहल्याबाई ने पत्र भेजा कि 'मेरी महिला सेना पर आपने विजय प्राप्त की तो भी आपको कोई बड़प्पन नही मिलेगा। परंतु उल्टा हुआ तो आपकी ही हँसी उड़ाई जाएगी। इसका विचार करके ही आप युद्ध के लिए आगे बढ़े।'

राघोबा दादा हालात को समझ गये उन्होंने देवी अहल्याबाई को संदेश भेजा - "मै आपसे लड़ने नहीं अपितु आपके इकलौते पुत्र की मृत्यु पर शोक प्रकट करने आया हूं।" अहल्याबाई ने प्रत्युत्तर भेजा। "शोक प्रकट करने के लिए इतनी बड़ी सेना का क्या काम? आप अकेले पधारे, घर आपका है, आपका स्वागत है" राघोबा बाजी हार गये। पालकी में बैठकर आये। इस तरह से देवी ने राज्य को युद्ध के संकट से बचाया।

नारो गणेश नाम के अधिकारी की प्रामाणिकता पर देवी अहल्याबाई को संदेह था। इसलिए उसे बंदी बनाया। तुकडोजी होलकर ने देवी अहल्याबाई को पूछे बिना ही उसे रिहा कर दिया और पूर्व पद पर बिठा दिया। लेकिन अहल्याबाई अपने प्रशासन में यह परिवर्तन सहन नहीं करेगी इस भय से वह बेचैन हुआ। इसलिए महादजी शिंदे के पास जाकर अहल्याबाई को समझाने की प्रार्थना की। महादजी ने कहा, "श्रीमंत पेशवे, मुगल, भोसले इनमें से किसी को कुछ समझाना है तो समझा सकता हूं। किन्तु अहल्याबाई के बारे मे यह असंभव है। क्योंकि वह बहुत सोच समझकर निर्णय लेती है अतः उसे बदलना कठिन है।"

देवी अहल्याबाई के प्रशासन को दिया गया यह एक मौलिक प्रमाणपत्र ही है।

सेनापति तुकोजी, सेना के व्यय के लिए धन की माँग करता था। इसके बारे में सेना के खर्च के लिए राज्य कोष पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।" ऐसी स्पष्ट विचार धारा थी। आवश्यक मात्रा में धन जरूर देती थी परंतु पहले दिये गये धन का पूरा हिसाब प्राप्त होने के उपरान्त ही अगले किश्त देने की उनकी नीति थी।

वीरता का परिचय

देवी अहल्याबाई ने बार-बार अपने अधिकारी नहीं बदले परंतु किसी का एकाधिकार न हो इसके

संदर्भ में भी वह हमेशा सतर्क रहती थी। सेना में भर्ती के बारे में भी देवी अहल्याबाई स्वयं ध्यान देती थी। सेना के प्रशिक्षण के लिए जी.पी.बॉयड नाम के अमरिकन अधिकारी की नियुक्ति की। कर्नल बॉयड इंदौर में रहकर संस्थान की सेना को प्रमाणिकता से प्रशिक्षित करने के लिए लिखित रूप से वचनबद्ध था। अपराधी चाहे कितना भी बड़ा हो, उसकी गलती माफ नहीं की जाती थी। निर्धारित राशिसे अधिक धन किसी से नहीं लिया जाता था। देवी अहल्याबाई ने बार-बार युद्ध नहीं किया। एक बार चंद्रावत से युद्ध उसने होलकर शासन से किये हुए विद्रोह के कारण हुआ। देवी अहल्याबाई को सामान्य महिला समझने में चंद्रावत ने बड़ी भूल की। अहल्याबाई ने सेनानी शरीफभाई को बड़ी सेना के साथ भेजा और स्वयं युद्ध का संचालन किया। होलकर सेना की विजय हुई। सौभाग्य सिंह को तोप के मुंह से बांध कर उड़ा दिया। उससे सारे विद्रोहियों के छक्के छूटे और वे देवी की शरण में आयें। स्वभावतः दयालु होने के कारण अहल्याबाई ने सभी को क्षमा की। इस युद्ध के समय 63 वर्ष की आयु में महेश्वर से रामपुर तक की लम्बी यात्रा करनी पड़ी। नाना फडणवीस को यह मालूम होने पर उन्होंने कहा "मैंने अभी तक देवी अहल्या के धार्मिक कार्यों की ही प्रशंसा सुनी थी, परंतु उसकी वीरता का परिचय आज प्राप्त हुआ है।"

न्याय व्यवस्था

देवी अहल्याबाई की निष्पक्ष न्याय व्यवस्था निश्चित ही अनुकरणीय एवं अभिमानास्पद है। महत्पुर के राजपूतों ने अपनी शिकायत प्रस्तुत करने पर देवी अहल्याबाई ने संबंधित कर्मचारियों को बुलाया और 11 सूत्रीय पत्रक दिया, जो उनकी न्यायबुद्धि का द्योतक है।

रघुनाथ सिंह निवाड़ी नामक एक रसोइया के मरने के बाद वह निपुत्रिक था ऐसे समझकर उसकी 426 रु. 3 आने 6 पाई की संपत्ति राजकोष में जमा कर दी गई। परंतु उनका एक पुत्र है ऐसा पता चलने पर वह राशि तुरंत उस पुत्र को वापस देने का आदेश दिया।

उनके राज्य में न्याय पाना बहुत सरल, सुगम था। उनकी न्यायपद्धति पर नागरिकों की इतनी श्रद्धा कि उनकी आज्ञा न मानना वे पाप समझते थे। श्रीमंत पेशवे द्वारा भी किसी पर अन्याय हुआ है ऐसा मालूम होने पर देवी अहल्याबाई उनसे स्वयं बात करके न्याय दिलवा देती थी।

लुटेरे भील बने शूर सैनिक

उन दिनों भीलों का उपद्रव बढ़ा था। उनको कुछ सामंतों का आश्रय था। देवी अहल्याबाई ने उनके मुखिया को दरबार में बुलाया और लूटमार करके यात्रियों को परेशान करने का कारण पूछा - "सीधे रास्ते से जीने का कोई साधन न होने के कारण यात्रियों को लूटना पड़ता है।" यह जवाब सुनकर उन्हे शस्त्र, वेतन और इज्जत देने की इच्छा देवी अहल्याबाई ने प्रकट की और भीलों पर यात्रियों की सुरक्षा की जिम्मेदारी सौंपी गई। यात्रियों से एक कौड़ी कर के रूप मे लेने की व्यवस्था शुरू की गयी, जो "भील कौड़ी" नाम से प्रसिद्ध है।

डाक व्यवस्था

इसवी 1783 में अहल्याबाई ने महेश्वर से पुणे तक डाक व्यवस्था चलाने का दायित्व पदमसी नेन्सी नामक कंपनी को सौंपा था। डाक लाने-ले जाने के लिए 20 जोडिया थी। डाक पहुंचने में विलंब होने पर प्रतिदिन उत्तरोत्तर देय राशि में कटौती होती थी। कुछ हानि होने पर कंपनी से क्षतिपूर्ति ली जाती थी।

अपमानों का चिन्ह मिटाया

तीर्थयात्रा करते समय देवी अहल्याबाई ने जब भग्न मंदिरों के अवशेष देखे तो उनका मन पीड़ा से व्यथित हुआ। इन मंदिरों में फिर से पूजन, धार्मिक ग्रंथों का पठन हो इसलिए योजना बनाई। राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से बद्रीनारायण से लेकर रामेश्वर तक व द्वारका से लेकर भुवनेश्वर तक अनेक मंदिरों का

पुनःनिर्माण किया। धर्मस्थल शासनावलंबी न हो, स्वावलंबी हो इसलिए उन्होंने उनको भूखंड दान दिये। इस प्रकार के धार्मिक कार्य के लिए संपूर्ण व्यय देवी अहल्याबाई ने अपनी व्यक्तिगत संपत्ति से ही किया। व्यक्तिगत संपत्ति का हिसाब भी वह राजकोष के हिसाब के समान रखती थी। व्यक्तिगत धर्म से अधिक महत्व राष्ट्र धर्म को देती थी। देवी अहल्याबाई ने धर्म क्षेत्र को राजाश्रय दिया परंतु राष्ट्रीय स्वरूप भी प्रदान किया। राजनीतिक प्रदेश भिन्न होंगे परंतु उनको सांस्कृतिक एकात्म रूप दिया देवी अहल्याबाई ने। उनके मानव धर्म का लाभ पशु-पक्षियों को भी मिला। अनेक विद्वान अभ्यासकों को राजाश्रय दिया। गंगाजल की कावड़ निर्धारित स्थान पर निर्धारित समय पर पहुंचाने की व्यवस्था स्थायी रूप से की है। बुनकर उद्योग को प्रोत्साहन स्वरूप अन्न, वस्त्र, निवास, उद्योग के लिए धन एवं तैयार कपड़े बेचने की व्यवस्था की। महेश्वर को राजधानी बनाते समय वहां के ग्रामजनों का पूर्ण सहयोग लिया। अपनी राजधानी सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध बनाने के प्रयास किये।

राजकीय व धार्मिक दृष्टि से देवी अहल्याबाई का जीवन बेजोड़ था।

जय-जयतु अहल्या माता

हे कर्मयोगिनी! राजय योगिनी! जयतु अहल्या माता
जय जयतु अहल्या माता-२।
युगों-युगों तक अमर रहेगी यशकीर्ति की गाथा
जय जयतु अहल्या माता ।।धृ.।।

दीप-ज्योति सम तिल-तिल जलकर
स्वार्थ भावना परे त्यागकर
पूज्य बन सकी सतत् प्रवाहित उज्ज्वल जीवन सरिता
जय जयतु अहल्या माता।।१।।

कर्म भविष्य की प्रबल धारणा
कभी किसी से की न याचना
यज्ञ रूप जीवन ज्वाला में प्रखर हुई तब आभा
जय जयतु अहल्या माता।।२।।

जीवन भर स्वजनों का सह दुःख
कर्तव्यों से हुई न परमुख
नीलकण्ठ सम गरल पानकर क्षण-क्षण जीवन बीता
जय जयतु अहल्या माता।।३।।

अन्न क्षेत्र धर्मार्थ चलायें
मंदिर घाट कुएँ खुदवायें
परार्थ-सुख जीवन हो सार्थक दिव्य चरित्र की गाथा।
जय जयतु अहल्या माता।।४।।

नेतृत्व की तेजस्वी ज्योति - रानी लक्ष्मीबाई

1857 के स्वतंत्रता संग्राम को अपने नेतृत्व से नया आयाम देने वाली साहसी, शूर युवती का चरित्र नित्य प्रेरणा देने वाला है। उनकी तेजस्विता, स्वदेशाभिमान, स्वातंत्र्य प्रेम अभूतपूर्व था।

रानी लक्ष्मीबाई का जन्म वाराणसी में कार्तिक कृ. 14 दि. 19 नवम्बर 1835 को हुआ। मोरोपंत तांबे तथा भागीरथी की यह कन्याका मनकर्णिका मनु-छबेली नाम से परिचित थी। ब्रह्मावर्त में दूसरे बाजीराव पेशवा के आश्रय से तांबे परिवार रहता था। बाजीराव के पुत्र रावसाहब और नानासाहब के साथ मनु की भी शिक्षा प्रारंभ हुई। घुड़सवारी, मैदानी खेलों के साथ-साथ मनु युद्धकला में भी प्रवीण हुई। पेशवाओं के सान्निध्य से उसके मन में स्वतंत्रता का स्फुल्लिंग सुलग उठा। उसकी ही प्रलयंकर ज्वालाएँ 1857 में प्रकट हुई।

तेजस्वी बाल्यकाल

मनु के बाल जीवन की एक दो घटनाएं प्रसिद्ध है - वह छोटी थी तब उसको गंगा माता के किनारे जाकर बैठने की आदत थी। ऐसे ही एक दिन घाट पर नदी प्रवाह में पैर डालकर वह बैठी थी तब 2-4 अंग्रेजी सिपाही आयें और घाटों पर बैठने वाले सभी को हटाने लगे और 'मॅडम आ रही है उठो, हटो' का शेर मचा। सब लोग डर के मारे भागने लगे पर मनु वैसी ही बैठी रही। बार-बार बताने पर यह छोटी सी बालिका मान नहीं रही है ऐसा देखकर सिपाही गुस्सा हो गये। छोटी सी मनु निर्भयता से उनको पूछती है 'कौन आ रहा है - सबको क्यों हटा रहे हो?' जब पता चला की कोई अंग्रेज अधिकारी की पत्नी आ रही है तो मनु ने कहा - 'वह कौन होती है, हमको हटाने वाली।' यह गंगामैय्या हमारी है। हम नहीं हटेंगे।' वे जबरदस्ती से उठाने लगे तब वह चिल्ला कर प्रतिकार करती रही।

नाना साहब और राव साहब, घुड़सवारी का अभ्यास कर रहे थे तब एक बार घोड़ा बेकाबू हो गया और नानासाहब गिर गये। मनु ने यह देखा तब वह जोर से हंस पड़ी। नानासाहब को बहुत गुस्सा आया। नोकर उनको उठाकर ले गया। दूसरे दिन मनु उनको देखने गई। नानासाहब का गुस्सा उतरा नहीं था। मनु को आती हुई देखकर उन्होंने दीवार की ओर मुँह फेर लिया। मनु के पूछने पर उन्होंने बताया 'हम गिर गये और तुम हसं रही थी? अगर तुम गिर जाती तो?' मनु अब तक मजाकी मानसिकता मे थी अब गंभीर होकर बोली - 'एक तो मैं घोड़े पर ऐसी पकड़ रखूंगी की घोड़ा बेकाबू होकर मैं कभी गिरूंगी नहीं और यदा कदा गिरुंगी तब रोऊंगी नहीं। जो कुछ होगा धैर्य से सहन करुंगी।' मनु की नियति ही मानो बोल रही थी।

राज परिवार के होने के कारण नाना साहब रावसाहब हाथी पर बैठ रहे थे। छोटी मनु के मन में भी इच्छा हुई हाथी पर बैठने की तब उसको कहा गया 'तुम तो हमारे आश्रित की बेटी हो।' हाथी पर बैठने की इच्छा कर रही हो। हाथी पर राजवंश के लोग ही बैठते है।' मनु को घोर अपमान महसूस हुआ। उसने कहा आप भी देखेंगे कि मेरे दरवाजे पर 4-4 हाथी झूलेंगे। और सचमुच मनु का विवाह झांसी के राजा गंगाधर पंत नेवालकर से हुआ। हाथी पर बैठकर उसने रानी की शान से झांसी में प्रवेश किया। तुरंत उसने एक हाथी बहुत सजाधजाकर ब्रह्मावर्त में भेट रूप भेज दिया। ऐसी यह मानिनी।

नेवालकर (पूर्व इतिहास)

गंगाधरपंत के पूर्वज रघुनाथराव इ.स. 1770 में झांसी के सूबेदार बने। उनके भाई शिवराम भाऊ 1771 में सूबेदार बने। बसई समझौते के पश्चात् 1804 में अंग्रेजी और शिवराम भाऊ में समझौता हुआ

उसके अनुसार झांसी का राज्य वंशपरम्परागत शिवरामभाऊ के वंशजों को ही मिलेगा ऐसा तय हुआ। शिवराम भाऊ के पुत्र गंगाधर राव इ.स. 1842 में झांसी के अधिपति बने। 30 लाख रु. झांसी की आमदनी थी, उसमें से 2 लाख रु. आमदनी वाला हिस्सा अंग्रेजों ने झांसी में व्यवस्था हेतु रखी अपनी सेना की व्यवस्था के लिये रख लिया।

वैभव सम्पन्नता

गंगाधर राव के राज्य में शासन तथा न्याय की उत्तम व्यवस्था थी। ठाकुर, बुंदेले का विद्रोह उन्होंने दबाया। परंतु वे रसिक, कलाप्रेमी थे। कलाकारों को आश्रय देते थे। उनका महालक्ष्मी का मंदिर जगमगाता था। उनके पास 92 हाथी, 100 घोड़े, 5000 घुड़सवार व 5000 पदाति थे। स्थान-स्थान पर बगीचे, तालाब, नाट्यगृह थे।

ऐसे सुंदर, वैभव सम्पन्न राज की स्वामिनी मनु बनी। गंगाधर राव को पुत्र नहीं था, पत्नी का स्वर्गवास हुआ था। कला सक्त राजा को संभालने वाली रानी आयेगी तो वह झांसी को बचायेगी। अंग्रेजों की आंखे इस राज्य पर गड़ी थी। मनु जैसी दृढ़निश्चयी, देशप्रेमी युवती उनसे टक्कर ले सकती है इस राजनीतिक उद्देश्य से यह विवाह हुआ ऐसा माना जाता है।

1842 में गंगाधरपंत और मनु का विवाह हुआ। दोनों की आयु में काफी अंतर था। 1851 में लक्ष्मीबाई को पुत्र हुआ परंतु वह अल्पायु रहा। इस आघात से गंगाधरराव का स्वास्थ्य गिरने लगा। राजवैद्यों की दवाईया व रानी लक्ष्मीबाई की सेवा का विशेष उपयोग नहीं हो रहा था। अतः एक बालक गोद लेने का निर्णय किया-गोद लिये हुए बालक का नाम दामोदर रखा गया। इस समारोह में झांसी राज्य के पॉलीटिकल एजेंट एलिस, सेना का प्रमुख अधिकारी मेजर मार्टिन, मोरोपंत आदि लोग उपस्थित थे। कंनी सरकार को दत्तक विधान की स्वीकृति देने हेतु आवेदन पत्र गंगाधर राव ने भेजा। समय-समय पर अंग्रेजों को दी हुई सहायता एवं उनके साथ किये हुए संधि की 9 वी शर्त (झांसी का राज्य वंश परम्परा से नेवालकरों के पास रहेगा) का स्मरण दिलाया गया।

झांसी अनाथ हुई

आखिर गंगाधरराव का शरीर दि. 20 नवम्बर 1853 को शांत हुआ। झांसी शहर शोक सागर में डूब गया। लक्ष्मीबाई पर तो कुठाराघात हुआ। मेजर मार्टिन और एलिस ने सांत्वना पत्र भेजा परंतु उसी समय उन्होंने राज्य का खजाना मुहरबंद किया। शिंदे की 6वीं टुकड़ी को उसके संरक्षण का दायित्व दिया। श्री गंगाधरराव के पत्र का उत्तर नहीं आने पर लक्ष्मीबाई ने 19 फरवरी 1854 को गवर्नर जनरल के पास पुनः आवेदन पत्र भेजा।

विस्तारवादी नीति

लॉर्ड डलहौजी की नीति थी कि किसी का भी दत्तक विधान मंजूर नहीं करना और वह राज्य कंपनी राज्य से जोड़ना तथा अंग्रेजी राज्य का विस्तार करना। अतः रानी लक्ष्मीबाई के पत्र का उत्तर एक ही आने वाला था - आया भी - झांसी का राज्य अंग्रेजी राज्य में विलीन करो। 'दत्तक विधान को मान्यता नहीं दे सकते।' एलिस यह पत्र लेकर रानी लक्ष्मीबाई के दरबार में पहुंचा तंब सिंहनी जैसी गरज कर वह बोली - मैं मेरी झांसी नहीं दूंगी। एलिस को ऐसी अपेक्षा नहीं थी। अपनी भूमि, अपना राज्य विदेशियों को सौंपकर गुलाम बनना स्वीकार करना रानी के लिए असंभव था। परंतु अंग्रेज बलशाली थे। उनकी हड़पनीति के शिकार झांसी जैसे, पंजाब, सातारा, नागपुर, अयोध्या आदि अनेक राज्य थे।

महारानी लक्ष्मीबाई ने राजनीति के तहत अपना गुस्सा पी लिया और प्रतिशेध का अवसर खोजती रही। झांसी आते ही युद्धकाल का अपना शौक पति को बताकर महिला पथक तैयार करावाये थे। उसने कभी किसी गहने की, वस्त्र की चाह नहीं रखी। इसका गंगाधरराव को आश्चर्य लगता था। उन दिनों में महिलाओं का घर से बाहर मैदान में आना समाज को मान्य नहीं था परंतु रानी लक्ष्मीबाई ने अपना शौक पूरा

करने के लिए पति को मना लिया। उसका अब उपयोग होगा यह सोचकर रानी ने अपने व्यक्तिगत आपत्ति के कारण शोक में न डुबते हुए महिला सैनिकों का अभ्यास चलता रहे यह देखा।

विस्फोट की ज्वालाएं

7 मार्च 1854 को झांसी राज्य की स्वतंत्रता पूरी तरह समाप्त हुई। अंग्रेजों की सत्ता आकर 100 साल पूरे होने वाले थे। अंग्रेजों के अत्याचार बढ़ते ही जा रहे थे। अपनी भारत माता को धीरे-धीरे गुलामी के शिकंजे में फंसाने का उनका कुटिल षड्यंत्र सभीके ध्यान में आया था। विद्रोह की ज्वाला भीतर-भीतर सुलग रही थी। 31 मई सार्वत्रिक विद्रोह एक साथ करने की योजना में अनेक लोग सम्मिलित हो रहे थे। रोटी और कमलपुष्प का संकेत चिन्ह था। परंतु अचानक 10 मई 1857 को विस्फोट हुआ मेरठ की छावनी में बंदूक की गोलियों को गया या सुअर की चर्बी लगाई जाती है, वह मुंह से खोलना पड़ता था यह धर्मविरुद्ध आचरण का पाप हम कर रहे है ऐसी भावना फैलती गयी। सैनिक जब बाजार में जाते थे तब महिलाएं उनको चिढ़ाती थी या कभी चूड़ियां भी भेंट करती थी। चरबी की घटना के कारण छावनी में क्षोभ फैला व 10 मई को मंगल पांडे ने विद्रोह कर दिया उसको तोप से उड़ाया गया - अन्य 90 सैनिकों को 10 साल के लिये कारावास में भेजा गया। इस घटना ने तो आग में घी डाल दिया। अंग्रेज अधिकारियों की हत्या करना, उनके बंगलों को आग लगाना, कारागृह तोड़ना आदि का सिलसिला चल पड़ा। सैनिक अपनी छावनी छोड़कर दूसरी छावनियों में जा जाकर वहां विद्रोह की ज्वाला जलाने में लगे। 4 जून 1857 को झांसी सेना की 7 वीं टुकड़ी ने झांसी के किले में प्रवेश कर अपना अधिकार जमा लिया। गोरे अधिकारी गोलियों से भूने जाने लगे। उन्होंने किले में आश्रय लिया। क्रांतिकारी वहां भी पहुंचे। वहां भी गोलियाँ चली। अंग्रेजों ने संधि का निशान फहराया। किला क्रांतिकारियों की घोषणा थी - 'खुल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का, अमल रानी साहिब का।' 8 जून को किला रानी को सौंप कर क्रांतिकारी दिल्ली की ओर बढ़े।

8 जून 1857 से 4 अप्रैल 1858 तक रानी का अत्यंत गौरवशाली कार्यकाल रहा। परंतु उनको घर के ही शत्रुओं से पहले निपटना पड़ा। सदाशिवराव पारोलकर झांसी के राज्य के उत्तराधिकारी के नाते खड़े और करेरा का किला अधिकार में लिया। रानी लक्ष्मीबाई ने सेना की सहायता से वह किला जीत लिया। ओरछा के दीवान नत्थे खां का आक्रमण भी रानी ने सफलता पूर्वक लौटाया - उससे युद्ध का खर्चा वसूल किया।

तेजस्वी व्यक्तित्व की धनी

रानी लक्ष्मीबाई अत्यंत तेजस्विनी थी। दरबार में वह अत्यंत आत्मविश्वास से शुभ्र वेश धारण कर या पुरुषी वेश पहन कर फेटा बांधकर आती थी। कुशल रीति से न्याय करना, गुणवन्तों का सम्मान करना, कर्मचारियों से भी सम्मानपूर्वक व्यवहार करना, निर्भयता, धैर्यशीलता, साहस ये उनके कुछ विशेष गुण थे। शूरवीर सैनिकों को भी उदार मन से सहाय्य करती थी। अपने सैनिकों के मन में उसके बारे में इतना आदर, श्रद्धा थी कि वे उसको माँ मानते थे। ऐसा कहा जाता है कि युद्धा में घायल सैनिकों की वह स्वयं पूछताछ करके मलमपट्टी करती थी। बहुत घायल या मरणोन्मुख सैनिकों को उनकी अंतीम इच्छा पूछती तब किसी ने कुछ मांगा नहीं केवल उनके मातृस्पर्श की अपेक्षा की। उनके मन में विश्वास था कि हमारी रानी हमारे परिवार की पूरी चिंता करेगी। मातृत्व की झालर होने वाला ऐसा नेतृत्व यही हमारी परम्परा है। नेता के बारे में पूर्ण विश्वास यही नेता का बल है।

अपने 11 मास के कार्यकाल में रानी लक्ष्मीबाई ने काफी शस्त्र व बारूद का संग्रह किया। तोपें व बारूद बनाने के कारखाने भी प्रारंभ किये। दूरदर्शिता के कारण उसने समझ लिया था अंग्रेजों से घनघोर युद्ध करना पड़ेगा। और सच 21 मार्च को ह्यू रोज झांसी में पहुंचा। मार्ग में सागर, वाणपुर, शहागढ़ के क्रांतिकारियों पर विजय प्राप्त की थी। ह्यू रोज ने

मौके के स्थान पर मोर्चे लगाये। रानी लक्ष्मीबाई के पास भी शक्तिशाली 81 तोपें थी। किले के प्रत्येक बुर्ज से तोपें चल रही थी। खुदाबक्ष व गौसखान ये दो अत्यंत एकनिष्ठ तोपची थे। दि. 25 मार्च को अंग्रेजों ने नये मोर्चे बनाकर किले के मौके के स्थान पर गोलों की वर्षा की। पानी के तालाब तक जाना ी मुश्किल हो गया किले की दीवारों में छेद हो गये। रातरात वे दुरुस्त किये जाते थे। स्त्रियां भी पीछे नहीं थी। बारुद, खाद्य सामग्री पहुंचाने का काम वे करती थी। इतना ही नहीं तो तोपची थोड़ा विश्राम करते थे तब तक तोपें भी चला लेती। रानी साहिबा की सौतेली माँ ने भी तोपें चलाई।

परंतु भेदवृत्ति के जयचंदों की अपने देश में कमी नहीं है। एक बुंदेला सैनिक ने अंग्रेजों को मोर्चा लगाने का मौके का स्थान बताया। रानी साहिबा के निवास स्थान के सामने वाले मैदान पर ही गोला-बारुद का कारखाना था वहां एक गोला आकर गिरा-जोरदार धमाका हुआ और अपरिमित हानि हुई।

दि. 1 एप्रैल को 20 हजार की सेना लेकर सहाय के लिए तात्या टोपे आ रहे थे। उनके सैनिक प्रशिक्षित तो थे नहीं। रास्ते में उनको घेरकर अंग्रेजों ने हमला किया तो उनको भागना पड़ा। उनकी गोला बारूद अनायास अंग्रेजों को मिली। फिर भी अंग्रेज झांसी के किले में ही नहीं घुस पाये। झांसी के सैनिक ही नहीं तो नागरिक भी दीवारों पर चढ़-चढ़कर प्रतिकार करने लगे, परंतु एक और जयचंद निकला- उसने किले का ओरछा दरवाजा खोल दिया- अंग्रेज आसानी से अंदर घुस गये। रानी ने अब रणचंडी का रूप धारण किया वहां दौड़कर गयी और शत्रु की जोरदार कतल करना प्रारंभ किया। परंतु अंग्रेजों की संख्या इतनी अधिक थी कि सैनिकों ने उनको वापिस लौटने को कहा। रानी को किले पर लौटना पड़ा। झांसी के रास्ते-रास्ते पर नागरिकों की कत्ल लगातार 3 दिन होती रही। शव ही शव बिखरे थे। दुर्गंध चारों ओर भर गयी। रानी का महल भी लूटा गया। उनका अमूल्य ग्रंथों का संग्रह भी ध्वस्त किया गया। काफी क्षति पहुंची थी। परंतु वे हमारी बुद्धि तो नहीं जला पाये।

प्रजावत्सल रानी माँ का हृदय अपने लोगों की यह दुर्दशा देखकर द्रवित हुआ। वह अतीव निराश हो गयी। फिर भी सभी से की हुई बात के अनुसार किले से बाहर निकलकर राव साहब की सेना से मिलकर प्रयत्न करने का तय हुआ। इस युद्ध में रानी लक्ष्मीबाई ने युद्ध का उत्कृष्ट संचालन किया।

सर ह्युरोज को यह पता चलने पर वह आश्चर्य चकित हुआ। झांसी से कालपी 130 मील की दूरी 22 घंटो के अंदर काटकर वह कालपीं पहुंची। तात्या टोपे ने युद्ध का नेतृत्व किया परंतु शय मिला नहीं। फिर भी विचलित न होते हुए रानी ग्वालियर की ओर बढ़ी। परंतु शिंदे के साथ नहीं मिली। युद्ध में सेना की व्यूहरचना की उनकी कुशलता बेजोड़ थी। परंतु उनके हाथ में उस दिन नेतृत्व नहीं था। इस भीषण रण में उनकी सखी सुंदरबाई पर हमला करने वालों को उसने मौत के घाट उतारा। महारानी लक्ष्मीबाई को पकड़कर देने वाले को अंग्रेजों ने 20,000 रु. का इनाम किया था। अंग्रेजों का घेरा पारकर पुनः बाहर निकलने की योजना बीच में आने वाले नाले के कारण सफल नहीं हुई। सिर फट गया एक आँख बाहर आयी परंतु वह अडिगता से लड़ती रही। रणक्षेत्र में ही उनकी प्राण ज्योत शांत हुई। गंगादास बाबा की कुटिया में उन पर अग्नि संस्कार किया गया - 'मैं क्या मेरा एक बाल भी अंग्रेजों को नहीं मिलेगा' यह उनकी प्रतिज्ञा उन्होंने सच करके दिखायी। वह दिन था दि. 18 जून 1858 ज्येष्ठ शु. 7

क्रांतियुद्ध में सतत अग्रेसर रहकर हजारों वीरों का स्फूर्ति स्थान होने वाली रानी लक्ष्मीबाई की युद्धकुशलता किसी पुरुष से कई गुना श्रेष्ठ थी। उनकी तेजस्विता का प्रभाव शत्रु पर भी पड़ा था। राजमाता के नाते उन्होंने काफी समाज कार्य किया। सामान्य लोगों में वे घुल मिलकर बातचीत करती थी उनके सुख दुःख पूछती थी। अपनों के लिए ममतामयी

माँ होने वाली यह सुजनता की मूर्ति, राष्ट्रीय भावना से प्रेरित हुई थी। हाथ में तलवार लेकर रणरागिणी बनकर बिजली जैसी चमकती थी तब शत्रु थर्रा गये।

अध्ययन हेतु पुस्तके

1) झांसी की रानी - वृंदावनलाल शर्मा
2) क्रांतिकथाएं - श्रीकृष्ण सरल

खड्गधारिणी तुम्हें देत मान वंदना

खड्गधारिणी तुम्हें देत मानवन्दना
शत्रुसंहारिणि तुम्हारी आज अर्चना।।धृ.।।

शाम शांत धीर मूर्ति तेजोमयि दिव्यकांति
अश्वारूढ़ देवि क्रान्ति! बार-बार वन्दना।।1।।

स्वाभिमान दीप्त ज्योति बिजलीसी चंचल गति
वीरों को दे रही चंडीमूर्ति चेतना।।2।।

बीत गया वत्सरशत युद्धानल सर्व शांत
स्वतन्त्र राष्ट्र आज स्मरें तुम्हारी तपः साधना।।3।।

राणी लक्ष्मी अमर नाम आर्य नारी का विक्रम
पुण्यरूप लो हमारी नम्र पूज्य भावना।।4।।

मै हिंदु नारी हूं

मै खड्ग धारिणी हूं-दुष्टों का संहार करने के लिए मै दशप्रहरणी दुर्गा हूं। समर में नारी शक्ति को जगाने के लिए मैं सुकोमल कमल वासिनी लक्ष्मी हूं। विश्व का वैभवशाली सुशोभन करने के लिए मैं वीणाधारिणी सरस्वती हूं। विद्या दायिनी वीणा की झंकार सुनाने के लिए मैं आकाश हूं। सहिष्णुता के गुणों से - धरणी हूं। सबकी आश्रयदायिनी होने से - मैं वायु हूं। सबकी जीवन दायिनी होने से - मैं वह मिट्टी हूं जिससे मधुर फल सुगंधित पुष्प देनेवाले वृक्षलता निर्माण होते हैं। मेरा धर्म है नारीत्व अर्थात् मातृत्व, जिससे मै भविष्य में तेजस्वी विजीगीषु हिंदु राष्ट्र का निर्माण कर सकूं। क्यों? क्योंकि मैं हिंदू नारी हूं।

जय जय कार करो लक्ष्मी का

जय जयकार, जय जयकार,
जय जय कार करो लक्ष्मी का
जो रणचण्डी का अवतार।।धृ।।

तांबे कुल में जनम लिया
जिन मातुपिता का यश फैलाया
रानी बन झांसी में आई,
राजवंश का मान बढ़ाया
सैनिक शिक्षण दे सखियों को,
महिला पथक किया तैयार।।१।।

हुआ आक्रमण जब झांसी पर,
शासन छोड़ो बोला गोरा
मेरी झांसी कभी न दूंगी,
कडकी बिजली काँप उठी धरा
रक्षण करने हिन्दू राष्ट्र का,
हुई भवानी तब साकार ।।२।।

स्वतंत्रता के प्रथम समय की,
सेनानी यह वीर शिरोमणि
किया युद्ध का सफल संचलन,
सरण में चमकी थी रणलक्ष्मी
दुष्ट दुर्जनों महिषासुर का मर्दिनि ने
ही किया संहार ।।३।।

एक बार पुनि आज दुहिते
करती माता तुझे स्मरण है
पारतंत्र्य की लोहशृंखला
करने लगी पुनः झन् झन् है
स्वतंत्रता की ज्योति जलाओ
सुनो हमारी आर्त पुकार।।४।।

भारतीय संस्कृति के प्रतीक

प्रतीक शब्द का अर्थ है चिन्ह। भाषा से लेकर गणित जैसे हरेक विषय में चिन्हों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। ॐ, स्वस्तिक, कमल, कलश, दीप, यज्ञकुंड, वटवृक्ष आदि भारतीय संस्कृति की विशेषताएं दर्शाने वाले कुछ प्रतीक है। समय समय पर हम उन्हें, भगवान के सम्मुख, रंगोली या कागज पर उतारते हैं परंतु उनका आशय जीवन में उतारने से जीवन गौरवपूर्ण बनेगा।

ओंकार

ॐ यह परब्रह्म का अनुपम ऐसा नाम है। ॐ यह सृष्टि का प्रथम निनाद है। परमेश्वर की वाङमयीन मूर्ति अर्थात् प्रत्यक्ष रूप है। ओम् में अ-उ-म् में दो स्वर, एक व्यंजन अर्धचंद्र और अर्धचंद्र में बिन्दु। 'अ' स्वरयंत्र से निकलता है। 'ऊ' के उच्चारण में होठ सहकार्य करते है तो 'म्' उच्चारते समय मूंह बंद होता है।

अ, ऊ, म् अर्थात् अ-ब्रह्म (उत्पत्ति) उ-विष्णु (स्थिति) म्-महेश (लय)। वैसे ही स्थूल, सूक्ष्म, कारण देह के भी बोधक है। अर्धचन्द्र मातृ का, महाकारणदेह-ज्ञान का, और बिन्दु पूर्णत्व का, ध्येय लक्ष्य का प्रतीक है। यह वाणी का मूलमंत्र है। 'ओ' के लंबे उच्चारण से हृदय को लाभ होता है। तो लंबा म् मेंदू को शक्ति देता है।

भारत का प्रत्येक कार्य ॐ से प्रारंभ होता है। यौगिक प्रक्रिया में भी ॐ का अत्याधिक महत्व है। आँखों से ॐ की आकृति देखना, मुख से उच्चारण करना और ॐ की यह ध्वनि कानों से ग्रहण करना-धीरे-धीरे मन ॐकार रूप बनता है। गणेश का रूप आडे ओम् जैसा है।

स्वस्तिक सु-अस्ति-क

स्वस्ति शब्द का अर्थ है कल्याण, शुभ। स्वस्तिक का अर्थ शुभ करने वाला, कल्याण करने वाला। देवत्व की शक्ति और मानव की शुभकामनाओं का मनोहारी संगम स्वस्तिक में दृग्गोचर होता है।

स्वस्तिक यह गतिमानता का प्रतीक है। चक्र हमेशा सीधे हाथ से घुमना शुभंकरी शक्ति के लिये आवश्यक है। विश्व की गति से हम परिचित हैं। पृथ्वी प्रदक्षिणा करती है। सूर्य तथा अन्यान्य ग्रहगोल अपनी निश्चित दिशा में भ्रमण करते हैं। विश्व चक्र सुचारु रूप से चलता है।

कुछ स्थानों पर स्वस्तिक के स्व केन्द्र बिन्दु को विष्णु का नाभिकमल और चार भुजाएं अर्थात् उसके शंख चक्र गदा पद्म युक्त चार हाथ माने जाते हैं। कुछ स्थानों पर सूर्य तथा गणपति का आसन ऐसी उसकी मान्यता है। भारत के सभी पंथोपपंथों में उसे शांति, समृद्धि और मांगल्य का प्रतीक माना गया है।

संपूर्ण सृष्टि पुरुष और प्रकृति के संयोग से चलती है। स्वस्तिक की - ये दो रेखाएं प्रकृति-पुरुष की और उसकी उपभुजाएं चार आश्रम की तथा चार पुरुषार्थ की द्योतक है। चार आश्रम और चार पुरुषार्थ जीवन यशस्विता के साधन है। धर्म यह मनुष्य जीवन

की नींव है और मोक्ष यह लक्ष्य-अर्थ और काम यहां तक पहुंचने की सीढ़ियां हैं अर्थ-काम की साधन-शुचिता जीवन सार्थ बनाती है।

स्वस्तिक यह आकृति हम कितनी भी बढा सकते हैं। मध्य बिंदु से निकली हुई रेखाएँ चारों दिशा में जाती है। विकास के लिये दिशा बदल भी करती है। फिर भी एक विशेष पद्धति से। मध्यबिंदु से जुडकर ही यह विकास होता है वैसे ही मध्यबिंदु हमेशा दायें बाजू रहे यह पद्धति है। हम मंदिर में जैसे भगवान को दायें तरफ रख कर प्रदक्षिणा करते है उसी तरह। केंद्र बिंदु काट डालो तो भुजाएँ तितर बितर हो जायेंगी। स्वस्तिक की तरह ही हम हमारे कार्य को विविध आयाम जोड सकते हैं। किन्तु हमारे ध्येय से वे स्वतंत्र न होने चाहिये।

दीप

दीपज्योतिः परब्रह्म दीपज्योति र्जनार्दनः
दीपो हरतु पापानि दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते।
दीप प्रकाश का द्योतक 'तमसो मा ज्योतिर्गमय।'

दीप प्रकाश का द्योतक है। प्रकाश है ज्ञान का इसी लिये उसको ब्रह्मचर्याश्रम का प्रतीक माना गया है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' इस ध्येय का मार्गदर्शक, प्रेरक और उद्‌गाता। सूर्यास्त के पश्चात् दीपक ही विश्व की बागडोर सम्हालते हैं। अतः रोज संध्या समय हम प्रार्थना करते है -

शुभं करोति कल्याणं आरोग्यं धनसंपदः।
दुष्टबुद्धिविनाशाय दीपज्योतिनमोऽस्तु ते।।

मन में आनेवाले दुष्ट विचार, शत्रुबुद्धि यह जीवन की कालिख है - प्रकाश के आगमन से जीवन आलोकित होता है। अतः मंगल प्रसंगों में आरती उतारना, भगवान के सम्मुख नंदादीप जलाना-मंदिरो में दीप जलाना, दीप जल में प्रवाहित करना आदि पद्धतियाँ अपनी संस्कृति में रूढ़ है। दीपज्योति ज्योतिर्मय लक्ष्मी का रूप है। मानवी आशा का ज्वलंत स्वरूप है। दीप की महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि एक दीप से सैकड़ों दीप प्रज्वलित होते है और सभी ज्योतियां जगमगाती है। एक दीप से जले दूसरा - ऐसे अगणित होते।

दीप की ज्योति दीप में होनेवाले तेल के अंतिम बिंदु तक तो जलती ही रहती है। किन्तु स्वयं के अंतिम छोर तक प्रकाश देने का जीवितकार्य करती है। हवा के झोके से कभी-कभी बुझ जाती है किन्तु आधिकाधिक प्रतिकार किये बिना नहीं। वह फडफडाती है। जीवित रहने का अधिकतम प्रयास करती है। ज्योति हमेशा उर्ध्वगामिनी रहती है। कहा ही है "नाधः शिखा यान्ति कदाचिदेव।"

दीप मिट्टी का बनता है। सभी को सुलभता से प्राप्त होता है। सोने कां भी दीप जलाने की क्षमता होते हुए भी दीपावली में मिट्टी के ही दीप जलाये जाते हैं। उससे समानता का भाव निर्माण होता है। दीप मिट्टी का होते हुए भी तेल और जलती ज्योति सम्हालने की क्षमता होती है।

अनेक दीप हो तो उजाला होगा ही किंतु एक दीप भी अंधःकार को कम कर सकता है।

हरेक का अस्तित्व स्वतंत्र है - कार्य एक है।

एक बटन दबाया गया और सब दीप बुझे ऐसा नहीं होता है।

कलशा

कलश अर्थात् हल्दी कुंकुम रेखाओं से सुशोभित, गले में धागा बंधा हुआ, पानी से परिपूर्ण पानी में कुछ

सिक्के और सुपारी-ऊपर आम्र के पाच पत्तों के बीच श्रीफल रखा हुआ घट। यह मानवी जीवन का प्रतीक है। आम्रपर्णो पर स्थित नारियल यह बाहर से कठिन तो अंतर्भाग मधुर। श्रीफल के वृक्ष के सभी भाग उपयुक्त है। मानवजीवन में उपयुक्तता, कठोरता, मधुरता, सुशोभितता, बंधन सभी होना चाहिये। पानी भरे कलश के समान मानवी जीवन भी ज्ञान और कर्तव्यपूति के समाधान से युक्त होना चाहिये। रिक्त घट तथा रिक्त जीवन दोनों भी अर्थहीन है, त्याज्य है। परिपूर्ण कृतार्थ जीवन के प्रतीक रूप में कलश हमारे सम्मुख रखा गया है।

नवरात्रि में शक्तिदेवता के आवाहन और पूजन हेतु कलश स्थापना की जाती है। दक्षिण प्रान्तों में पूर्ण कुंभ से स्वागत करने की पद्धति है। नये गृह में प्रवेश करतें समय भी प्रथम कलश रखा जाता है। विवाह और देवतापूजन के समय भी प्रथम कलशपूजा होती है। कलश का वर्णन करते समय कहते है -

'कलशस्य मुखे विष्णुः कंठे रुद्रः समाश्रितः
मूलेत्तस्य स्थितो ब्रह्म मध्ये मातृगणाः स्मृताः।'

सृष्टि जीवन के निर्माता, रक्षयिता और संहारकर्ता है ब्रह्मा, विष्णु महेश। तीनों कलश के विभिन्न भागों में स्थित है। मातृगणाः शब्द से सुरक्षितता वत्सलता तथा जीवनसातत्य क्षमता निर्देशित होती है।

भारत के प्रत्येक मंदिर पर कलश विराजमान रहता है। मानों वह संदेश देता है - स्वयं के शरीर को मंदिर जैसा पवित्र बनाओ। मंदिर में स्थित आत्मतत्व को पहचान लो। जीवन कल्याणमयी और कृतार्थ करो।

कमल

एक पवित्र सुगंधित सुकोमल पुष्प सौंदर्य का प्रतीक हैं। उसके दो प्रकार है सूर्यविकासी, चंद्रविकासी अर्थात् वह प्रकाश का तेज का पूजक है। भारतीय काव्यविश्व कमल कल्पना से मुग्ध है। अपने काव्य में कवियोने मानव के अंगों का केवल हाथ, मुख ऐसा रूक्ष उल्लेख न करते हुए करकमल, पदकमल,

मुखकमल, नयनकमल ऐसा उल्लेख किया है। नेत्रकमल, मुखकमल, हस्तकमल, पदकमल, शिरकमल, नाभिकमल, हृदयकमल ऐसे सात कमल अपने शरीर में हैं और उससे हम भगवान की आराधना करें यह भी बताया गया है। कीचड़ यह कमल का उत्पत्ति स्थान है। परंतु कमल सुंदर है और कीचड़ से अलिप्त, अनासक्त है। कमल की एक विशेषता है। वह सूर्यविकासी होता है तब सूर्योदय होते ही कमल प्रफुल्लित होता है तथा सूर्यास्त के समय मिट जाता है। कमल यह संगठन का, विविधता में एकता का श्रेष्ठ प्रतीक है। कमल की पंखुड़ियों का आकार, रंग, छटा विभिन्न है परंतु वे सब एक डंठल से जुड़ी हुई रहती है। डंठल ही उसका एकमेव पोषणकर्ता रहता है। वहाँ से उसको प्राणरस प्राप्त होता है। डंठल से जुड़े हुए रहने में ही उस कमल का सौंदर्य, सामर्थ्य, जिवंतता है। भारतीय संस्कृति भी ऐसी ही है - अनेकानेक-पंथो पंथ यहां निर्माण हुए, विकसित हुए, उनको जीवनरस हिन्दु धर्म देता है। कमल का सुंदरता एवं सुगंधता है जैसे गुणों के सामने दुष्टोंको भी कभी न कभी नम्र होना ही पडता है - दुष्टता को भूलना पडता है।

कमल ब्रह्मदेव, सरस्वती, लक्ष्मी का आसन है - ऐसी मान्यता है। गौतमबुद्ध का आसन भी कमल ही था। 1857 की क्रांति में कमल संकेत चिन्ह था। आज भी हमारा राष्ट्रीय पुष्प कमल ही है। कमल का हर अंग उपयुक्त है। कमल पुष्प भगवान को समर्पित किया जाता है। यह संन्यासाश्रम का प्रतिक है।

वटवृक्ष

कृतज्ञता यह भारतीय संस्कृति की अपनी एक अलग विशेषता है। जीवन यापन के लिये जिनका उपयोग किया जाता है ऐसे सभी चर अचरों के लिये

कृतज्ञता व्यक्त की जाती है। जीवपूजा में नागपूजन, गौपूजन, हयपूजन, वृक्षपूजन में तुलसी, शमी, आँवला, अश्वत्थ, वटवृक्ष आदी की भी पूजा की जाती है।

वटवृक्ष गृहस्थाश्रम का प्रतीक है। वटवृक्ष स्वयं धूप झेलकर उसके पास आनेवाले हर प्राणि को, मनुष्य को छाया देता है - अनेकानेक पक्षी अपना निवास स्थान उसी के आधार से बनाते है। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास ऐसे सभी का आधार या आश्रयस्थान गृहस्थाश्रम ही है। इन तीन आश्रमों में जीवन व्यतीत करने वालों का निर्वाह करना उसका कर्तव्य है। वैसे ही काकबली, गोग्रास आदि के द्वारा अन्य प्राणि-पक्षी सृष्टि का पोषणकर्ता भी वही है।

हमारी संस्कृति भी वटवृक्ष के समान अनेकानेक पंथों का आश्रयस्थान-विश्वासस्थान है।

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् -

यह संदेश भी वह हमें देता है।

वटवृक्ष निरंतरता का प्रतिक है। उसकी जडे शाखाओंसे निकलकर पूर्ण भूगर्भ में जाती है - वही से उसको सामर्थ्य मिलता है।

वृटवृक्ष के साथ हजारों वर्षो से एक कथा जुड़ी है - सावित्री की। सावित्री को इस वृक्ष की पूजा से सौभाग्यदान प्राप्त हुआ, संतति भी। इस वृक्ष में शुद्ध और अधिक प्राणवायु देने की क्षमता है। प्रजोत्पादन के लिये आवश्यक तत्त्व देने का सामर्थ्य उसके जड़ो में है। बीज छोटा वृक्ष विशाल -

सावित्री यह मद्र देश की कन्या - उसका पति सत्यवान मृतवत् था। सावित्री ने उसे जीवनदान दिया। सास श्वसुर को दृष्टिदान दिया और राजसंतती भी प्राप्त की ऐसी कथा है। सत्यवान मृतवत था अर्थात् निष्क्रीय कर्तव्यच्युत था, सावित्री ने उसमें स्वाभिमान जगाया, कर्तव्य प्रेरणा दी - मृतवत् आशाओं को जीवित किया। आशा के प्राण फूंके। इस जागृति के कारण उसने फिर से राज्य प्राप्त किया। सास श्वसुर का मोहान्धत्व भी उसने नष्ट किया। स्त्री में कर्तव्य का बोध कराने वाली यह कथा बड़ी अद्‌भुत और अपने आपमें अद्वितीय है।

यज्ञकुंड

भारतीय संस्कृति की पहचान है यज्ञ। यज्ञ याने देना - देते रहना।

यज्ञ त्याग का प्रतीक है। विश्व त्याग पर ही आधारित है। 'त्यागेन एकेन अमृतत्वमानशुः' ऐसा कहा गया है। हर पल चलने वाली श्वासोच्छवास क्रिया हमें त्याग का पाठ नित्य सिखाती है। जीवन की हर क्रिया यज्ञमय है। भोजन भी भारतीय संस्कृति के अनुसार उदरभरण नहीं-यज्ञकर्म है। अतः बताया जाता है - "तेन त्यक्तेन भुंजीथाः"।

अपने पास जो भी है उसे अन्य सभीका वितरित करना यही यज्ञ।

प्रकार -

ब्रह्मयज्ञ - अध्ययन-अध्यापन

देवयज्ञ - मातापिता की सेवा

पितृयज्ञ - श्राद्ध - पितरों का स्मरण

मनुष्ययज्ञ - अतिथि सत्कार और दीन दुखियों को अन्नदान

भूतयज्ञ - वैश्वदेव, काकबली इ.

इस प्रकार से अनेक यज्ञ बताये गये है।

हमारे वैदिक शास्त्र ने कुछ अन्य भी यज्ञ सिद्ध किये हुए हैं। अश्वमेध, राजसूय, पुत्रकामेष्टि आदि।

विशिष्ट देवता का आवाहन कर उसके द्वारा अपना ईप्सित पूर्ण कर लेने की परंपरा थी। अग्नि में दी जाने वाली अन्यान्य आहुतियां वायु मंडल को शुद्ध, पवित्र, बनाती है। आज भी कुछ घरों में अग्निहोत्र अर्थात् अग्नि की अखंड पूजा होती है।

अग्नि को हम 'पावक' कहते हैं। वह स्वयं शुद्ध तेजस्वी है, बनाता भी वैसा ही है। वह अत्यंत उपकारक है परंतु उसे हमें मर्यादा में रखना पड़ता है अन्यथा वह सब भस्मसात् कर देता है। अग्निकुंड की रचना यह विज्ञान में 'मिति' भूमिति का उद्गम है।

अग्निज्वाला हमेशा ऊर्ध्वगामी रहती हैं उनके समान भारतीय संस्कृति भी नित्य वर्धिष्णु ऊर्ध्वगामी है।

प्राथमिक अवस्था में अग्निनिर्माण कष्टसाध्य था। अतः वह नित्य उपलब्ध हो इसलिये यज्ञकुंड बनाया गया। यज्ञवेदी बनाने का भी एक शास्त्र है। यज्ञ कर्ता को यज्ञकरने पूर्व कई दिन व्रतस्थ रहना पड़ता था। यज्ञ के लिये सभी लोगों का सहकार्य आवश्यक था। यज्ञ के समय आये हुएं देशभर के विद्वानो में राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में राष्ट्र कल्याण हेतु विचारविमर्श होता था। कुछ निर्णय लिये जाते थें जो अपने अपने स्थानपर लागू किये जाते थे। अतः यज्ञको राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हुआ।

अध्ययन हेतु पुस्तके

भारतीय संस्कृति के प्रतीक - सुमती जोशी
संस्कृति कोष -

भारतीय संस्कृतीची प्रतीके श्री पांडुरंग शास्त्री आठवले (मराठी)

- हिंदू संस्कृति की रक्षा के लिये बलवान और सामर्थ्यशाली संगठन आवश्यक है। अपने ध्येयसाधना के लिये सर्वस्व त्याग की, मानसिकता से ओतप्रोत, अपने पवित्र भगवा ध्वज की सम्मानरक्षा तथा हिंदुत्व रक्षा के लिये भारी संकटों का सामना करने धैर्य से युक्त निष्ठावान सेविकाएं ही वह निर्माण कर सकती है।
- स्वार्थ और परमार्थ के बीच होनेवाले राष्ट्रार्थ को ध्यानमें रखना आवश्यक है। वही हमारी आजकी अवनत स्थिति बदलने में समर्थ है।
- सहजता से शक्य सहायता त्याग नहीं कहलाता। साध्य के निकटतम पहुँचने के लिये सहजक्षमतासे परे ऊठकर कर्तव्य बुद्धी से, तन-मन-धन प्राण से अधिक कष्ट सहकर की हुई मदद याने त्याग।
- समाजकल्याणार्थ सातत्यसे काम करते रहना उस कार्य का एक सामन्य सिपाही बनकर काम करे। व्यस्त रहना यह मेरा एकमेव कर्तव्य है।
- समिति कार्य एक नया कार्य नही है। हमारे पूर्वजों ने समाज और संस्कृती की जिस तरह से सेवा की, वह सफल होने जो अहर्निश प्रयास किये वही ध्येय, वही प्रयास, वही पद्धती अपनाकर उनका अधुरा रहा हुआ कार्य पूरा कर हमारा राष्ट्र सर्वश्रेष्ठ करें यही हमारी कामना है।

समर्पित कार्यकर्ता - कार्य का आधार

स्वयं स्वीकृत सेवा कार्य

बहनो, आज हम आदर्श सेविका का चित्र देखने का प्रयत्न करेंगे। सेविका शब्द का प्रयोग जब हम करते है तब हमारे मनमें 'राष्ट्रसेविका' यह शब्द ही यथार्थ में अभिप्रेत होता है। राष्ट्रसेविका यह स्वयंसेविका है ही। अर्थात् हमारे ऊपर यह सेवाकार्य लादा नहीं गया है और न की हमने यह अगतिकतासे स्वीकारा है। हमने - सेविकाओं ने यह सेवा कार्य स्वयंस्फूर्तिसे - स्वयंप्रेरणासे ग्रहण किया है।

लादे गए काम की अपेक्षा स्वयंस्वीकृत काम स्वाभाविक रूपसे हलका (सहज) होता है। यदि जलभरी गागर सरपर अथवा कमरपर उठायेंगी तो चलते हुए श्रम होगा, थकान अनुभव होगी। परंतु तैरनेके लिए जब हम जलाशयमें उतरती है तब अनेक घनफूट जल अपने सरपर होते हुए भी बोझ प्रतीत नहीं होता है। क्यों? सरल बात है। हम जलाशयमें डूबते है इसलिए बोझा नहीं है। सेवाकार्य में भी डूबने की - रममाण होने की आवश्यकता है। फिर उस कार्य का बोझा आपको प्रतीत ही न होगा। कार्य से पृथक रहकर जब कार्यभार उठाया जाता है तो फिर यह बोझ बन जाता है। अतः स्वीकृत सेवाकार्य में तल्लीन होना यह आदर्श सेविका का प्रथम गुण। यह कार्य मेरा है। कार्य और व्यक्तिजीवन में रेखा खींचना संभव न हो इस प्रकार कार्य से तादात्म्य होने पर सेविका प्रचंड कार्यभार उठाकर भी थकान अनुभव न करेगी। आनंद, उल्हास ओतप्रोत बहेगा। तादात्म्य के कारण अजानता वह कर्मयोग का आचरण करेगी और वह कर्मयोग ही जीवनमें उसे यश देगा।

'सेवाधर्मो परमगहनः योगिनामप्यगम्यः।' ऐसा होते हुए भी सेविका अपने जीवनका कणकण, क्षणक्षण यह सेवाकार्य स्वप्रेरणासे करती है।

व्यक्तित्वका पूर्ण विकसित पुष्प

अपना जीवन स्वयंस्वीकृत कार्य के लिए समर्पण करने के निश्चय के पश्चात् व्यक्तित्व अधिकाधिक विकसित प्रफुल्लित करना चाहिए। कारण हम भगवानके चरणों में पूर्ण विकसित पुष्प अर्पण करते है। कली अर्पण नहीं करते। कीडा लगा हुआ फूल भी अर्पण नहीं करते। उच्छिष्ट नैवेद्य समर्पण नहीं करते। इस न्याय से ही अपना व्यक्तित्व पूर्ण विकसित करना होगा। दुष्प्रवृत्ती, व्यसन, दुष्टबुद्धी-अविवेक, असंयम के कीडेसे उसे बचाना होगा। तथा ध्येयदेवके लिए ही इसे विकसित करना है, व्यवस्थित पूर्ण विकसित व्यक्तित्वका पुष्प अपने ध्येयदेवको समर्पित करना है। यह ध्यान में रखना होगा। तो यह जीवनपुष्प पूर्ण विकसित करनेके लिए क्या करना होगा? यथासंभव ज्ञानार्जन करना होगा। विभिन्न कलाएं अवगत करनी होगी। अवगुण त्यागने होंगे। अर्जित ज्ञान, कला, सद्गुणों का राष्ट्रकार्यार्थ उपयोग करना होगा। यदि हम कढ़ाई में निपुण है, तो इस निमित्तसे नई-नई लडकियों से परिचय करना और फिर कढाई सिखाते सिखाते अपना राष्ट्रप्रेम, सेवाभाव उन लडकियों में संक्रमण करने का प्रयत्न करना। अर्थात् लोगों को आकर्षित करने के लिए अपनेपास भी कुछ होना चाहिए ना। पहले हमें पूर्ण विकसित होना चाहिए। फिर समर्पण की बात सोचनी होगी।

"ध्येयनिष्ठा, गुरौनिष्ठा सदाऽध्ययनशीलता।
एकाग्रता महत्वेच्छा सेविका गुणपञ्चकम् ।।"

इस उक्ती के अनुसार, अपने ध्येयपथपर अविचल निष्ठा, अधिकारियों तथा गुरुजनों पर नितांत श्रद्धा, कार्य का सतत चिन्तन, मन की एकाग्रता आदि गुणों से मण्डित सेविका आदर्शरूप होती है।

लो. तिलकजी ने महाविद्यालय की शिक्षाके क्रम से एक वर्ष अवकाश लेकर व्यायाम द्वारा शरीरबल कमाया। कारण शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्। देशकार्य करना है तो शरीर दृढ होना चाहिए, यह उनका विचार रहा। श्री. गोपालकृष्ण गोखले टाइम्सके संपादकीय लेख कण्ठ करते और फिर फर्ग्युसन हिलपर पहुंचकर जोरजोरसे बोलते। इस प्रकार अंग्रेजी भाषाका प्रभुत्व और अमोघ वक्तृत्व गोखलेने संपादन किया। स्वामी विवेकानंदने श्रीरामकृष्ण के चरणों में बैठकर व्यक्तित्वका पुष्प पूर्ण विकसित किया और फिर वह राष्ट्रदेवको समर्पित किया।

राष्ट्र के लिए अपने सुख के त्यागकी बात हम कहते है। किन्तु सुख प्राप्तिके लिए आवश्यक गुणोंका संचय तो पहले करना होगा। भिखारी कहे कि मेरा संयम देखो। मैंनें विवाह के लिए राजकन्या नहीं मांगी। यह सुनकर उसकी हंसी होगी। किसी दुर्बल व्यक्तिने कहा कि मै मारपिटाई दंगाफसाद पसंद नहीं करता। मै किसी से झगडा नहीं करता। तो उस व्यक्तिको सात्विक नहीं माना जाएगा। लोग कहेंगे कि बल होगा, साहस होगा तभी झगडा दंगा-फसाद किया जा सकता है ना। अतएव त्याग करने के लिए साहस होना चाहिए। कुव्वत होना चाहिए। शहर जीवन-निर्वाहकी पेट भरने की क्षमता नहीं है, उस कारण कारागार में जानेवाले को देशभक्त नहीं माना जाएगा। हजारों रूपयों की आमदनी-प्रैक्टिस के बावजूद चित्तरंजनदासने अपने को स्वाधीनता आंन्दोलनमें झोंक दिया। इसलिए वे त्यागी माने गए।

इस दृष्टीसे हरेक सेविका को अपनी उपयुक्तता का संवर्धन करना होगा। ज्ञान, कला के साथही सेवाके साधन भी जुटाने होंगे। होमियोपॅथीका अध्ययन कर गरीबोंको औषधि देना संभव हुआ तो वह उनके लिए बडी सहायता होगी। ऐसी कोई उपयुक्त विद्या सेविकाको प्राप्त करना चाहिए। बिनामूल्य जनसेवा का कोई साधन अवगत करना चाहिए।

खेल भी उत्कृष्ट खेलनेका प्रयत्न होना चाहिए। यदि आवाज सुरीली हो तो भावपूर्ण पद्धतिसे, अर्थ समझ कर गीत गानेका अभ्यास हेतुतः करना होगा। अपना परमाणु तुल्य गुण वटवृक्षतुल्य करने का घ्यास होना चाहिए। अपने पास न हो, उन गुणोंको प्राप्त करने और अपने गुणोंको विकसित करने के लिए सेविकाको व्याकुल हो प्रयत्न करना होगा। इस प्रकार व्यक्तित्व का पुष्प पूर्ण विकसित करना है।

हनुमान का आदर्श

सेविकाओं के सामने उत्कृष्ट आदर्श व्यक्तित्व कौनसा हो? हमारा आदर्श हनुमान हो। हनुमान के ग्राह्य गुणोंका हम विचार करें।

मनोजवं मारूततुल्यवेगं। यह है हनुमानका वर्णन। सेविका को शारीरिक शिक्षाके लिए चापल्य आवश्यक है यह स्पष्ट ही है। और गृहिणी-जीवन में भी चापल्य यह ईर्षा कि जाने योग्य गुण है। हनुमान बुद्धि-चापल्य संपन्न भी है। बुद्धिमत्तां वरिष्ठं है वे। हमें भी अपनी बुद्धि, सूझबूझ का अधिकतम उपयोग करना होगा। अन्य द्वारा प्रदत्त बुद्धि और पाथेय जीवन-यात्रा के लिए भरपूर न होगा।

साहस यह हनुमान का दूसरा गुण। समुद्रोल्लंघन साहस का काम था। लंका जलाकर रावण को भयभीत करना और रावणका नीतिधैर्य विचलित करना यह हनुमानका ही काम था। औषधि पहचानना कठिण हुआ तो रोने झींकने के बजाय पूराद्रोणागिरी पर्वत ही वे उठा लाए।

सेवाकार्य सफल संपन्न करना हो तो जितेन्द्रिय होना चाहिए। मोह पर विजय आवश्यक है। कोई भी स्त्री हनुमान को मोहित न कर पाई। समुद्रोल्लंघन के बीच सागरने हनुमानके स्वागतकी, विश्राम की व्यवस्था की। इन्द्र की आज्ञासे अपने आश्रयमें रहनेवाले मैनाक से सागरने कहा कि आप खडे हो कर हनुमानका स्वागत करें। मैनाक पर्वत हाथ जोडकर खडा रहा। उसने हनुमान से कहा कि शिखरपर कुछ विश्राम करो। फलफूल ग्रहण करो। जल-पान करो। परंतु

हनुमान ने केवल स्मितमुखसे स्वागत ग्रहण किया। उसने मैनाक से कहा कि 'रामकाज कीन्हें बिना मोहि कहां विश्राम।' कार्य सिद्धि बिना विश्राम संभव नही। हनुमान विश्राम के, स्वागत के लोभ में फसा नहीं। क्या अविरत काम-कार्यसिद्धिपर्यंत कर्मरत रहने का हनुमान का संकल्प अनुकरणीय नहीं है? हमें भी पुष्पमाला, स्वागत, सत्कार, समारोह के मोह में फस कर अपने ध्येयमार्ग से विचलित होना क्या उचित होगा? इन्द्रियसुख, आराम, वैभव, सुखोपभोग की ओर आकर्षित होने के प्रसंगों से बचकर हमें अपने ध्येयमार्गपर निरंतर आगे बढना है। प्रखर गर्मियोंके दिनों में पंखेकी हवामें अथवा घर की छाया में न बैठकर वं. मौसीजी शिक्षावर्गो के लिए घूमती रहती थी। इस आदर्शसे हमें बोध ग्रहण करना चाहिए।

समुद्रोल्लंघन में सुरसा-नागकन्या हनुमानका मार्ग रोककर खडी हुई। उसने कहा कि मुझसे बचकर निकलना संभव नहीं है। तुम्हें मेरे मुखमें प्रवेश करना होगा। हनुमानने समझानेका प्रयास किया कि मै रामकार्य के लिए जा रहा हूँ। बाधा मत बनो। मुझे जाने दो, किंतु सुरसा न मानी। तो हनुमानने कहा कि तेरा मुख छोटा है। मेरा शरिर बडा है सुरसाने अपना जबडा फैलाया। 'जोजन भरि तेहि बदनु पसारा। कपितनु कीन्ही दुगुन बिस्तारा। सोलह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरंत पवनसुत बत्तिस भयऊ। जस जस सुरसा बदनु बढावा। तासु दुन कपि रुप देखावा।' और तब सुरसाने शतयोजन जबडा फैलाया। तुरंत हनुमानने अति लघु रूप लेकर मुखमें प्रवेश किया और बाहर आ गए। सुसरा को प्रणाम कर कहा कि तेरी बात पूरी हो गई। अब मै आगे चला। सुरसाने आशीर्वाद दिया की स्वीकृत कार्यमें तुम्हें यश मिलेगा। अर्थात सिद्धि के लिए हमें कभी आकाशसे भी बडा बनना होता है। अपना कर्तृत्व, अपना आत्मविश्वास भव्य बनाना होता है और कभी चीटी से भी लघु होना है। नम्रता-अति नम्रता धारण करना है। भगवान श्रीकृष्णने राजसूय यज्ञ में सेवाका अति क्षुद्र काम किया था जूठी पत्तले उठानेका उच्छिष्ट उठानेका। अर्जुनके घोडोंको नहला कर भी भगवान भगवान ही, बना रहा। इतना ही नहीं किंतु श्रीकृष्णकी प्रतिष्ठा वृद्धिंगत ही हुई अर्थात् सेवाके क्षुद्र काम से भी सेविकाको बडप्पन मिलेगा।

संकटोंका हौआ

कई बार संकटोंका सही मूल्यांकन न करनेसे हम संकट से हारते है। इसापनीति की खरगोशकी उद्‌बोधक कहानी हम जानते ही है। खरगोश नरियल के पेडके नीचे बैठा था। तूफानसे वह पेड हिलने लगा और ऊपरसे एक नरियल गिरा। नरियल के गिरने की आवाज खरगोशको भयंकर प्रलय-मेघगर्जनासी प्रतीत हुई। धरती फट रही है सोचकर खरगोश भागा। मार्गमें बकरीका पिल्ला मिला। खरगोशने उसे कहा कि अरे, शान्त क्यों बैठे हो? शीघ्रही प्रलय होनेवाला है। धरती फटनेवाली है। भागो-भागो वह पिल्ला भी भागने लगा। फिर हिरन, गधा, गाय सारे ही भागने लगे। हाथी मिला, वह बुद्धिमान था। फिर इन सबके साथ भागना भी उसके लिए संभव न था। उसने भागदौड का मूल कारण पूछा। उसने कहा कि धरती कहाँ फटी है यह मुझे बताओ और फिर उसने सारी जानकारी लेकर बताया कि नारियल पृथ्वीपर गिरने से धरती फटने का प्रश्न ही नहीं है। अर्थात् हम संकटोंका हौआ खडा करते है और फिर कार्यनाश होता है।

एकबार श्रीकृष्ण, बलराम और सात्यकी यात्रा कर रहे थे। अरण्य के मार्ग से जाते-जाते रात हो गई। तो वे एक पेडके नीचे टिक गए। रातमें पारी पारी से हरेक ने पहरा करनेका विचार हुआ। प्रथम पारी सात्यकी की थी। सात्यकी पहरा दे रहा था तो एक विकराल राक्षस आया। सात्यकीने अपनी गदासे राक्षस के साथ युद्ध करना आरंभ किया। राक्षस महाप्रचण्ड और शक्तिशाली था। रातके पूरे प्रथम प्रहर में पसीनेसे लथपथ हो सात्यकी जूझता रहा। दुसरे प्रहर में बलराम जागा और सात्यकी सो गया। अब बलराम का राक्षससे युद्ध आरंभ हुआ। जोर-जोर से हुंकार कर और जोरदार प्रहार कर बलराम भी थक गया। दूसरा प्रहर पूरा हुआ

और तीसरे प्रहर का प्रहरी श्रीकृष्ण जागा। बलराम सो गया। राक्षस विकराल जबडा फाडकर कृष्णके सामने खडा हुआ। श्रीकृष्णने एकबार उसे आपादमस्तक निहारा और वे समझ गए कि यह विकरालपन कृत्रिम है। दो उंगलियोंकी चिकुटीमें उसे पकडकर उत्तरीयके कोनेमें बांधकर श्रीकृष्णने पहरा देना प्रारंभ किया। आरामसे पहरा पूरा हुआ। सुबह उठते ही सात्यकी और बलराम आश्चर्य से श्रीकृष्ण की ओर देखने लगे। श्रीकृष्णने उत्तरीयकी गठरी बताई। तात्पर्य यह है कि संकट को बडा अथवा छोटा समझना यह बहुधा अपनी मानसिक स्थितीपर अवलंबित होता है और शांत चित्तसे संकट का सामना किया तो संकट छोटा हो जाता है। समिति-कार्य करते हुए आनेवाली कठिनाइयों से हम इस प्रकार सामना करनेके बारे में अवश्यमेव विचार करें।

घरके बडे लोग नाराज होते है यह कारण बता कर कभी-कभी हम समितिका कार्य स्थगित करते है। हमें अपने मनमें विचार करना होगा कि कहीं बडे लोगों की नाराजगी का हम बहाना तो नहीं बना रहें है। इस कठिनाईका हौआ तो कहीं हमने खडा नहीं किया है? यह आत्मनिरीक्षण से ही विदित होगा।

सन्तुलित व्यक्तित्व

सेविका का व्यक्तित्व सन्तुलित होना चाहिए। अर्थात् अपना संतुलन बनाए रखकर व्यवहार करना चाहिए। सर्कसमें छत्री लेकर तारपर चलनेवाली लडकी देखी है ना! वह अपने शरीरका संतुलन बनाए रखकर तारके दूसरे छोरतक चलती है। अपना जीवन भी तारपर चलनेकी सर्कस ही है। ध्येयवाद और व्यवहार के संघर्ष के प्रसंग निरंतर उपस्थित होते है। ध्येय वाद की ओर इतना नहीं झुकना चाहिए कि सामान्य व्यवहार का पालन न हो। तत्वनिष्ठाके अतिरेकसे आनेवाली पठित-मूर्खता से बचना होगा। जिस समाजमें हमें काम करना है, जिस समाजका हमें नेतृत्व करना है, उस समाजकी नाडी पहचान कर उस समाज के व्यावहारिक जीवनानुकूल बर्ताव करना होता है। तदर्थ तत्वनिष्ठा को तुरपना होता है। यदि तत्वनिष्ठाके अतिरेक के कारण यह तुरपत संभव न हुई तो हमारा व्यवहार समाजके लिए अनुकरणीय न होगा। नेतृत्व तो दूर रहा, हम अकेले रह जाएंगे। हमें तो महिलाओं का संगठन करना है। इसलिए हमें विशेष रूपसे यह विचार ध्यान में रखना होगा।

किन्तु व्यवहार की ओर अधिक झुकाव हुआ और तत्वनिष्ठा नष्ट हो गई तो? फिर क्या बचा? कौन सेविका और क्या आदर्श? अतः ध्येय और तत्व कि स्मृति बनाए रखकर यह ध्येयदीप हमें यशोमंदिर तक पहुंचाना है। विरोधी व्यवहार की वायुके झोंके से वह बुझे नहीं एतदर्थ सूझबूझसे अपने आंचल से उसे ढाकना होगा। दीप बुझे नही और आंचल भी जले नहीं। यह भी एक प्रकारका योग ही है। भगवानने गीतामें कहा ही है की योगः कर्मसु कौशलम्। जीवनभर इस कर्मयोग के आचरणसे अपना जीवन आनन्दमय और सफल होगा। फिर किसी भी क्षण मृत्यु हुई तो भी मेरे जीवनका प्रत्येक क्षण और कण ध्येयसाधनासे व्यतीत किया है यह समाधान रहेगा। संभवतः यही मुक्ति होगी।

गीता सेविका की मार्गदर्शिका है। मानव जीवनकी सफलता की शिक्षा गीतासे मिलती है। हम संगीत, नृत्य, नाट्य सब कुछ सीखनेके लिए दौडते है। किंतु हम यह भूलते है कि जीवन भी एक कला है। समस्त कलाओं से श्रेष्ठ कला है। उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। परंतु जीवन के अंतिम चरणमें हम गीता हाथ में लेते है। वस्तुतः गीताका तत्वज्ञान और व्यवहार की शिक्षा तरुणाई में ही प्राप्त करना चाहिए। गीता का तत्वज्ञान सीखना समझना और फिर उसे व्यवहार में उतारना चाहिए। यदि हम गीताका तत्वज्ञान समझ कर समितिका अर्थात् राष्ट्र का जन सेवाका कार्य करती रहेंगी, तो आध्यात्मिक साधनका फल ही हमें मिलेगा।

भानुवान् भवेत् हिंदुः दिव्यचेतनसंयुतः।
संमोहतमनाशायं भानुवत् अवनीतले।।

दैनंदिन शाखा

शाखा - एक पेड़की शाखा, व्यवसाय उद्योग कार्यालय की शाखा, ज्ञान शाखा। (जैसे कला वाणिज्य विज्ञान) एक वंश की शाखा-इस तरह शाखा शब्द प्रयोग से सूचित होता है कि शाखा यह मूल कार्य का एक भाग होता है। दैनंदिन शाखा यह भी समिति कार्यका एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

समिति की साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, उत्सव शाखा जैसी विविध प्रकारकी शाखाएँ है। फिर भी व्यक्तिनिर्माण के लिये आवश्यक संस्कारों के दृढीकरण की दृष्टि से दैनंदिन शाखा महत्त्वपूर्ण है। पढ़ाई हो, कृती हो, विचार हो उसके दृढीकरण के लिये आवश्यक है उसका सराव उसका अभ्यास। अभ्यास से आत्मविश्वास निर्माण होता है। कृती में सहजता, चापल्य, सुंदरता आती है। और वह कार्य बोझ सा प्रतीत नहीं होता है। साथ ही साथ वह कृती, व्यक्ति का स्वभाव बन जाती है जो व्यक्तित्व को आकर्षक बनाती है।

हररोज एकत्रित आने से, सहवास के कारण अपनत्व भाव निर्माण होता है। उससे परस्परविश्वास, हम सब एक है यह अनुभूति अकेलेपन का विनाश - तथा निर्भयता प्राप्त होती है।

आज्ञापालन की आदत पड़ जाती है। उससे अनुशासन-अनुशासन के कारण उच्छृंखलता पर रोक, उमडनेवाली भावनाओं पर नियंत्रण प्राप्त होता है। अनुशासन से कार्य सुचारु रुपसे संपन्न होता है, कम समय और श्रम में काम ज्यादा होता है, हरेक को अपना-अपना काम ठीक समयपर और ठीक ढंग से करने का अभ्यास हो जाता है। कार्यक्रम का अनुशासित दृश्य मन को आनंद प्रदान करता है। किसी भी कमी की तत्काल पूर्ती की जाती है। जहाँ कम वहाँ हम यह निर्माण हुआ भाव-कृती में परीवर्तित होता है।

सांघिक शारीरिक हो, गीत हो या खेल हो - उससे एकता समानता का भाव पनपता है। एक-दूसरे का विचार किया जाता है। सब मिलकर काम करने से जो दुर्बल है, जिन में कुशलता कम है उनको आगे बढने का मौका प्राप्त होता है और उनके मन का न्यूनत्व भाव क्षीण होते जाता है।

विविध गुणों को प्रोत्साहन प्राप्त होता है - गीत, खेल, वकृत्व, अग्रेसरिका, गटनायिका के अनुभव से नेतृत्वगुण, संपर्ककला, एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहकार्यभावना, बड़ो के प्रति आदरभाव (अधिकारी व्यवस्था- उनसे बोलने का ढंग) प्रणामोंद्वारा लीनता समर्पणशीलता कृतज्ञता भाव निर्माण होता है। ध्वजस्थान सुशोभन से कलागुणों को संधि और सौदर्यदृष्टि निर्माण होती है। सम्यक से व्यवस्थितता दक्ष से सतर्कता इस तरह विविध शारीरिक आज्ञाओं से अन्यान्य गुण सहजता से निर्माण होते है। व्यक्ति को समाज का जिम्मेदार घटक बनाया जाता है।

शारीरिक से सामर्थ्य बढता है, कष्ट सहन करने की क्षमता आ जाती है। बिना रुकावट काम करते रहने की पात्रता बढती है, सांघिकता, अनुशासन आदि लाभ होते ही है।

बौद्धिक कार्यक्रमों द्वारा विचार शक्ति को चालना, ज्ञानसंपादन, अपने विचार प्रभावी रुपसे सादर करने की क्षमता, एकही विषय के अनेकानेक पहलुओं पर विचार करना, अन्यों के विचार शांततापूर्ण रीतीसे सुनना, चिंतन से योग्य निष्कर्ष निकालना, ये गुण स्थापित होते है। विविध साहित्य पढने की इच्छा निर्माण होती है। स्मरणशक्ति भी बढती है।

हरेक व्यक्ति के सुप्त गुणोंको चालना मिलती है। इसलिये कहा जाता है कि दैनंदिन शाखा यह व्यक्ति निर्माणका केंद्र है।

बल-साधना का महत्व

हम करें राष्ट्र आराधन
तन से, मन से, धन से
तन मन धन जीवन से....

राष्ट्र आराधना का प्रथम पुष्प है अपना तन, अर्थात् अपना शरीर। इस शरीर को, राष्ट्र हित साधना के साधन को पुष्ट रखना एवं शुद्ध रखना हर राष्ट्र कार्य साधक का कर्तव्य बन जाता है। साधक के लिये साधन की सक्षमता तथा सहायकता अनिवार्य है। इसीलिये राष्ट्र-कार्य में जुडे हुए हर व्यक्ति के लिये शरीर में बलसाधना अनिवार्य है।

हमारी संस्कृति 'आरोग्य संपदा' का अर्जन महत्त्वपूर्ण माना गया है। जीवन यशस्वी बनाने के लिये जो चतुर्विध व्यवस्था बनायी गयी है, उसमें प्रथम आश्रम है ब्रह्मचर्याश्रम। ब्रह्मचर्याश्रम यह उर्वरित जीवन की नींव है। इसी कालावधि ज्ञान, विद्या तथा बल की उपासना करना है। प्रखर तपश्चर्या के इस कालावधि में बल साधना महत्त्वपूर्ण मानी गयी है। शरीर आरोग्यपूर्ण, बलवान, सुदृढ होगा तभी अन्य विद्या-कलाओं की साधना करने की क्षमता प्राप्त होगी। कहा गया है स्वस्थ शरीर-स्वस्थमन। व्याधियुक्त शरीर किसी काम का नही, ना ही मन की एकाग्रता हो सकेगी। इसीलिये पतंजली जैसे दार्शनिक ने मन और शरीर दोनों को एक साथ संतुलित रखनेकी अनोखी विद्या 'योगासन' को विकसित कर हमें प्रदान की है।

जीवन की महत्त्वपूर्ण और सबसे जादा कार्यशील अवस्था है युवावस्था। यदि युवावस्था में प्रवेश करते समय ही शारीरिक व्यायाम का महत्त्व समझकर उसकों अपना लिया तो आगे का जीवन सफल हो जाता है। शारीरिक व्यायाम से शरीर लचीला, चपल, सुदृढ, सौष्ठवपूर्ण बन जाता है। अपना व्यक्तित्व निखर उठता है। कार्यक्षमता बढती है। मन सदैव उत्साह से भरा हुआ रहता है।

लचीलापन - व्यायाम के कारण शरीर के स्नायु लचीले बन जाते है। इससे जोडों के विकार नही होतें। किसी भी क्रिया को सरलता से किया जा सकता है। उठना, बैठना, झुकना, चलना जैसी क्रियाएं सुलभ होती हैं। आजकल नीचे बैठने की आदत छुटती जा रही है। भोजन, पढना, लिखना, रसोई बनाना सब कुछ या तो खडे-खडे, या कुर्सी पर बैठकर हो जाता है। ऊपर से दूरदर्शन या कम्प्युटर के सामने हम घंटों तक बैठे रहते हैं। इसी कारण आजकल जोडों का दर्द कम उम्र में ही दिखाई देता है। क्यों की स्नायु कठिन बन जाते हैं। यदि हम नियमित व्यायाम की आदत रखे तो स्नायु लचीले बने रहते हैं।

चपलता (फूर्तीलापन) - कौनसी भी क्रिया शीघ्र गति से होने के लिये शरीर में चपलता आवश्यक है। आज तो गति का जमाना है। जो धीमा है वह पीछे छूट जाता है। खेल-कुद के विश्व में समय के परिमाण सेकंद से नही मायक्रा सेकंद से बनतें या बिगडते हैं। नित्य-व्यायाम से यह चपलता शरीर को प्राप्त होती है। शिवाजी-अफझलखान की भेंट के समय शिवाजी के फूर्तिलेपन के कारण ही शिवाजी महाराज अफझलखानपर मात कर सके। महाराज यह जानते थे कि आत्मरक्षण के लिये प्रतिस्पर्धि से पहले ही पहल करने की आवश्यकता है। नियमित व्यायाम के बिना यह फूर्तिलापन कैसे प्राप्त होगा? यह फूर्तिलापन अपने नित्य व्यवहार के कामकाज मे भी हमें यशस्विता दिलाता है।

कवि कहते है -

जागत है वह पावत है,
सोवत है वह खोवत है...

सौष्ठव - सुंदर, सौष्ठवपूर्ण शरीर कौन नही चाहता? वह व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण अंश है। ऊंचा कद, कद के अनुसार शरीर का वजन, सौष्ठवपूर्ण अंगांग यह हर एक की मनीषा होती है। मगर इसके लिये सिर्फ सपने देखने से क्या होगा?

नित्य व्यायाम साधना ही से ऐसा सौष्ठवपूर्ण शरीर हम पा सकते हैं। आजकल लोग आधुनिक वैद्यकीय शास्त्र से शस्त्रक्रिया करके अनावश्यक मांसखंड को हटाने का प्रयास करते हैं। या तो कुछ औषधीद्रव्य को शरीर में इंजेक्शन द्वारा प्रवाहित करके सौष्ठव पाने का प्रयास करते है। मगर यदि सौष्ठव के साथ आरोग्यपूर्ण, सुदृढ शरीर चाहिये तो व्यायाम ही योग्य मार्ग है। केवल आहार पर नियंत्रण रखकर के शरीर का वजन कम करने से शरीर दुर्बल बनने का खतरा होता है। परंतु योग्य संतुलित आहार और योग्य नियमित व्यायाम से सौष्ठवत के साथ आरोग्य भी प्राप्त होता है।

क्षमता - नित्य व्यायाम से हमारी शारीरिक क्षमता भी बढती है। लगातार काम करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है। व्यायाम-साधना करनेवाला व्यक्ति, अन्य व्यक्ति की तुलना से दुगुना काम करनेपर भी थक नही जाती। फिर वह काम शारीरिक श्रम का हो या बौद्धिक। क्यों की नित्य बल-साधना से न केवल शारीरिक क्षमता बढती है अपितु आरोग्यपूर्ण, उत्साही 'मन' भी प्राप्त होता है। बुद्धि तेज बनी रहती है। समझो किसी बुद्धिमान व्यक्ति के घुटने में बडा दर्द है। क्या उस व्यक्ति का मन किसी काम में एकाग्र हो पायेगा? वह बारबार विचलित होगा। अंग्रेजी मे एक कहावत है "Healthy mind in healthy body" नित्य व्यायाम से शरीर बीमारियों का शिकार नहीं बनता। शरीर के साथ मन भी तंदुरुस्त रहने के कारण किसी भी समस्या को सुलझाने की विजिगीषु प्रवृत्ती उत्पन्न होती है। प्रभावी व्यक्तित्व विकसित होता है।

राष्ट्र-सेविका समिति में हम व्यक्ति निर्माण के माध्यम से राष्ट्र निर्माण करने का ध्येय रखते है और राष्ट्र निर्माण करने का यह संकल्प सामूहिक संकल्प है। इसीलिये समिति में सामूहिक बलसाधना का आग्रह रखा गया है। सांघिकता से परस्पर स्नेह, एकात्मभाव का निर्माण होता है। सांघिकता से संगठित शक्ति की अनुभूति मिलती है।

समिति के शारीरिक में व्यायाम के विविध प्रकार हैं। शरीर की आवश्यकता, आयु, रुचि के साथ-साथ स्वसंरक्षणक्षमता का भी विचार करते हुए दंड छुरिका, खड्ग, व्यायामयोग नियुद्ध, योगासन, विविध खेल आदि का अंतर्भाव शारीरिक अभ्यास में किया गया है।

शस्त्राभ्यास क्यों?

ए.के. 47 या अणुबम के युग में दंड छुरिका, खड्ग का क्या उपयोग? ऐसे प्रश्न सामने आते है। स्वा. सावरकरजी ने कहा है 'युद्ध शस्त्र से नही मन से जीता जाता है।' शस्त्र आधुनिक तथा सक्षम होने की आवश्यकता है ही, किन्तु शस्त्र चलाने का अभ्यास, शस्त्र हाथ में होने के कारण बढ़ा हुआ आत्मबल, आत्मविश्वासपूर्ण चित्त की स्थिरता, एकाग्रता, तथा धैर्य भी आवश्यक है। वह प्रतिदिन अभ्यास से ही प्राप्त होगा। इसी लिये दंड, छुरिका, खड्ग जैसे शस्त्रों का अभ्यास किया जाता है। शस्त्र के अभ्यास से मन मे आत्मविश्वास उभरकर आता है। किसी भी समस्या का सामना करने के लिये चित्त की स्थिरता और धीरज चाहिये, वह शस्त्र अभ्यास से ही निर्माण होता है। खड्ग जैसे शस्त्र को हाथ में पकडने के बाद शरीर में चैतन्य की जो लहर उठती है उसकी अनुभूति लेने के लिये खड्ग को हाथ में पकड कर ही देखना पडेगा। लगता है रानी लक्ष्मीबाई के दिव्य तेज का छोटासा अंश हमारे अंदर भी समा रहा है। देवी भगवति की शक्ति का एक स्फुल्लिग अपने अंदर प्रज्वलित हो उठा है। अपने परिवार के आसपास भी बुराईयों की परछाईयाँ भी न आये इसकी जिम्मेदारी हमारी है। और हम मे इतना सामर्थ्य है की हम सारे दुष्ट वृत्तियों से हमारे परिवार की और परिसर की रक्षा कर सकेंगे। शस्त्र अभ्यास की यह महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

नियुद्ध स्वसंरक्षण की भारतीय विद्या है। बौद्ध भिक्षुओं के माध्यमसे यह विद्या पौर्वात्य देशों में पहुँच गयी और कराटे, 'तायकांडो, कुंग फू इत्यादि नामों से विश्वविख्यात हो गयी। निहत्थे द्वंद-युद्ध की यह विद्या, प्रथम केरल में विकसित हुई। आज भी केरल के 'कल्लरी अट्टम' के कुछ प्रयोग नियुद्ध (कराटे) के प्रयोग से मेल-जोल रखते है। आजके असुरक्षितता के माहौल मे नियुद्ध स्त्री को आत्मरक्षण करने हेतु वरदान है।

राष्ट्र सेविका समिति के शारीरिक पाठ्यक्रम मे योगासन को आद्यस्थान दिया है। योगासन अभ्यास के

लिये आयु की कोई मर्यादा नही होती। योगासन को केवल शारीरिक व्यायाम योगा की गुणविशेषता बताते समय पतंजली ने ही कहा है योगश्चित्र में वाखांट उठनेवाले वृत्तियों निमंत्रण वृत्ति निरोधः'। जो चित्त पर रखना सिखता है वही योग। साधना करते समय शरीर को विविध स्थिति में स्थिर रखना अर्थात् योगासन। जिस में हम सुखपूर्वक बैठकर हमारे व्यवहार कर सकते है - स्थिरसुखमासनम् - ऐसी योगासन की परिभाषा है। आसन यह योग का तिसरा सोपान है। यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याघर-ध्यान धारण्य -समाधि योगासन। शारीरिक के सब लाभ, जैसे लचिलापन, फूर्तिलापन, सौष्ठव, आरोग्य इत्यादिके साथ योगासन मानसिक शांति भी प्रदान करना है। मन को एकाग्र करना सिखाता है। प्राणायाम के अभ्यास से हम श्वसन क्रिया पर नियंत्रण पा सकते हैं। तथा श्वसनांग की शुद्धि भी होती है। योगासन और प्राणायाम के योग्य अभ्यास से हमारी प्राणशक्ति बढ जाती है, चैतन्य प्राप्त होता है। ओंकार ध्वनि के उच्चारण से जो कंपन उत्पन्न होते हैं उनसे हमारी मज्जासंस्था के अणुरेणु भी कंपित हो उठते हैं और इससे हमारी स्मरणशक्ति की वृद्धि होती है। बुद्धि भी तेज होती है। मन शांतभाव, वृत्ति में प्रसन्नता और शरीर में आरोग्य प्राप्त होता है। इसी के कारण मुखपर तेजस्विता आती है और व्यक्तित्व निखर उठता है। किसी सौंदर्य प्रसाधन की की कोई आवश्यकता नही पडती।

हमारे शारीरिक का और एक विषय है 'गणसमता'। गणसमता का आत्मा है 'अनुशासन'। गण समता के अभ्यास से अपनी सारी क्रिया आकर्षक बन जाती है। जैसे उठना, बैठना, मुडना, खडे रहना और चलना भी सामूहिक बन जाता है। अनुशासन हमारे रक्त में समा जाता है। अपने निजी जीवन के कोई भी कार्य करते समय यह अनुशासन व्यवस्थितता में परिवर्तित होता है। गृहसुशोभन, अध्ययन, अध्यापन क्रियाएं आदि सभी में वह, सहज रूप सें प्रकट होता है। फिर वह अपनी चिजें रखने का ढंग हो या घर को सजाना हो। गणसमता के अभ्यासके समय हम कदम से कदम मिलाकर एक साथ चलते है तो एकता, समानता, सामूहिक अनुशासन जैसे संस्कार अपने आप मिल जाते हैं। संगठन शक्ति का अनुभव मन ही मन मिल जाता है।

समिति के शारीरिक का एक महत्वपूर्ण भाग है 'खेल'। शारीरिक खेल बौद्धिक खेल, स्पर्धात्मक खेल, साहित्य के साथ खेल, साहित्य के बिना खेल मैदानी खेल घर में बैठकर खेलनेवाले खेल ऐसे विविध रीति के खेल हम खेलते है। हमारी सांस्कृति में भी अन्यान्य त्योहारों को उत्सवों को अन्यान्य खेलों के साथ जोडा गया है। हर प्रांत के भी अपने विशेष खेल होते हैं। कई खेल ग्रामों से जनप्रिय होते हैं। शारीरिक व्यायाम के साथ आनंद और उत्साह से वातावरण को भर देने वाला यह व्यायाम प्रकार समिति ने भी अपनाया है। मनोरंजन के साथ संघभावना को प्रेरण देनेवांला यह अत्यंत सुलभ साधन है। कई खेलों के माध्यम से हम विजीगिषु प्रवृत्ती, राष्ट्राभिमान जागृत कर सकते है। इतिहास की जानकारी दे सकते हैं। आजकल के 'टी.वी.-कम्प्युटर' के युग मे मैदानपर खेले जानेवाले खेल जीवन को नये उत्साह से भर देते हैं। हमारा यह भी प्रयत्न रहता है की भारतीय खेलों का पुनरुज्जीवन हो और समृद्ध भारतीय संस्कृति का अभिमान हर भारतीय के मन मे जगे।

हम सब एकही परमात्मा के अंश है। इस धरती पर मनुष्यजन्म प्राप्त होने के बाद हमारा कर्तव्य बन जाता है की इस जन्म को हम सार्थक बनाये। परमात्मा के अंश के इस अविष्कार को अंत में फिरसे परमात्मा में ही जाकर लीन होना है। मगर इस जीवन की कालावधिमें हम ऐसा कुछ करें की यह अंश और भी तेजोमय बने। जीवन-कर्तव्य की पूर्ति करने के लिये ही राष्ट्र सेविका समिति हमें मार्गदर्शन करती है। व्यक्तित्व के सर्वांगीण, समग्र विकास से ही समाज की, राष्ट्र की उन्नति होगी यह हमारा विश्वास है। यह दृष्टि हर एक व्यक्ति को देनी है तो परिवार की केंद्रबिंदु जो स्त्री है उसे यह जानना आवश्यक है। इसीलिये स्त्री की शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक क्षमता बढाने का प्रयास समिति में किया जाता है। इस व्यक्तित्व-विकास की प्रथम सीढी है शारीरिक सुदृढता। इसलिये हर सेविका को 'बल साधना' का महत्त्व समझना चाहिये। हम इस विचार को समझेंगे और तेजस्वी हिन्दु राष्ट्र के निर्माण मे हमारा संपूर्ण योगदान देंगे यही हमारा संकल्प है।

गायत्री मंत्र

ओम् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

राष्ट्र सेविका समिति के कार्यक्रमों में गायत्री मंत्र का अनन्यसाधारण महत्व है। वर्ग, शिबिर, अभ्यासवर्ग की दिनचर्या में, प्रातःस्मरण के बाद गायत्री मंत्र का कमसे कम 5 बार उच्चारण होता है। ऐसा क्यों?

प्राचीन काल से हम भारतीय तेजोपासक और गुणोपासक रहे है। भारत अर्थात् तेजोपासक। तेज की उपासना में गायत्री मंत्र महत्वपूर्ण है। उसकी देवता है तेजपूर्ण सूर्यदेवता। हमारा अतिप्राचीन साहित्य है चारों वेद। उनमे प्रथम वेद ऋग्वेद है। ऋग्वेद में अलग अलग मंडल है और उसमें अलग अलग देवताओं के मंत्र है। दसवे मंडल में 62 वे सूक्त का दसवा मंत्र गायत्री मंत्र है। ऋग्वेद के अनुसार महाप्रलय के बाद इस सृष्टि की रचना जब हुई तब प्रथम प्रार्थना गायत्री की हुई। गायत्री यह एक देवता है। उसी नाम का छंद भी है और मंत्र भी है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है 'छंदसाम् गायत्रीमहं' इससे स्पष्ट है कि गायत्री छंद सर्वश्रेष्ठ छंद है।

गायत्री मंत्र है, "ओम् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।" मननात् त्रायते इति मंत्रः। जिसके मनन से हमारा रक्षण होता है उसे मंत्र बोलते है। मंत्र सारगर्भित होता है। ज्ञान का निचोड है। फूल से फूलों का अत्तर अधिक सुगंधित होता है उसी तरह मंत्र भी अधिक शक्तिशाली बनता है।

हरेक मंत्र का प्रारंभ 'ॐ' से होता है। मंत्रकी एक देवता, एक छंद और एक ऋषि होता है। रामरक्षा में वर्णित है 'रामरक्षास्तोत्रमंत्रस्य बुधकौशिक ऋषिः श्री सीतारामचंद्रोदेवता, अनुष्टुप छंदः।' भारत की निद्रिस्त अस्मिता जगानेवाले वंदेमातरम मंत्र की देवता है भारतमाता और ऋषि है बकिमचंद्र। गायत्री मंत्र की देवता है सूर्यदेवता, ऋषि है विश्वामित्र और छंद है गायत्री। इस छंद के 24 अक्षर और 3 चरण है।

ध्वनि यह भी एक कार्यशक्ति है। उसके संस्कार का प्रभाव आत्मापर होता है। अतः मंत्रों की निर्मिति हुई है। शीघ्र गति से बजनेवाले वाद्योंकी ध्वनि तथा शीघ्रगतिसे गाया जा रहा गीतध्वनी हमारे हृदयकी धडकन बढाती है तो शांत स्वर में गाई जानेवाली लौरी बच्चेको सुलाती है। यह अनुभव हरेक के जीवन में होता है। रणवाद्य और मंगलवाद्य का प्रभाव अलग अलग होता है। अतः मंत्र का उच्चारण संथ गति से, शांत स्वरसे, चित्त एकाग्र कर, स्थिर आसन में स्थित होकर ही करना चाहिये। साथ ही साथ उसका उच्चारण भी व्याकरणदृष्ट्या शुद्ध होना चाहिये। तभी योग्य ध्वनिलहरी निर्माण होकर मन भयमुक्त, पीडामुक्त होने के साथ-साथ वातावरण भी शुद्ध होता है। विचारशक्ति प्रगल्भ बनती है। अतः गायत्री को वेदमाता कहते है।

ध्वनि के समान अनुनासिक की भी एक विशेषता है। उसका प्रभाव तुरंत आत्मा पर होता है। शरीररक्षण के लिये आवश्यक प्राणवायु नासिकाद्वारा-नाकद्वारा ही ग्रहण किया जाता है अतः अनुनासिक का उपयोग हरेक मंत्र मे किया जाता है। आर्यसमाज का ध्वज ओममंडित है। सिक्ख लोगों के मंगलाचरण में निर्देश है, 'एक ओंकार सद्गुरुप्रसाद'। जैन लोग कहते है 'ओम् नमो आरिहंताम्'। बौद्ध बोलते है 'ओम् मणिपद्मेहुम।' 'ओम यह वाणी का प्रथमोच्चार था। अतः गायत्री मंत्र का प्रारंभ भी ओम से होता है।

मंत्र से निर्मित कंपन का शास्त्रीय निरीक्षण भारत में प्राचीन काल से हुआ है। उसके वैज्ञानिक और रासायनिक प्रभाव की जानकारी होने के कारण ही मंत्रो की निर्मिती हुई। आज भी वैज्ञानिकोंने जो प्रयोग

किये उसमें सिद्ध हुआ है कि गायत्री मंत्र अत्यंत प्रभावी है।

गायत्री का आवाहन मंत्र है,

'आयतु वरदा देवी अक्षरम् ब्रह्मवादिनी।'

गायत्री छंदसा माता ब्रम्हयोने नमोऽस्तुते।

तो विसर्जन मंत्र है

'उत्तम शिखरे जाते, भूम्यां पर्वतमूर्धनीम्।'

ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञया गच्छ देवी यथा सुखम्।।

उपनयनसंस्कार में गायत्री मंत्र का उपदेश किया जाता है तब से जीवनभर उसका जाप हो ऐसी अपेक्षा रहती है। संकट से मुक्तता पाने के लिये भी उसका जाप किया जाता है। कारण है उसका सामर्थ्य। मानवजीवन में स्थिरता और आत्मशक्ति निर्मिति के लिये उपासना-उससें आत्मबलवृद्धि तथा शांति प्राप्त होती है। विविध उपासनाओं में गायत्री मंत्र की उपासना सर्वश्रेष्ठ है।

गायत्री मंत्र सद्बुद्धिदायक मंत्र है। उसकी उपासना में प्राणायाम-प्राणायाम से श्वास नियंत्रित करना- उससे शरीर तथा मन को स्वस्थ करना ज्ञानग्रहण करने आवश्यक शारीरिक और मानसिक स्थिति, ज्ञानार्जन, समाज को योग्य मार्गदर्शन करने की क्षमता, समाज तथा राष्ट्र का विकास क्रमशः होता है।

ओम् शब्द सृष्टी का उगमस्थान। प्रणव स्वरुप परमात्मा। सृष्टीनिर्माता ब्रह्मा, रक्षक विष्णु, लय करनेवाला महेश का निर्देश। अ, ऊ, म द्वारा किया जाता है। अर्धचंद्र ज्ञान का तो बिंदु पूर्णत्व का प्रतिक है। ऑखों से आकृतिदर्शन, मुख से उच्चारण और कान से ओंकार श्रवण धीरे-धीरे मन को ओंकारमय बनाता है।

भुर्भुवः स्वः - भू - पृथ्वी, भुवः-अंतराळ, स्वः-स्वर्ग - तत् = उस - तीनों लोकों में व्याप्त परमात्मा को, सृष्टी की हरेक चीज में परमात्मा का जो अंश है उसको, सभी को तेज और उष्णता देकर जीवन निर्माण करनेवाले को- **सवितुः** - सूर्य-इस मंत्र की देवता अर्थात् गायत्रीउपासना याने सूर्योपासना। तेजस्वी वंशज प्राप्ति के लिये सूर्योपासना की जाती है। उदा. श्रीमन् आद्य शंकराचार्य, श्री समर्थ रामदास, लोकमान्य तिलकजी। श्रीराम सूर्यवंशी थे। राजपूत तथा भोसले सूर्यवंश के ही थे। सृष्टी के सजीवों के लिये आवश्यक उष्णता, प्रकाश, तेज, सूर्य ही प्रदान करता है। इसलिये उसे 'मित्र' कहते हैं। सूर्य स्वयं पवित्र है। उसकी किरणें कचरे में, कीचड़ में पहुंचती है लेकिन स्वयं मलिन नहीं होती है। अपितु कचरे-कीचड को शुद्ध करती है। सूर्य गरमी के दिनों में पृथ्वी से अधिकाधिक पानी का बाष्प बनाता है और बरसात में उससें कई गुना पानी का वर्षाव कर भूमीको सुजलाम् बनाता है। इतनाही नहीं तो समुद्र का खारा पानी शोषण कर उसको मीठा बनाकर ही बरसाता है। उसकी उदारता अनुकरणीय है।

कर्तव्य-कठोरता - सृष्टी की उत्पत्तिसे आज तक सूरज ने एक क्षण का भी विश्राम नहीं लिया है - भविष्य में भी लेगा नही।

नियमितता - हररोज उगता ही है। कभी-कभी मेघों से ढकने के कारण हम प्रकाश से वंचित रहते है।

उत्कृष्ट दाता - अनगिनत नक्षत्रों को, चंद्रमा को प्रकाश देकर उन्हे प्रकाशमान बनाता है। स्वयंप्रकाशी तो है ही। इसीलिये तो सभी ग्रहों के समूह को **'सूर्यमाला'** कहा जाता है। सूर्य का नियंत्रण उन सब पर है। उसका एक नाम है रवि - रविवार से कालगणना शुरु होती है।

ऐसा भी कहा जाता है कि सूर्य के विविध किरणों का प्रभाव भी अलग-अलग होता है। सूर्य और पृथ्वी के एकदूसरे के गति के कारण सूर्य के विशेष किरण विशेष भूभाग में अधिक समय रहते है और उनका उस प्रकार का प्रभाव उस भूभागपर होता है जैसे कि - सूर्यका प्रथम किरण युरप में अधिक समय रहता है अतः वहाँ भौतिक प्रगती अधिक है। सातवाँ किरण भारत के गंगा यमुना के दुआब में अधिक समय रहने के कारण वहाँ आध्यात्मिक प्रगति अधिक है।

सूर्य के अन्य नाम जैसे भानु, भास्कर भी उसके प्रकाशमयता के ही परिचायक हैं। सूर्य के विविध गुणों को अपनाना हरेक व्यक्ति के लिये आवश्यक है।

भर्गः - तेज - ऐसे तेज का ईश्वर वरेण्य (श्रेष्ठ) है यह निश्चित है।

धीमहि - धारण करे - वरेण्यंदेवस्य सवितुः भर्गः धीमहि। श्रेष्ठ देव सूर्य का, तेज धारण करें।

धियोः - बुद्धि को

यः - जो

नः - हमारी

प्रचोदयात् - जागृत करे, प्रेरित करे। यः नः धियोः प्रचोदयात्।

इस तरह सूर्य के समान तेजस्वी बनने हमारी बुद्धि प्रेरित हो इस भावना से, तेजस्वी राष्ट्र निर्माण की आकांक्षा धारण कर उसके लिये कार्य करनेवाली राष्ट्र सेविका समिति की सेविका गायत्री मंत्र का जाप अर्थ समझकर करती है। श्रीरामचरित मानस में इसका महत्व वर्णित है।

मंत्रराज नित जपहि तुम्हारा। पूजेहि तुम्हहि सहित परिवारा।

मंत्र महामनि विषय ब्याली के। मेटत कठिन कुअंक भाल के।

श्री मदन मोहन मालवीयजी कहते है भारतीय ऋषिमुनियों ने भारत को जो अमूल्य रत्न प्रदान किये है, उसमें से यह एक महत्वपूर्ण रत्न है।

श्री रवींद्रनाथ टागोर ने तो इसको 'भारत का जागृत और प्रेरित करनेवाला मंत्र' कहा है।

टी. सुब्बाराव मानते है कि सूर्यशक्ति यही आदिशक्ति है।

ऐसे आदिशक्ति को, प्रेरक मंत्रको नित्य स्मरण करनेवाले भारतीय है। स्वयं विकसित हो कर विश्व को मार्गदर्शन करेंगे यह विश्वास श्री समर्थ रामदासजीने दासबोध में 'विश्वचक्षु हा भारत' इन शब्दोंमे प्रकट किया है और उसको साक्षी है भारतीय संस्कृतिने किये हुए विश्वसंचार का इतिहास। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' यह भाव।

सूर्यस्तुतिः

ॐ हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत् त्वं पूषन् अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।
ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारीहिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः।।

सूर्यनमस्कार के मंत्र

ॐ ह्रां मित्राय नमः।	ॐ ह्रीं रवये नमः।
ॐ ह्रूं सूर्याय नमः।	ॐ ह्रैं भावने नमः।
ॐ ह्रौं खगाय नमः।	ॐ ह्रः पूष्णे नमः।
ॐ ह्रां हिरण्यगर्भाय नमः।	ॐ ह्रीं मरीचये नमः।
ॐ ह्रूं आदित्याय नमः।	ॐ ह्रैं सवित्रे नमः।
ॐ ह्रौं अकार्य नमः।	ॐ ह्रः भास्कराय नमः।

ॐ श्रीसवितृसूर्यनारायणाय नमः।।

मित्र-रवि-सूर्य-भानु-खग-पूष्ण-हिरण्यगर्भ-
मरीचादित्य-सवितार्क-भास्करेभ्यो नमः।
आदित्यस्य नमस्कारान् ये कुर्वन्ति दिने दिने।
दीर्घमायुः बलं वीर्यं तेजस्तेषां च जायते।।
नमो भानुमतेऽकार्य ध्वान्तविध्वंसकारिणे।
पापतापविपद्दैन्यनाशनाय नमो नमः।।
नमोभानुमतेऽकार्य प्रभाचैतन्यदायिने।
कार्यशक्तिनवोत्साह प्रेरकाय नमो नमः।।
अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
सूर्यपादोदकं तीर्थं जठरे धारयाम्यहम् ।।

स्वदेशी

प्रत्येक स्वतंत्र देश का 'स्वदेशी' यह प्राण होता है। गुलामी के समय 'स्वदेशी' की भावना जनता के मन में जागृत कर देश का यह प्राण सुरक्षित रखने का प्रयास म. गांधीजी ने स्वयं सूत कातकर और जनता को भी सूत कात कर खादी के वस्त्र पहनने की प्रेरणा देकर किया था। जिससे हर हाथ को काम तो मिला ही परन्तु देश के प्रति प्रेम तथा आत्मीयता भी जागृत हुई। लोकमान्य तिलक जी ने स्वराज्य, स्वदेशी, विदेशी वस्तुओंका बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा पर जोर दिया। स्वा वीर सावरकरजी ने विदेशी वस्तूओं की होली जलायी, विदेशी वस्तूओं का बहिष्कार किया तथा स्वदेशी वस्तूंओ के प्रति स्वाभिमान निर्माण किया।

छात्रों के मन में स्वदेशी, स्वाभिमान जागृत हुआ था। विद्यालय महाविद्यालयों में विदेशी कपडे पहनकर जाना मुश्किल हो गया था। यहां तक की विदेशी कागज पर छपे प्रश्न पत्र तथा विदेशी उत्तर पुस्तिकाओं का भी बहिष्कार किया जाने लगा था तथा परिक्षा संचालकों को स्वदेशी कागज के उपयोग के लिए बाध्य किया गया था।

महिलाओं ने घर-घरमें चीनी का उपयोग बंद किया। हाथों में विदेशी कांच की चुडियाँ पहनना भी बंद कर दिया था। स्वदेशी वस्तूओं के दुकानों को भारत भंडार नाम दिया जाने लगा। यहां तक की तूतीकोर में यातायात के लिये 'स्वदेशी स्टीम नेविगेशन' कंपनी प्रारंभ की गयी। जनमानस में स्वदेशी छा गया। जो देश को स्वतंत्रता दिलाने में काम आया।

परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्वतंत्र भारत का नेतृत्व करने वाले हमारे प्रथम प्रधान मंत्री स्वदेशी में विश्वास रखने वाले नही थे। उनके मन मस्तिष्क का विकास पश्चिम देशों में हुआ था। पश्चिम के संस्कृति में विकसित मन और वहीं धुले हुए वस्त्र पहनने वाला शरीर पश्चिम की ओर ही आकर्षित हुआ था। बडे उद्योगों के निर्माण में व्यस्त उन्होने यह नही सोचा की भारत की सामाजिक स्थिति कैसी है? यहां की 80 प्रतिशत जनता किसान है। शिक्षित नही है। गांवो में बसी हुई है। बडे-बडे उद्योगों को लगाने मात्र से भारत का विकास सम्भव होगा क्या? हिन्दी चीनी भाई-भाई 'हम शांति दूत है' केवल इन नारों से न तो कोई भाई बनता है न शांति स्थापित होती है। शस्त्रास्त्र निर्माण करने के कारखाने लगभग बन्द हो गये थे और फिर 1962 के चीन युद्ध का परिणाम सभी के सामने है ही।

स्वतंत्रता पूर्व कालमें महत प्रयास से जनता के मन में स्वदेश व स्वदेशी के प्रति जो स्वाभिमान निर्माण किया गया था। उसे और दृढ करने की आवश्यकता थी। धर्म तथा संस्कृति के आधार पर आधारित शिक्षा, छोटे बडे कुटीर उद्योगों का विकास, शस्त्रास्त्रों का निर्माण इनको अग्रक्रम देना चाहिये था। देश की आन्तरिक तथा बाह्य सुरक्षा के लिए आवश्यक है भारतवासियों में देशप्रेम, स्वाभिमान, स्वावलम्बन, धर्म और संस्कृति का पालन आदि उन बातों पर ध्यान देना आवश्यक था।

परिणामस्वरूप आज देश गंभीर अर्थ संकट में फसा हुआ है। इससे बाहर निकलने में हम सामान्य लोग किस प्रकार का सहयोग कर सकते है। यह सोचने की आवश्यकता है। आज पश्चिमि विकास की चकाचौंधी से ग्रस्त राजनैतिक नेता और जनता का मानना है कि अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओ, विदेशी पुंजीपतियों एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सहारे, पश्चिमी सम्पन्न देशों के विकास मॉडेल, विकास के तकनिकी एवं प्रद्यौगिकी को अपनाकर भारत अपने आर्थिक संकट को पार कर सकता है। अतः सरकारने 1990 में इस आर्थिक संकट से उभरने हेतू उदारीकरण तथा वैश्विकरण की नीति अपनायी विदेशी पुंजिपतियों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों को एवं आन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं को (आन्तर राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक आदि को) भारत की अर्थ व्यवस्था में खुलकर खेलने का निमंत्रण दिया। इसके पश्चात् 'गॅट' समझौते पर हस्ताक्षर किये और विश्व व्यापार संगठन डब्ल्यू.टी.ओ. के हाथों हमारा देश गिरवी रख दिया।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों से यह आशा की गयी थी कि वे बडी मात्रा में अपने साथ पुंजी लाएंगी जिससे भारत की समस्या हल हो सकेगी। प्रत्यक्ष में वैसा नहीं हुआ।

यह भी सोचा गया कि निर्यात में वृद्धि होगी तो देश को भुगतान की कठिनाई एवं विदेशी मुद्रा विनिमय की कमी होगी। परंतु रिझर्व बँक के द्वारा प्रकाशित बुलेटिन में दिये अंको के अनुसार विदेशी मुद्रा विनिमय में कमी होना तो दूर करोडो का घाटा और सहना पडा।

भारत जैसे बडे बाजार को हथियाने का उनका मनसुबा हम नहीं पहचान सके। निजी स्वार्थ के कारण जानबूझकर अनदेखी कर रहे है साथ ही साथ आय.एम.एफ. तथा विश्व बँक के ऋण में फंस रहे है। देश की आर्थिक व्यवस्थाको उनकी शर्तो के अनुसार चलाने के लिए धीरे-धीरे बाध्य हो रहे है।

विश्वव्यापार संगठन की शर्तो को पूरा करने के लिए आयात होने वाली वस्तूंओं पर मात्रात्मक प्रतिबंध समाप्त कर दिया गया है। आयात शुल्को में भारी कमी की गयी है। फलस्वरूप भारत मे आयातीत वस्तूओ की भरमार हो गयी है। उनकी कीमत कम होने से हमारे छोटे बडे धन्दे बन्द हो रहे है।

कृषि वस्तूएं, दूध, मूर्गी, तथा मांस का निर्यात खुला हो गया, भारत में पशुधन कम हो रहा है। दूसरी ओर मूर्गी पालन और पशुपालन उद्योग पर संकट गहरा गया।

बहुराष्ट्रीय कंपनियां एक-एक करके बडे उद्योगों को हडप रही है हमें हमारे उद्योग बेचने के लिए मजबूर बना कर अपने कब्जे में ले रही है। इस तरह प्रत्यक्ष में लाभ के जगह हानि हो रही है।

अपने देश के प्रति प्रेम, आत्मीयता, स्वाभिमान, चिंतन हमारे मन में न होने के कारण हम बिना सोचे समझे विदेशी चीजे खरीदते है। उनकी तारीफ तो करते हीं है और MWAY जैसी विदेशी कंपनियों की एजन्सी लेकर कींमती चीजे खरीदने का आग्रह भी करते है। देशवासियों की इस अविचारी व्यवहार से भारत का खतरा गहरा हो रहा है।

सरकार पर इन सब का हल ढूंढने की जिम्मेदारी सौपकर स्वस्थ बैठने से आज काम नही चलेगा। आवश्यक है स्वदेशी दर्शन पर आधारित अपने स्वयं के विकास मार्ग पर आगे बढने की।

राष्ट्र के स्वत्व को, प्रभुसत्ता को चुनौती देनेवाली परिस्थिति को बदलना अत्यंत महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। इसीलिए आवश्यक है 'स्वदेशी' के पुनरुच्चार की। स्वदेशी का अर्थ केवल अपने देश में निर्मित वस्तूओं को खरीदना मात्र नही है। हमारे सभी जीवन मूल्य, जैसे स्वभाषा, स्वधर्म, स्वसंस्कृति, स्वाभिमान और स्वावलम्बन।

हमारी मातृभाषा तथा राष्ट्रभाषा में शिक्षा प्राप्त करना, संभाषण करना और गीत गाना मानो हमें पिछडापन सा लगता है। अंग्रेजी बोलना सभ्यता और विकास का प्रतीक माना जाने लगा है। उसे हटाकर

हमारा साहित्य, प्राचीन ग्रंथ, वेद, उपनिषद सभी संस्कृत में है। उनके माध्यम से हमारे मन में वीरता, शौर्य, देश के प्रति स्वाभिमान, आत्मविश्वास अपने देश के संरक्षण की भावना निर्माण करना है। उनके अध्ययन से हमारे देश ने प्राचीन काल में विज्ञान में की हुई प्रगती का ज्ञान हमे होगा। विदेश से लोग यहां आकर हमारी संस्कृत भाषा सीख कर यहां का ज्ञानभंडार अपने देश ले जारहे है उदा. योगा और हम उसकी ओर अनदेखी कर रहे है।

देश का स्वत्व प्रकट करने वाली प्रथम बात है हमारी भाषा। अपनी भाषा अपनी जीवन पद्धती अनुभव, संकल्पना के साथ जुडी होने के कारण भाषा से होने वाले संस्कार अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्वदेशी भाषा के कारण विचार भी स्वदेशी होंगे। हमारे व्यवहार चिंतन पर उसका प्रभाव होगा। महात्मा गांधी ने कहा है हम प्रगत ज्ञान जरुर लिखेंगे लेकिन जिसपर लिखना है वह 'पाटी' हमारी होगी। दिनचर्या, उत्सव, रीतिरिवाज सब में स्वदेशी का दर्शन हो और अगली पिढी पर वैसे संस्कार हो।

हमारे घर की रचना, परस्पर व्यवहार, वेषभूषा, भोजन। हमारा चिंतन, भाषा, व्यवहार सभी स्वदेशी होगा तो स्वत्वयुक्त भातर विश्व में सन्मानित होगा। अतः हमारे देश में आज इसी प्रकार की शिक्षा की भी आवश्यकता है। जो प्रत्येक के मन में अपनी भाषा, धर्म, संस्कृति, मातृभूमि के प्रति आत्मियता, प्रेम तथा विश्वास निर्माण करेगी। तथा मेरा देश एक स्वावलम्बी देश हो, मेरी मातृभूमि पुनः कभी भी जन्जीरो में ना जकडे यह भावना निर्माण करने वाली हो। अर्थात् हिन्दु धर्म, हिन्दु संस्कृति के लिए स्वाभिमान निर्माण करने वाली हो। तभी हमारे देश की अस्मिता जागेगी, देश में स्वदेशी रूप प्राण पुनः स्थापित होगा। राष्ट्र गौरान्वित होगा।

वन्देमातरम्

"वन्देमातरम्" मात्र ये छः अक्षर, सामान्य सा अर्थ-माता को वन्दन, हम भारतियों के लिए ये मात्र शब्द नही थे, ओजस्वी षडाक्षरी मन्त्र था। जिसने स्वतंत्रता संग्राम के 100 वर्षों को रण गर्जना कर स्फूर्ति और सामर्थ्य दिया। अंग्रेजो की नींद उडा दी। उन्हें लाठी, गोलिया बरसाने बाध्य किया। ऐसा कौनसा सामर्थ्य, ऐसी कौनसी प्रबल भावना इन शब्दों में व्यक्त थी? यदि यह जानना हो तो ऋषि तुल्य बंकिम चन्द्र के जीवन की पृष्ठभूमि को जानना होगा। इतिहास के पन्नो को पलटना होगा। गीत के मर्म को समझना होगा।

गीत के उद्गाता के जीवन की पृष्ठभूमि

बंकिम चन्द्र का जन्म कलकत्ता के पास के गांव काहालपाडा में 1838 में एक सामान्य सनातनी ब्राह्मण के परिवार में हुआ। उनके पिता जादोबचन्द्र मिदनापुर में डेप्युटी कलेक्टर थे। उनके बडे भाई संजीवचन्द्र साहित्यकार एवं बंगदर्शन पत्रिका के संपादक थे। उनके पिता ने उस समय की बदलती सामाजिक एवं रानीतिक परिस्थिति को देखते हुए उन्हे अंग्रेजी शिक्षा दी। साथ ही संस्कृत वाङमय के संस्कार भी अपने बच्चों को दिये। बंकिमचन्द्र कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कॉलेज के प्रथम स्नातक थे। डेप्युटी मॅजिस्ट्रेट एवं डेप्युटी कलेक्टर के रूप में उडिसा एवं बंगाल के विविध क्षेत्रों में कार्य करने का उन्हे अवसर मिला। कलेक्टर के नाते अंग्रेज सिपाहियों के साथ गांवो में लगान वसूल करते समय ग्रामिणों की दुर्दशा एवं सिपाहियों के अत्याचार को देख उनका कविमन रो उठता। इसी समय उनका कविमन तथा लेखक दोनो ही प्रकट हो सामने आये। दुर्गेश-नन्दिनी, कपाल कुण्डला, कृष्णाकान्तेरवील उपन्यास के माध्यमसे। 'आनंदमठ' यह उपन्यास 1882 में सन्यासियों के विद्रोह पर लिखा गया था। 'कमलाकान्तेर दफतरे' उपन्यास में कमलाकान्त को नदी के प्रवाह में तेजपूंज देवी माँ के दर्शन हुए ऐसा वर्णन है। वन्दे मातरम् में वर्णित देवी स्वरूप मातृभूमि का वर्णन 'दुर्गोत्सव' इस लेख में भी है। एक दिन चुचंडा में सुरम्य सांध्य बेला में भागीरथी के किनारे भाव मग्न अवस्था में बकिमजी बैठे थे कि मछुआरे के मधुर संगीत की कुछ पंक्तियोने "साधो आछे मां मने दुर्गाबले प्राणत्याजिबे जान्हवी जीवने" उनके मन के तार छेडे। वन्देमातरम् गीत का बीजारोपण इसीसे हुआ। मन के अन्दर की प्रबल राष्ट्र भक्ति तथा सबल दुर्गाशक्ति पद्यरूप में 1875 में इस धरा पर मातृभू के स्तवन के रूप में अवतरित हुई। 'आनंदमठ' उपन्यास में संन्यासियों का विद्रोह, मातृभू को स्वतंत्र करने के लिए किये गये प्रयास की पृष्ठभूमि में स्तवन के रूप में इस गीत का जनसामान्य में प्रकटीकरण हुआ।

बकिमचन्द्र ने मां के हरे भरे वैभवशालि सौंदर्य की अनुभूति जहां एक ओर थी, वही दूसरी ओर अमाप नैसर्गिक विपत्तियां और परतन्त्रता से पीडित मां का स्वरूप भी देखा। इन विपरित परिस्थितियों में भी उन्हें शक्तिमान भूमाता का दर्शन हुआ और उसी भाव समाधि में शब्द प्रस्फूटित हुए। सुजलाम् सुफलाम् मलयज् शीतलाम्।

'त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी, रिपुदलवारिणी' यह अपौरूषेय गीत वेदमंत्र का सामर्थ्य लेकर संपूर्ण भारत के कोने-कोने में निनादित हुआ। भक्ति और शक्ति बन कर जनमानस के हृदय स्थल में अधिष्ठित हुआ। इसी लिए योगी अरविन्द ने बकिमचन्द्र को 'ऋषी' इस सम्मान से विभूषित किया।

गीत का प्रेरणादायी इतिहास

इस गीत की रचना 1872 से 1875 के बीच हुई। परंतु 1880 से 1882 के बीच यह जनसामान्य में पहुंचा तथा बकिमचन्द्रजी के निधन के पश्चात इसे प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

परंतु इस प्रसिद्धि के पूर्व से ही बंगाल के अनेक कवियोंने 'वन्देमातरम्' इन शब्दों का अपनी कविता की अन्तिम कडी में जोडना प्रारम्भ कर दिया था।

1896 में रविन्द्रनाथ ठाकूर ने इस गीत को स्वर दिया एवं कांग्रेस के बारहवे अधिवेशन में इसे सस्वर गाया गया। वह क्षण अत्यंत रोमांचक था। 1901 में दक्षिण रंजन सेन ने स्वरबद्ध कर गाया और इसके पश्चात तो मानो कांग्रेस के अधिवेशनो में मंगलाचरण के रूप में इस गीत का प्रयोग होने लगा।

इस गीत के दो शब्दों का तेजस्वी प्रकटीकरण 1906 में बारिसाल अधिवेशन में हुआ। लॉर्ड कर्झन ने बंगाल विभाजन की घोषणा की, सारा बंगाल क्रोध से जल उठा। सारा भारत इस घटना में बंगाल के साथ था। इस प्रान्तिक अधिवेशन के समय बंगाल के गव्हर्नर फुल्लर ने 'वन्देमातरम्' घोषणा एवं गीत दोनो पर पाबन्दी लगा दी थी। प्रचंड अग्नि को बुझाने का यह प्रयास था। प्रतिक्रिया स्वरूप प्रतिनिधि निवास से मण्डप तक एक विशाल जनसमूह वन्देमातरम् के बिल्ले लगाकर उद्घोषणा करता अभी थोडी ही दूर पहुंचा होगा कि पुलिस ने जबरदस्त लाठी चार्ज किया। जनसमूह को जूतों से रोन्द डाला, वन्देमातरम् के चिन्ह तोड दिये। परंतु वन्देमातरम् का जयघोष रुका नही, बल्कि इतना तेज हुआ कि दसो दिशाएं इस घोष से गुंज उठी। ब्रिटिश राज्य शासन का यह पहला 'रेग्युलेटिंग एक्ट' था, जिसकी गूंज भारत के समाचार पत्रों में ही नही तो ब्रिटिश संसद तक पहुंच चुकी थी। इस जुलुस में बंगाल के गणमान्य लोग शमिल थे। सुरेन्द्रनाथ बॅनर्जी, 'अमृत बजार' पत्रिका के संपादक मोतीलाल घोष, भूपेन्द्रनाथ बसु, विपिन चन्द्र पाल, अरविन्द घोष सभी घायल हुए। इस घटना ने वन्देमातरम् उद्घोषणा को बंगाल की सीमाओं को लांघ कर भारत के कोने कोने तक पहुंचाया। यह एक शक्तिशाली मंत्र बन कर जन जन के हृदय में समा गया। इस मंत्र से अभिभूत वितराग हुतात्माओं की रास रचाना मां की सन्तानो प्रारम्भ किया। खुदीनेम् बोस, कन्हैयालाल दत्त, रामप्रसाद बिस्मील, रोशन सिंह, राजेन्द्रनाथ, सूर्यसेनदा आदि अनेक क्रान्तिकारकों ने हंसते हंसते वन्देमातरम् घोष के साथ फांसी के फन्दे को गले लगा लिया।

वन्देमातरम् की अनेक माध्यमों से विजय यात्रा

'वन्देमातरम् एवं राष्ट्रध्वज' 1905 से 1907 के बीच दो विदुषियों ने अलग अलग समय एवं स्थान पर भारत के राष्ट्रध्वज बनाएं। भगिनी निवेदिता ने 1906 में गेरूएं रंग का ध्वज बनाया जिसपर वन्देमातरम् तथा दधिची अस्थियों से बना वज्र अंकित था। 1907 में मॅडम कामा ने अन्तरराष्ट्रीय विश्व सम्मेलन में ब्रिटिश अत्याचारो की कथा सुनाकर हरा, केसरी एवं लाल रंग के पट्टे वाला वन्देमातरम् मंत्रांकित ध्वज फहराया।

वन्देमातरम् समाचार पत्र

विपिनचन्द्र पाल ने 'वन्दे मातरम्' नामक समाचार पत्र प्रारंभ किया। 1920 में दिल्ली से वन्देमातरम् नामक वृत्तपत्र लालालाजपतराय ने निकालना प्रारंभ किया। 1941 में मुंबई में गुजराथी वृत्त पत्र वन्दे मातरम् नाम से निकाला गया। सबका उद्देश्य एक ही था। ब्रिटीश शासन के कारनामों को आमजनता तक पहुंचाना। स्वदेशी एवं देशप्रेम की प्रेरणा देना। योगी अरविंद पर 'निष्क्रिय प्रतिरोध' इस लेखमाला के कारण शासन ने अभियोग चलाया जो वन्देमातरम् अभियोग के नाम से जाना जाता था। 1906 में नासिक में बाबारावजी सावरकर पर एक अभियोग चलाया गया वह 'सावरकर अभियोग के नाम से प्रसिद्ध हुआ।'

वन्देमातरम् स्वदेशी

वन्दे मातरम् के लहर ने सारे जन जीवन को व्याप्त कर लिया था। वन्देमातरम् से लोग एक दूसरे को अभिवादन करने लगे तो पत्र लेखन की शुरवात भी वन्देमातरम् से होने लगी। तोरणद्वार, धोती की किनार, वन्दे मातरम् से सजने लगी। स्वदेशी वस्तु भाण्डार को मातृभाण्डार संबोधन मिला। स्वदेशी बैंक, कारखाने, नेविगेशन कंपनी प्रारंभ हुई। इंडियन स्टीम निवेसन, तुतीकोरम के मजदुरों ने ब्रिटिशों को भी वन्देमातरम् उच्चारण के लिए बाध्य किया। वन्दे मातरम् उच्चारण मां की वंदना थी तो स्वदेशी आचरण मां की अर्चना थी।

वन्देमातरम् एवं क्रांतिकारी युवक

किंग्जफोर्ड पर बम बरसाने वाला खुदीराम बोस फांसी पर चढा। उसकी शव यात्रा में हजारो कण्ठों से वन्देमातरम् जयघोष निनादित हुआ। काकोरी काण्ड के रामप्रसाद बिस्मिल ने वन्देमारतम् के गंभीर मंत्र का उच्चारण करते-करते वधस्थली की ओर कदम बढ़ाये। चटगांव शस्त्र भण्डार लूटने वाले सूर्यसेन की वन्देमातरम् घोषणा मं सारा बन्दीगृह शामिल हो गया। क्रोधित पुलीस ने लाठी चार्ज किया। दूसरे दिन सूर्यसेन को मूर्छित अवस्था में ही फांसी के तख्ते पर चढाया गया। 26 अगस्त 1907 को लालबाजार में चीफ प्रेसीडेन्सी मेजिस्ट्रेट किंग्जफोर्ड की अदालत में वन्देमातरम् समाचार पत्र पर अभियोग चल रहा था। वहां वन्देमातरम् घोष करने वाले जन समूह पर पुलिस ने लाठी चार्ज किया। उस समय 14 वर्ष का सुशील सेन गोरे सार्जन्ट पर टूट पडा। उसे जमीन दोस्त कर घुसों से मरम्मत की। उसका यह साहस अंग्रेजों को नागवार गुजरा। उन्होंने इस अपमान का बदला चौदा कोडो की सजा सुना कर लिया। वह कोमल बालक खुली पीठ पर कोडे खाता वन्देमातरम् जयघोष करतां रहा। बेहोशी की अवस्था में भी उसके ओंठ वन्देमातरम् बुदाते रहे। रक्तरंजित बालक की शौर्य गाथा कलकत्ता में फैल गयी। 28 अगस्त को विरोध में सारे स्कूल कॉलेज बन्द रहे। बडा जुलुस निकला। उसके शौर्य के लिये सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने सुवर्ण पदक प्रदान किया। हिन्दु महासभा ने भागानगर में सत्याग्रह किया, 14 वर्षीय एक बालक ने मातृभूमि प्रति अपनी निष्ठा दिखायी तो पुलिस के चाबुक की मार और वन्देमातरम् घोष दोनो में मानो होड लगी और अन्त में वन्देमातरम् कहते कहते उस बालक ने अपने प्राण न्योछावर कर दिये।

वन्देमातरम् और विद्यार्थी

वन्देमातरम् शब्द से अंग्रेज शासक इतने भयभीत थे कि विद्यालय, महाविद्यालय तथा सभाओं में वन्देमातरम् कहने पर सजा होने लगी। किशोर गंज महाविद्यालय के बच्चों को वहां के मुख्यअध्यापक ने "वन्देमातरम् कहना मूर्खता का लक्षण है" यह वाक्य पांच सौ बार लिखने को कहां, परिणाम विपरीत निकला, वन्देमातरम् लिखते लिखते वह उनके हृदय में समा गया। इससे घृणा करने वाले मूर्ख है यह भावना प्रबल हुई।

नील सीटी हाईस्कूल के पढने वाले एक बालक ने वन्देमातरम् की गर्जना से शालेय अवलोकन करने आये आंग्ल अधिकारी को त्रस्त कर दिया और दिलसे कडा विरोध इस साहसी बालक ने किया। उसे विद्यालय से निष्कासित किया गया। वह तेजस्वी बालक था। आद्य सरसंघचालक पू. डॉ. केशव बलीराम हेडगेवार।

वन्देमातरम् और गीत गायन

इस गीत को स्वरबद्ध कर सर्व प्रथम रविन्द्रनाथ ठाकुर ने गाया। 1901 में दक्षिण रंजन सेन ने स्वरबद्ध कर अधिवेशन में गाया। 1905 में बनारस अधिवेशन के समय वहां उपस्थित थी बंगाल कोकिला सरलादेवी चौधुरानी। गोपाल कृष्ण गोखले नरम दल के नेता अध्यक्ष के स्थान पर थे। उन्होने वन्देमातरम् गाने से मना किया, परन्तु जब उपस्थित जनता के सामने उनकी एक न चली तो गीत की दो कडियां गाने की अनुमति दी। परंतु गीत प्रारंभ करते ही सरलादेवी की ऐसी भाव समाधि लगी कि वे पूरा वन्देमातरम् गाकर ही रुकी। सारा जनसमूह उनके इस गान से भाव विभोर हो गया।

1923 में काकीनाडा सम्मेलन की ऐसी ही घटना है। अध्यक्ष मोहम्मद अली जिन्ना थे। गायक विष्णू दिगम्बर पलूसकर जैसे ही वन्देमातरम् गाने खडे हुए उन्होने विरोध किया, उसपर पंडीतजी ने उतनी ही तीव्रता से उत्तर दिया। यह एक राष्ट्रीय मंच है, आपके धर्म का प्रार्थना स्थल नही, आपको नही सुनना है तो आप उठकर जा सकते है, ऐसा स्पष्ट इशारा दिया। मो जिन्ना वन्देमातरम् प्रारंभ होते ही आसंदी से उठकर चले गये। यह वन्देमातरम् का प्रथम बार अपमान था। पं. ओंकारनाथजी ने भी कभी अधूरा वन्देमातरम् नही गाया। 1948 की युगादि को वन्देमातरम् का गायन कृष्णरावजी ने नभोवाणी पर किया। वन्देमातरम् को राष्ट्रगीत का स्थान मिले इसलिए उन्होने अथक प्रयास किया।

वन्देमातरम् और विरोध के स्वर (संघर्ष गाथा)

गीत के जन्म से ही इस गीत का इतिहास संघर्षमय है। अंग्रेजो के साथ-साथ मुस्लिमों तथा भारतीय सहिष्णुता से उत्पन्न अल्पसंख्यक तुष्टीकरण नीति के चलते इसे सदैव त्रिकोणी संघर्ष का सामना करना पडा। 1936 में मुस्लिमों ने रखी 14 मांगो में से एक मांग यह थी की वन्देमातरम् को राष्ट्रगान का दर्जा न दिया जाए। उसी समय इस गीत की काटछाट की गई। 1938 में इसे बन्द करने का स्वर तीक्ष्ण हुआ। 1937 निर्वाचनों में सात प्रान्तों में क्रांग्रेस के मंत्रिमण्डल बने। मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों में भी मुसलमानों को बहुमत प्राप्त नही हुआ। इससे वे चीढ गये। काँग्रेस के मंत्रीमण्डल जहां थे वहां वन्दे मातरम् अत्यंत उत्साह से गाया जाता था। मद्रास इसमें अग्रसर था। वहां मुख्यमंत्री राजाजी और अध्यक्ष थे बुलुस सांबमूर्ति। कुछ दिन तक उनके आदेशानुसार विधानसभा सत्र का आरंभ वन्दे मातरम् से होता रहा। परंतु शीघ्र ही मुस्लिम लीग के सदस्यों द्वारा इसका विरोध प्रारंभ हुआ। मि. शेखलालाजान ने इसे इस्लाम विरोधी कहकर पॉइंट ऑफ ऑर्डर उपस्थित किया तथा बाहर चले गये। राष्ट्रगीत समाप्त होने पर फिर लौट आये। अनुशासन भंगकरने पर माफी मांगी परंतु राष्ट्रगीत के समय बाहर जाने का क्रम जारी रहा। अध्यक्ष सांबमूर्तिजी अत्यंत व्यथित हुए। उन्होंने मुसलमानों को समझाने का प्रयास किया। कहां की वन्देमातरम् इस गीत की ओर साम्प्रदायिकता के भाव से नही तो व्यापक दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता है। यहां तक कहां गया की यह गीत सुनने की इच्छा नही वे लोग गीत होने तक सभागृह के बाहर रहेंगे। गीत समाप्ति के पश्चात् स्थान ग्रहण करेंगे। गीत शुरू होते ही उनका सभात्याग करना उचित नही लगता।

1948 में तुष्टिकरण की नीति के चलते राष्ट्रगान के रूप में जनगणमन को मान्यता देकर तथा इसका शिरच्छेद कर प्रथम दो कडी राष्ट्रगीत के रूप में प्रस्तुत कर हमारे नेताओं ने मातृभूमि की अवमानना ही की है। राष्ट्रीय जनभावनाओं का निरादर कर अपने पैरो पर कुल्हाडी मार ली है। स्वतंत्रता तथा भारत विभाजन की विभिषिका को झेलकर भी हमारी आंखे खुली नही। अतः मुस्लिमों के हौसले बुलंद हुए। 1983 में विद्यालयों में इस गीत का विरोध हुआ। जन आन्दोलन प्रारंभ हुआ "इस देश में रहना है तो वन्देमातरम् कहना होगा" जैसे नारे गुंजने लगे। तब महाराष्ट्र विधान सभा में वन्देमातरम् गायन प्रारंभ हुआ। 1994 में सांसद श्री राम नाईक ने संसद भवन के शून्य काल में वन्देमातरम् गीत का गायन यह बिन्दु रखा। प्रचंड विरोध के पश्चात् संसद में यह गीत प्रारंभ हुआ। राजकीय दृष्टि से भले ही इस गीत को राष्ट्रगीत का स्थान ना मिला हो किन्तु भारत माँ के लाड़लो के हृदय में राष्ट्रगान के रूप में यह गीत सदैव गुंजता रहेगा।

गीत का मर्म

इस गीत में छब्बीस चरण एवं पांच कडियां है। संस्कृत एवं बंगाली शब्दों से बना यह गीत गेय है। इसे विष्णु दिगंबर पलुसकर ने काफी राग में गाया है। कवि ने मां भारती को लक्ष्मी अर्थात् भूमि, दुर्गा अर्थात् उसका शक्तिशाली जनसमूह, तथा सरस्वती उसका

ज्ञान विज्ञान एवं अध्यात्म अर्थात् जनसमूह की मां स्वरूप भूमि पर भक्ति इन तीनों रूपों में मा भारती को देखा है, वर्णन किया है।

सुजलाम् सुफलाम्

यह भारत भूमि जल से परिपूरित सुजलाम है, कलकल छलछल बहती सप्त सरिताएं, अनेक सहायक नदियां मां के पर्वत रूपी स्तनों से निकलकर भूमि का प्रक्षालन कर रही है। चरणों पर सागर सतत उसका पाद प्रक्षालन कर रहा है। जिससे यह भूमि विविध वनस्पतियों फलफूलों से परिपूर्ण है। भारत जैसे विविध ऋतुओं में विविध प्रकार के रसीले फल वह भी बारहो महिने शायद ही कहीं मिलते हो।

मलयज शीतलाम्

दक्षिण के मलयागिरी पर्वतो पर स्थित चन्दन के वृक्ष से सुगंधित हवाएं पूरे भारत को शीतलता और चंदन सम समर्पित सुगंधित त्यागमय जीवन का संदेश दे रही है।

सस्य शामलाम

हमारी भूमि का वर्ण श्यामक है। यह श्यामलवर्ण इस धरती का मूल स्वभाव है। यह श्यामल भूमि उपजाऊ है। माँ के इस श्यामल वर्ण को यहां के देवताओं ने भी आत्मसात किया है। हमारे रामकृष्ण श्यामवर्ण के, महाराष्ट्र का विठ्ठल श्यामवर्ण का, उडिसा के जगन्नाथ श्यामवर्ण के, बंगाल की कालीमाता श्यामवर्ण की, अतः हम मां की सभी सन्ताने इसी रंग से रंगी है। अंग्रेज गोरो को यह काला रंग नही भाता था। क्यों की वे कभी भी इस रंग का मर्म ही नही जान पाये। इस पर उगी धान, ज्वार, मक्के की सुनहरी बालियां मां के स्वर्णाभूषण है। यह बालियां देश का लक्ष्मी स्वरूप वैभव है।

शुभ्रज्योत्स्नाम् पुलकित यामिनीम्

पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र की अमृत किरणों से धरती मां का चांदनी के समान दमकता स्वरूप इसी देश के लोगों को देखने को मिलता है। चमकती रात्रि भी यहां का वैभव है। लक्ष्मी स्वरूप है।

फुल्लय कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्

भारत के सुगन्धित पुष्प यह भी भारतियों का ही भाग्य। विदेश के सुगंधहीन पुष्प मात्र सौन्दर्य उपासकता को जन्म देते है। हमारे पुष्प बकुल, पारिजात, मोगरा, गुलाब, जूही, रजनी गंधा, अपनी सुगंध से वातावरण को सुन्दरता के साथ सुगंधित बनाते है। मानव जीवन को संदेश देते है, पूर्ण खिलकर अपने गुणों का परिमल ऐसे ही चारो ओर बिखेरो। यह गुणयुक्त सौन्दर्य बोध भी यहां का वैभव है लक्ष्मी स्वरुप है।

सुहासिनीं समधुर भाषिणीं

सुख दुःख दोनो ही परिस्थितियों में अपनी वाणी पर नियंत्रण रख समभाव से वर्तन करने वाली सदैव मधुर वाणी का प्रयोग करने वाली यह माता स्वरूप भूमि, क्षमा जिसका धर्म है। स्नेह, वात्सल्य और ममता जिसका स्थायी भाव है यही भारतीय गृह लक्ष्मी का भी स्वरुप है। उसी में उसका वैभव छिपा है। सबको सुख देने वाली सबका कल्याण करने वाली।

कोटी-कोटी कण्ठ

कोटि-कोटि भुजाओं में शस्त्र धारण करनेवाले संतानों की माता को अबला कौन कह सकता है। संगठित शक्ति क्षण भर में शत्रु का विनाश कर सकती है। मां दुर्गा का स्वरुप कवि के अन्दर मन में है। शक्ति उपासक देश मातृभूमि का रक्षण करने समर्थ है।

तोमारई प्रतिमा गडी मन्दिरे-मन्दिरे

इस पद में कवि मातृभूमि से एक रुप हो गये है। वे कहते है कि हम भारतियों की विद्या धर्म सब तेरे ही लिए है। मेरे हृदय में तुम्हारा ही निवास है। मेरे जीवन का मर्म भी तुम्ही हो। मेरे शरीर में प्राण रूप में तेरा ही निवास है। मेरे बाहुओं की शक्ति भी तू ही है। मेरे हृदय की भक्ति तेरे चरणों पर समर्पित है। हे मां घर-घर के हृदय मन्दिर में मै तुम्हारी ही प्रतिमा देखता हूं। भाव यह कि भारत के हरेक नागरिक के रूप में मां साकार हुई है। भारत भूमि की सेवा अर्थात् भारत के बालसे वृद्ध, निर्धन से धनिक, हरेक की सेवा है।

त्वं हि दुर्गा

भारतभूमि का गीत गाते उनकी आराध्य देवता विविध रूपों में साकार होने लगी। दशप्रहरण धारिणी दुर्गा, कमलदल विहारिणी लक्ष्मी और विद्यादायिनी सरस्वती मां भारती के रूप में एक-एक कर प्रकट होने लगी। ऐसी त्रिगुण रूप धारिणी मातृ देवता की आरती कवि ने स्तवन रूप में की है।

स्तवन रूप में

अमलां (दूषित न होली वाली) अतुलां (जिसकी तुलना नही की जा सकती) जो सुजलां सुफलां है, श्यामल सुस्मित एवं सरल स्वभाव की है। जो सबको धारण कर उनका भरण पोषण करती है ऐसी भारत मां को मेरी वन्दना है शतशः प्रणाम है -

वन्देमातरम् ।।

वंदे मातरम्

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
सस्यश्यामलां मातरम् ।। वंदे मातरम्

शुभ्रज्योत्स्नापुलकितयामिनीम्
फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम् ।। वंदे मातरम्

कोटि कोटि कंठ कल कल निनाद कराले
कोटि कोटि भुजैर्धृतखरकरवाले
अबला केनो माँ एतो बले
बहुबलधारिणी नमामि तारिणीम्
रिपुदलवारिणीम्-मातरम् ।। वंदे मातरम्

तुमि विद्या तुमि धर्म
तुमि हृदि तुमि मर्म
त्वं हि प्राणाः शरीरे
बाहुते तुमि मा शक्ति
हृदये तुमि मा भक्ति
तोमारई प्रतिमा गडि मंदिरे मंदिरे।
मातरम् ।वंदे मातरम् ।।

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी
कमला कमलदलविहारिणी
वाणी विद्यादायिनी-नमामि त्वां
नमामि कमलां अमलां अतुलां
सुजलां सुफलां मातरम् ।। वंदे मातरम् ।।

श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां
धरणीं भरणीं मातरम् । वंदे मातरम् ।।

भारत माता की जय

आरती

जय जगदम्बे नत मस्तक हो, गाऊं मंगल आरती
प्रतीक मानवता का तू है, अष्टभुजा तू कहलाती।।धृ.।।
शक्ति देवता उमा लक्ष्मी वैभव की है अधिकारी
सरस्वती तू बुद्धिमती यह त्रिविध रूप तव मनहारी
परब्रह्म तू वरद हस्त से जग में जीवन भर देती।।1।।

अमर हमारा हिन्दु धर्म है अक्षय बट यह दिखलाता
इस धरती पर जितनेपंथ हैं इसी वृक्ष की वे शाखा
सहिष्णुता है छाया इसकी अखिल विश्व को दे शांति।।2।।

धैर्य शौर्य का मूर्त रूप तुम सिंहवाहिनी होती हो
खड्ग हाथ में सबल हो कर शील रक्षण हो करती
दुष्टों का निर्दालन करके भक्तों तुम अभय दिलाती।।3।।

कमल फूल खिल जाये तो दश दिशा सुगंधित होती है
व्यष्टि समष्टि संगम यह सृष्टि की अनुपम रीती है
पंकज होकर भी प्रसन्न है, यह प्रसन्नता हमको भाती।।4।।

हिंदु सती की पवित्रता अति उज्वल फिर भी दाहक है
अग्निकुंड की ज्वाला जैसे दिव्यता प्रती पहुंची है
अटल ध्येय के प्रति कार्य की कभी न होवे विसंगति।।5।।

श्रीमद्भगवद् गीता यह तो सकल ज्ञान का है भण्डार
हिंदु धर्म की विशेषता जो आत्मज्ञान का यह आधार
ज्ञान भक्ति के बिना व्यर्थ सब इसी तत्त्व को बतलाती।।6।।

विध्वंसन की वृत्ति छोड़कर भ्रमर बद्ध है पंकज में
कृतार्थ हो जाती है नारी तेज सती का पाने में
घण्टानाद कर रहा जागृति, अखिल राष्ट्र को दे स्फूर्ति।।7।।

त्रिगुणात्मक यह त्रिशुल हाथ में असुरों का संहार किया
त्यागमूर्ति गेरुए रंग का राष्ट्र ध्वज जब फहरा
त्यागी बन कर मान बढ़ाओ यहा संदेश है तू देती।।8।।

समर्थ अपना राष्ट्र बने यह समिति भी बलशाली हो
इस कारण ये दिव्य आयुध आज हमें भी प्राप्त हो
तुम बिन कोई न रक्षक माने, कृपा करो अब जगन्मति।।9।।

सम्मुख आ कर आशीष दो, राष्ट्र सेविका समिति को
संघटना का कमलपुष्प यह, अर्पण है निज माता को
भारत भू पर उदय अस्तु ते गूंजे यह मंगल उक्ति।।10।।

॥ॐ॥

सेविका प्रकाशन - प्रकाशित पुस्तकें

१) श्री माँ
२) प्रेरिका
३) मातृत्व-कर्तृत्व-नेतृत्व
४) भगवद्ध्वज
५) भारतीय संस्कृति के प्रतीक
६) प्रातःस्मरणीय महिलायें
७) बोधसरिता
८) हम ऐसा व्यवहार करें
९) पथदर्शिनी श्रीरामकथा
१०) वेदमंत्र सा वंदे मातरम्
११) कारसेवा में महिलाओं का योगदान
१२) आओ खेल खेलें
१३) पूर्वांचल-एक विहंगम दृष्टि
१४) कर्मयोगिनी वं. मौसीजी
१५) दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते
१६) स्त्री एक ऊर्जा केंद्र
१७) अमृतबिंदु
१८) वंदनीया पूजनीया